परिमल संस्कृत सीरिज नं. 90

मेदपाटेश्वरमहाराणारायमल्लाश्रितसूत्रधारश्रीगोविन्दविरचितम्

# कलानिधि

## ( देवालयार्थ शिखर व ध्वजादण्डादि प्रतिष्ठा विधि )

(मूलपाठ, समीक्षात्मक टिप्पणियाँ तथा विस्तृत भूमिका)

M.Katyayana

सम्पादक
**डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'**

**परिमल पब्लिकेशन्स**
दिल्ली (भारत)

प्रकाशक :
परिमल पब्लिकेशन्स
२७/२८ शक्ति नगर
दिल्ली - ११०००७
फोन : २३८४५४५६, ६५४४१५१६

726.145
GOV
वास्तु-मंदिर-हिन्दू

© लेखक

प्रथमसंस्करणम्, २००७

ISBN : 81-7110-296-4

मूल्य - २५०.००

मुद्रकः
तरुण ऑफसैट प्रैस
मेन यमुना विहार, मुख्य मार्ग,
मौजपुर, दिल्ली ११००९२

Parimal Sanskrit Series No. 90

*Sūtradhāra Govind's*

# KALĀNIDHI

**(A Treatise about the Temple's Śikharavidhi)**

{With text, critically notes and Elaborate Introduction}

Edited By :

*Dr. Shri Krishna "Jugnu"*

PARIMAL PUBLICATIONS

DELHI

*Published by :*
**Parimal Publications**
Office : 27/28, Shakti Nagar
Showroom : 22/3, Shakti Nagar
Delhi-110007
Ph. : 011-23845456, 65441516
e-mail : parimal@ndf.vsnl.net.in
url : http://www.parimalpublication.com

© Author

First Edition : 2007

ISBN : 81-7110-296-4

**Price : Rs. 250.00**

श्री ला.ब.शा.रा.सं. विश्वविद्यालय
पुस्तकालय
पंजी. सं. ...U. 99360...
दिनांक.......16.3.22
हस्ताक्षर..........

*Printed at :*
**Himanshu Printers**
Main Yamuna Vihar Road
Maujpur, Delhi

# निवेदन

भारतीय शिल्प और स्थापत्य के क्षेत्र में मेवाड़ राज्य के सूत्रधारों का योगदान अप्रतिम माना जाता है। मेवाड़ाधिपति महाराणा कुम्भा या कुम्भकर्ण (1434–67 ई.) के आश्रय में सूत्रधार मण्डन ने यदि वास्तु विज्ञान पर सर्वाधिक ग्रन्थों की रचना की तो कुम्भा के उत्तराधिकारी महाराणा रायमल (1472–1509 ई.) के शासनकाल में मण्डन के ही अनुज सूत्रधार नाथा और मण्डन के कनिष्ठ पुत्र सूत्रधार गोविन्द ने प्रासाद स्थापत्य पर पूर्वसूरियों के आधार पर समकालीन आवश्यकताओं के अनुसार प्रासाद स्थापत्य के सन्दर्भ में ग्रन्थों का प्रणयन किया।

सूत्रधार मण्डन विरचित 'देवतामूर्तिप्रकरणम्' अपरनाम 'रूपावतार', 'राजवल्लभ वास्तुशास्त्रम्', 'वास्तुसारमण्डनम्', 'आयतत्त्वम्', 'वास्तुमण्डनम्', 'प्रासादमण्डनम्' के बाद सूत्रधार नाथा कृत 'वास्तुमञ्जरी' के सम्पादन के उपरान्त सूत्रधार गोविन्द कृत 'कलानिधि' पर कार्य करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। सूत्रधार खेता ने यदि मेवाड़ में स्थापत्य रचनाओं के विकास में योगदान किया तो मण्डन ने यथा राजाज्ञा अथवा तत्कालीन आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखकर लगभग सात ग्रन्थों का प्रणयन किया। उसके रचनाकर्म को नाथा व गोविन्द ने आगे बढ़ाया। सूत्रधार गोविन्द कृत वास्तु विषयक तीन ग्रन्थों में से कलानिधि देवालयों के शिखर विधान पर केन्द्रित है। देश में देवालयों की शिखर रचना, शिखर के अङ्ग–उपाङ्गों के सम्बन्ध में कदाचित यह एक मात्र स्वतन्त्र ग्रन्थ कहा जा सकता है। पहली बार यह प्रकाशित हो रहा है।

गोविन्द ने इसे मुख्य रूप से अपराजितपृच्छा, समराङ्गणसूत्रधार, प्रासादमण्डन, जयपृच्छा, क्षीरार्णव, विवेककल्पलता जैसे ग्रन्थों के आधार पर तैयार किया था। भारतीय स्थापत्य में नागर, वेसर, द्राविड़ जैसे प्रासादों के शिखर विधान के सम्बन्ध में मध्यकाल तक जो तकनीकी प्रचलन में थी, उसे इस ग्रन्थ में कई विशेषताओं के साथ गूँथा गया है। आकार में यह लघुकाय है किन्तु इसके विषय की विराटता को इसकी भूमिका में समझा जा सकता है। शिखर में कला–रेखादि ज्ञान निश्चय ही कठिन है और गोविन्द ने इसे परिभाषित करने का उपक्रम किया है।

मैंने अपनी अल्पबुद्धि के अनुसार इसे विशेषित करने का यथावत् प्रयास किया है। तीन मातृकाओं के आधार जब मैं इसका पाठ तैयार करने में जुटा तो इसके अर्थ की समस्या आई। मैं पाठ के साथ ही साथ अर्थ के लिए भी प्रयास करता जाता, इसी बीच यह होता रहा कि अन्य ग्रन्थों के आलोक में गोविन्द के प्रतिपाद्य की तुलना भी होती रही। परिणाम यह रहा कि अर्थ से कहीं अधिक भूमिका तैयार हो गई। वैसे इसके श्लोकों का साथ-साथ अर्थ देने से पूर्व में ही सारिणियाँ बनाकर समझाना अधिक सुगम लगा, ऐसे में पाठ से पूर्व सारिणियों के साथ अर्थ समझना होगा। इसमें शिखर-संयोजन के लिए करणीय रेखाओं का नामानुसार अद्भुत वर्णन और प्रयोग है। 'वास्तुसूत्रोपनिषद' में कहा गया है कि वास्तु में रेखानुपात एवं तद्नुसार अङ्गों का निधापनादि श्रेष्ठकृत्य है— *रेखानुपातेनाङ्गानि निधेयानीति श्रेष्ठकृत्यम्।* (तृतीयप्रपाठक 12) फिर, रेखा के क्रम से चार भेद कहे गए हैं— एकाश्रयी, युगलाश्रयी, खण्डाश्रयी एवं स्पर्शाश्रयी— *रेखाक्रमेण भेदनं चतुर्धा ज्ञेयम्।* (वही 19) देववास्तु शिल्पियों और इस विषय के जिज्ञासुजनों को यह निश्चय ही पसन्द आएगी, ऐसा मेरा मानना है।

कलानिधि के पाठ सम्पादन व भूमिकादि के लिए मैंने प्रो. पी. ए. मनकड कृत अपराजितपृच्छा की भूमिका, डॉ. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ला, डॉ. प्रसन्नकुमार आचार्य, पद्मश्री प्रभाशङ्कर ओघडभाई सोमपुरा, डॉ. त. गणपति शास्त्री, डॉ. प्रियबाला शाह प्रभृति विद्वत्माओं के ग्रन्थों से पर्याप्त सहयोग लिया है। उक्त विद्वज्जनात्माओं के प्रति नमन् और प्रकाशकों के प्रति आभार। कलानिधि के पाठ के लिए मैं बड़ौदा ऑरियण्टल इंस्टीट्यूट, बडोदरा के निदेशक सहित अन्य कर्मचारियों के प्रति अनेकश धन्यवाद जिन्होंने इसकी तीन मातृकाएँ (संख्या 8276 पृष्ठ 9, 11001 पृष्ठ 11 तथा 11069 पृष्ठ 23) उपलब्ध करवाईं। संयोग से तीनों ही मातृकाएँ अपूर्ण निकलीं। तीसरी मातृका में कलानिधि के पाठ के साथ ही मण्डन विरचित 'रूपावतार' का पाठ सर्वाधिक था और अन्य दो मातृकाओं में क्रमशः कलानिधि का पाठ था। इसलिए पाठ की पूर्णता का सङ्कट खड़ा हो गया।

इसी बीच, मुझे प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता श्रीरतनचन्द्र अग्रवाल, जयपुर का सम्मेलन पत्रिका के कला अङ्क में प्रकाशित लेख पढ़ने का अवसर मिला। इसमें उदयपुर के स्व. पं. नाथूलाल भगीरथ व्यास द्वारा उपलब्ध कराई गई सूचना के आधार पर कलानिधि के सभी अध्यायों का नामोल्लेख था। मैंने श्री अग्रवाल से इस सम्बन्ध में पत्राचार किया तो ज्ञात हुआ कि उनके पास कोई प्रतिलिपि नहीं है।

उनके इस सुझाव ने मेरा पृष्ठपोषण किया कि शिल्पग्रन्थों के पाठ नष्ट-भ्रष्ट, खण्डित मिलते हैं इसलिए जो मिल गया है, उसे तो एक बार सम्पादित कर प्रकाशित करवा ही लें। हो सकता है, कहीं से अन्य पाठ मिल जाए। मैंने शेष पाठ के लिए देश के अन्य कई पाण्डुलिपि संग्राहकों, ग्रन्थ भण्डारों से लगभग दो वर्षों तक पत्राचार व दूरभाष सम्पर्क भी किया किन्तु निराशा ही हाथ लगी। तथापि, श्री अग्रवाल के उक्त लेख के आधार पर गोविन्द के मुख्य उपस्कारक ग्रन्थ अपराजितपृच्छा व अन्य ग्रन्थों के आधार पर शेष अध्यायों को पूर्ण किया गया। परिशिष्ट में भट्ट लक्ष्मीधर विरचित 'कृत्यकल्पतरु' से ध्वजारोहण विधि को भी स्थान दिया गया है। वास्तुपूजा के निमित्त वशिष्ठसंहितोक्त विधि दी गई है।

कलानिधि का यदि सम्पूर्ण पाठ कहीं से मिल सके तो भविष्य में उसका उपयोग किया जा सकेगा किन्तु मुझे विश्वास है कि सम्भावित पाठ प्रस्तुत पाठ से मिलता-जुलता नहीं तो अधिक भिन्न भी नहीं होगा। अस्तु,

इस ग्रन्थ का पाठ तैयार करने में सहधर्मिणी पुष्पा व अनुज अरविन्द चौहान, पुत्री अनुभूति चौहान और अनुकृति ने पर्याप्त श्रम किया है। अनुभूति ने भूमिका के लिए ग्रन्थों के उद्धरण खोज निकालने में अपनी पर्याप्त ऊर्जा लगा दी। मेरे पूरे परिवार की यह कल्पना है कि हमारे आवास नगर चित्तौड़गढ़ में प्रणीत वास्तु ग्रन्थों के विषय-वैभव को निखिल विश्व पहचाने। कुछ यही कल्पना परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली के सञ्चालक, संस्कृतसेवी आदरणीय श्रीकन्हैयालालजी जोशी भी लिए हैं। इस ग्रन्थ का प्रकाशन उनके इसी ध्येय का सूचक है, उनके प्रति आभार। भविष्य में गोविन्द विरचित 'द्वारदीपिका' एवं 'उद्धारधोरिणी' भी आपके कर-कमलों में अर्पित करूँगा। गोविन्द के जीवन को लगभग 450 वर्ष पूरे हो चुके हैं, इस अवधि में यह ग्रन्थ प्रकाशन से दूर ही रहा है, कुछ शिल्पियों के पास अवश्यक इसकी विधियाँ रहीं। पहली बार कलानिधि का प्रकाशन हो रहा है। प्रस्तुत संस्करण कैसा बन पड़ा, इस हेतु विद्वानों, आलोचकों की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी— *गच्छत: स्खलनं क्वापि भवेत्येव प्रमादत:। हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जना:॥*

विदुषां वशंवद:

**श्रीकृष्ण 'जुगनू'**

43, राजश्री कॉलोनी,
विनायकनगर, उदयपुर।
अक्षय तृतीया, 2004ई.

# अध्यायानुक्रमणिका


| अध्यायसंज्ञा | पृष्ठाः |
|---|---|
| 1. प्रासादस्योर्ध्वमाननिर्णयो प्रथमप्रकाशः | ८१ |
| 2. रेखार्णवनिर्णयं द्वितीयप्रकाशः | ८६ |
| 3. अष्टादशखण्डारेखार्णवनिर्णयो तृतीयप्रकाशः | ९२ |
| 4. रेखाभेदस्कन्धोदयकलाभेदश्चतुर्थप्रकाशः | ९९ |
| 5. रेखाकुण्डल्यानामः पञ्चमप्रकाशः | १०२ |
| 6. गुणदोषरेखाविभक्तिकोशप्रकारनामषष्ठःप्रकाशः | १०७ |
| 7. प्रासादपुरुषनिवेशनामसप्तमप्रकाशः | ११७ |
| 8. प्रासादघण्टामलसारिकानिर्णयोनामष्टम प्रकाशः | ११९ |
| 9. कलशप्रमाणलक्षणञ्च नवमप्रकाशः | १२३ |
| 10. प्रासाददण्डध्वजप्रमाणनामदशम प्रकाशः | १२७ |
| 11. ध्वजारोहणप्रासादमाहात्म्यनामेकादश प्रकाशः | १३१ |
| **परिशिष्टम्-** | |
| ध्वजारोहणविधिः | १३५ |
| वास्तु | १४७ |
| उपस्कारक ग्रन्थ | १५३ |
| चित्रावली | १५९ |

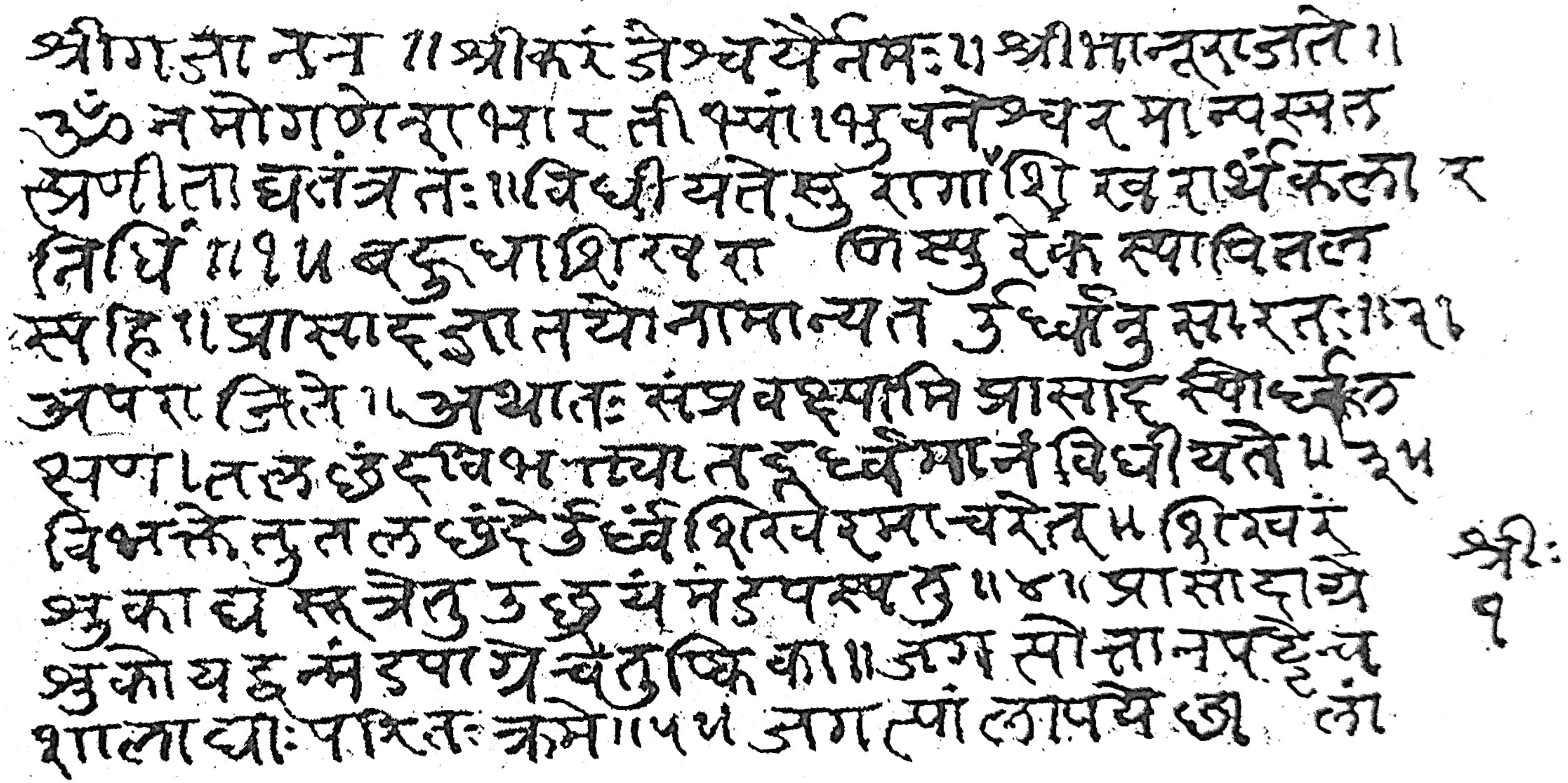

बड़ौदा स्थित ऑरियंटल इंस्टीट्यूट में विद्यमान 'कलानिधि' की मातृका [क्रमाङ्क 11001] का प्रथम पृष्ठ।

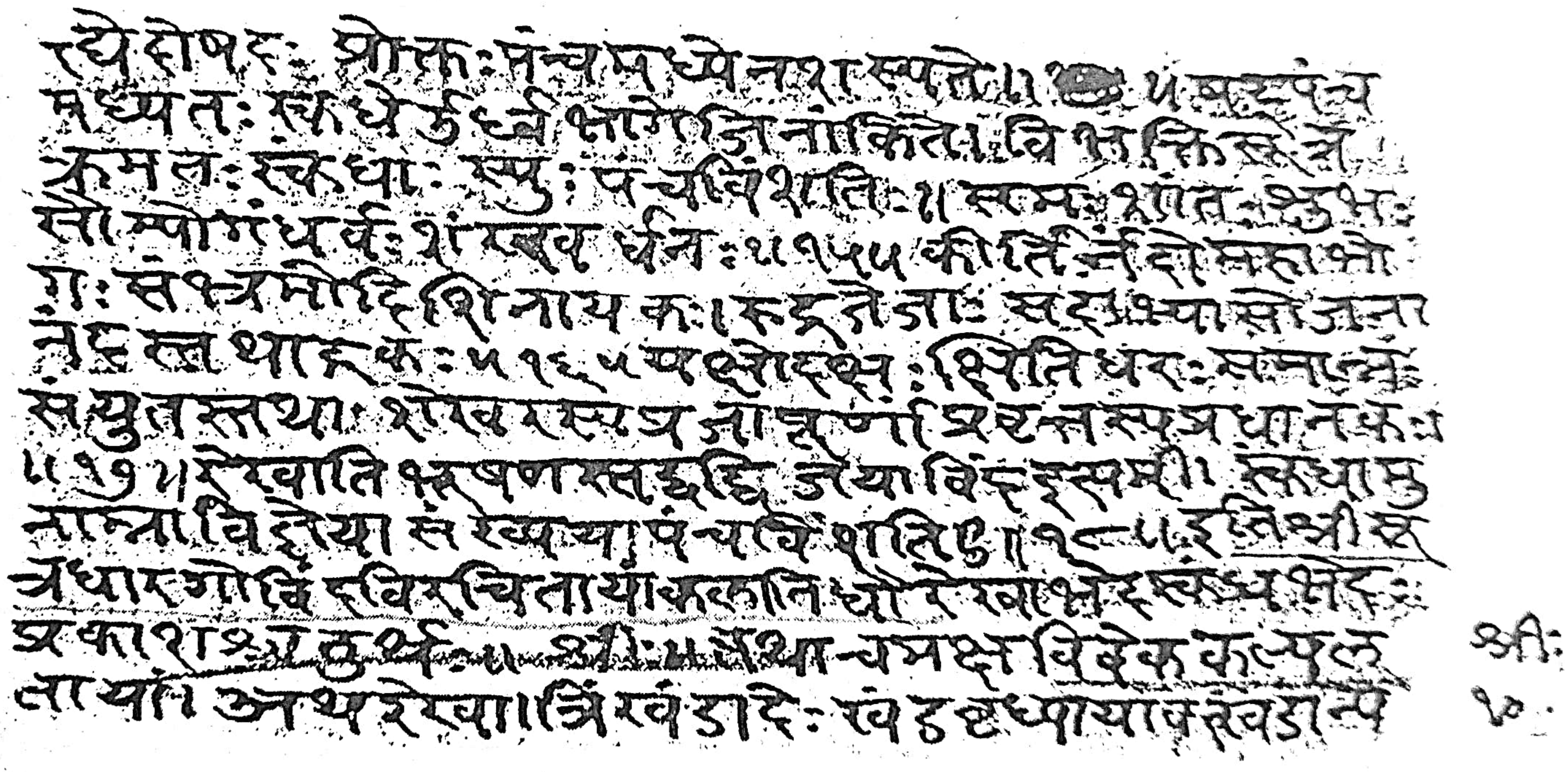

वड़ौदा स्थित ऑरियंटल इंस्टीट्यूट में विद्यमान 'कलानिधि' की मातृका [क्रमाङ्क 11001] का अंतिम खंडित पत्र।

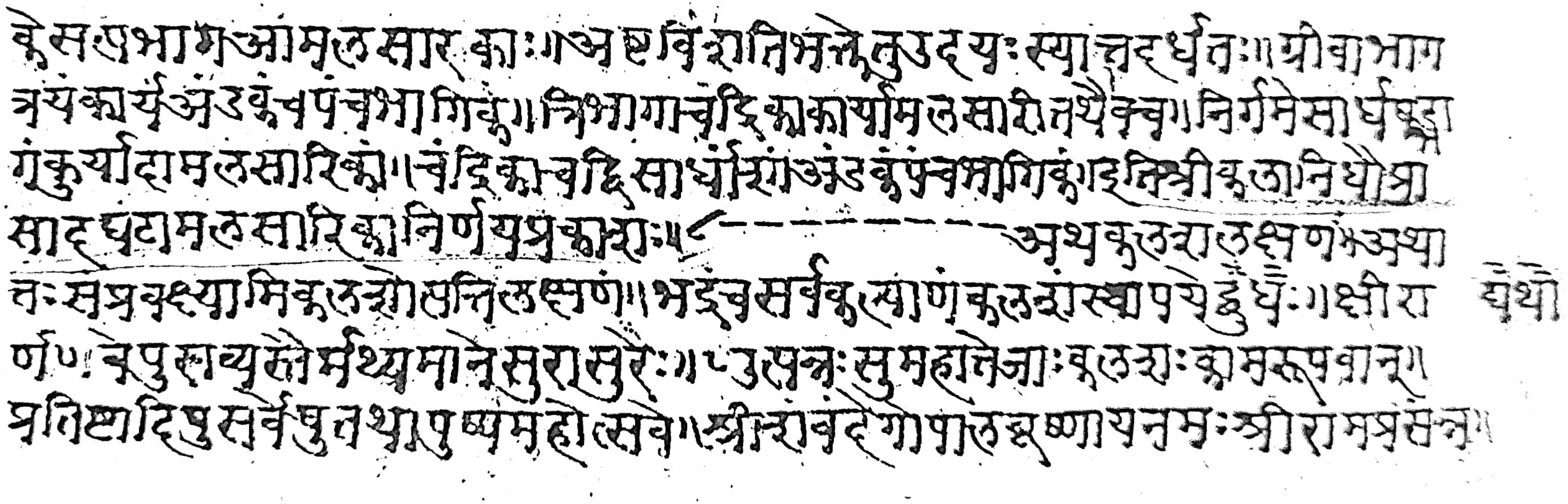
के सप्तभागं आमलसारकः ॥ अष्टविंशतिभक्ते तु उदयः स्यात्तदर्धतः ॥ ग्रीवा भाग
त्रयं कार्यं अंडकं च पंचभागिकं ॥ त्रिभागा चंद्रिका कार्या मलसारी तथैव च ॥ निर्गमे सार्धषड्भा
गं कुर्यादामलसारिकां ॥ चंद्रिका चंद्रिसार्धं [illegible] अंडकं पंचभागिकं ॥ इति श्रीकलानिधौ प्रा
साद घंटामलसारिका निर्णय प्रकाशः ॥ ८ ---------- अथ कलशलक्षणं ॥ अथा
तः संप्रवक्ष्यामि कलशोत्पत्तिलक्षणं ॥ भद्रं च सर्वकुंभानां कलशानां स्थापयेद्बुधैः ॥ क्षीरा ग्रंथो
र्णवे पुरा प्रोक्तो मथ्यमाने सुरासुरैः ॥ उत्पन्नः सुमहातेजाः कलशः कामरूपवान् ॥
प्रतिष्ठादिषु सर्वेषु तथा पुष्पमहोत्सवे ॥ श्रीराधावंदे गोपालकृष्णाय नमः श्रीरामप्रसन्न ॥

बड़ौदा स्थित ऑरियंटल इंस्टीट्यूट में विद्यमान [मातृका - 8276] 'कलानिधि' का अंतिम पत्रांश।

# देवस्थापत्य ग्रन्थों की परम्परा व गोविन्दसूत्रधार

भारतीय परम्परा में मन्दिर निर्माण की परम्परा आस्था की अभिव्यक्ति का एक सशक्त पहलू है। मन्दिर को देवालय, देवस्थान, देवायतन, देवनिकेतन, देवसद्म, प्रासाद आदि भी कहा जाता है। पौराणिक परम्पराओं ने विश्वकर्मा को इस विद्या का प्रवर्तक कहा है। विश्वकर्मा ने ब्रह्मा से इस शिल्प की शिक्षा ली व लोकास्थाओं की स्थिरता के महत् अर्थ में देवालयों का निर्माण किया। वामनपुराण में विश्वकर्मा द्वारा शिव के लिए मन्दार पर आयतन बनाने का वर्णन है जबकि हरिवंश में श्रीकृष्ण के लिए द्वारिका के निर्माण की विस्तृत कथा दी गई है। ब्रह्मवैवर्तपुराण, वायु, अग्नि, पद्म, गरुडादि पुराणों में भी विश्वकर्मा को इस अर्थ में महत्वपूर्ण सृष्टा के रूप में स्वीकारा गया है जबकि द्राविड़ शिल्प ग्रन्थों में मय को यह सम्मान दिया गया है। विश्वकर्मा को आदि नियामक स्वीकारते हुए नाना ग्रन्थों में उसे देव शिल्पी कहा गया है तथा प्रत्येक शिल्पी को उसी का स्वरूप जानने का निर्देश दिया गया है।

विश्वकर्मा के मतों का उल्लेख बृहत्संहिता (580 ई.) में भी मिलता है। विश्वकर्मा ने अपने वास्तु व गणितादि अन्यान्य कला विषयक ज्ञान का संसारपाश छेदन के उद्देश्य से अपने मानसपुत्रों के प्रति कथन किया- मनुसाध्यसमुद्भूतं संसारपाशछेदनम्। विश्वकर्मा के चार मानस पुत्रों के नाम हैं— जय, विजय, सिद्धार्थ तथा अपराजित-

तस्मै तदासनं दत्त्वा स्थितावासनयोरुभौ।

चत्वारो मानसाः पुत्रा विश्वकृतपार्श्वतः स्थिताः॥

एकैक च यथाशक्ति स्वयं वै सृष्टिकारकाः।

जयो विजय आख्याताः सिद्धार्थश्चापराजितः॥ *(अपराजितपृच्छा 32, 14-15)*

सम्पूर्ण पश्चिमोत्तर भारतवर्ष में विश्वकर्मा के मतों का प्रसार और पल्लवन मिलता है। गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, हिमाचलप्रदेश, सिन्ध तक विश्वकर्मीय शास्त्रानुसार देवालयों एवं मनुष्यालयों का निर्माण होता आया है। राजस्थान के मेवाड़ प्रदेश में महाराणा लाखा, मोकल, कुम्भा व रायमल के काल में विश्वकर्मीय निर्देशों पर विशेष कार्य हुआ। सूत्रधार जल्ह, लीला, खेता, जयता आदि के परिवारों ने इस दिशा

में महत्वपूर्ण योगदान किया।

ज्ञात इतिहास के अनुसार पाटन से क्षेत्रार्क या खेता का मेवाड़ आगमन माना भी जाए तो मण्डन और उसके समकालीन सूत्रधार जैता या जयता के पुत्रों में बलराम, चौथ, पउमी आदि ने कुम्भा के काल में ही अपने शिल्प सृजन का चमत्कार दिखाया तथा कीर्तिस्तम्भ जैसी रचना दी तो मण्डन के पुत्रों ने भी कुम्भा के उत्तराधिकारी उदयकर्ण तथा रायमल के काल में अपनी सेवाएं दीं। कुम्भा स्वयं स्थापत्यशास्त्र था। जय और अपराजित के मतानुसार उसने स्थापत्यशास्त्र को लिखा व शिलोत्कीर्ण करवाकर चित्तौड़गढ़ के कीर्तिस्तम्भ के निकट स्थापित करवाया था। इसका एक श्लोक इस तथ्य की पुष्टि करता है-

श्रीविश्वकर्माख्यमहार्यवीर्यमाचार्यमुत्पत्तिविधावुपास्य।

स्तम्भस्य लक्ष्मातनुते नृपालः श्रीकुम्भकर्णो जयभाषितेन ॥ 2 ॥

[Sarada HV : Maharana Kumbha Page 168]

इस प्रकार मेवाड़ में इस काल में प्रमुख स्थपितों में दो परिवार संलग्न थे-

**1. सूत्रधार जयता का परिवार**- इस परिवार का पितृपुरुष सूत्रधार लाषा या लक्ष था। चित्तौड़ से विक्रम संवत् 1495, 1499, 1507, 1510 तथा 1515 आदि के लघु लेख मिले हैं जिनमें सूत्रधार लाषा और उसके पुत्र जयता, नारद तथा जयता के पुत्र नापा, पुञ्जा, भोमा, चौथा आदि के नाम मिलते हैं। इन्हीं के द्वारा चित्तौड़गढ़ में कुम्भा के काल में कीर्तिस्तम्भ, कुम्भस्वामी का मन्दिर, कुछ राजप्रासाद तथा रामपोल आदि का निर्माण हुआ अथवा उनका जीर्णोद्धार कराया गया था। इनमें से संवत् 1515 के लेख में लाषा के लिए 'सकलवास्तुशास्त्रविशारद' विरुद का प्रयोग किया गया है।

**2. सूत्रधार क्षेत्रार्क का परिवार**- सूत्रधार क्षेत्रार्क या खेता और उसके पुत्र मण्डन के परिवार का योगदान शिल्पशास्त्रोद्धारक की दृष्टि से अपूर्व माना जाता है। इस परिवार के के गुजरात से मेवाड़ में आने को लेकर मण्डन के निमित्त महाराणा मोकल द्वारा निर्धारित की गई मर्यादा, दान आदि विषयक अठारह पङ्क्तियों वाला एक ताम्रपत्र पीछोली, उदयपुर के निवासी भँवरलाल भारद्वाज के पास देखा गया था जिसका मूल पाठ डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने प्रकाशित करवाया था-

'श्रीगणेश प्रसादातु॥ श्रीरामोजयति॥ श्रीएकलिङ्गप्रसादातु॥

महाराजाधिराज महाराणा श्री मोकलजी आदेशात् सुत्रधार

मण्डनपेतारा करय थने गुजरात थी अठे दरबार में
सीलपसास्त्र भण्यो थको सुत्रधार हो नहीं, जीं सुं थने गुजरात
थी बुलायो बहोत मेनत सुं ने आ मरजाद बांद दीदी जीरी
वीगत... ... ... ... ... ... ... ... ...
... ... ... ... ... ... ... ... ... ... ...
गाम एक गुन्दाली प्रगणे केलवाड़ा रे कोठार थी पको पेट्यो 1
दानी चौत्रा थी मास एक प्रत रु 30) जनानी डोढ़ी थी वरसोदरो।
नामो 1... ... ... ... ... ... ... ... ... ...
देवरो बावड़ी तलाव मेल मेलाइत वे जदी रो होम यज्ञ वे जदी
कुण्ड मण्डप वेदी रो वास्तु वरणी रो नेग श्री विश्वकर्माजी रा
पुजन रो नेग रो सराजाम सारो थने मया कर दीदो सो सारा
वंश रो सपुत कपुत पल्या जासी यो पुन श्रीजी रो है
अणी मरजाद री चोलण करेगा कोई मारा वंश रो उथापैगा जी ने श्री म्हा
सत्यां री आण है दुवे श्रीमुष प्रत दुवे पञ्चोली लक्षणसिंह
गोरावत स्वदत्ता परदत्ता वाजे हरंति वसुन्धरा षष्टि वर्ष सह
स्राणि विष्ठायां जायते क्रमी लीखता पञ्चोली चत्रभुजरा-
घोदासोत् संवत् 1482 रा वर्षे सावण सुद 2 बुधे।'

*(हिन्दुस्तानी क्वार्टरली, कलकत्ता जून 1954 जि. 30 सं. 2 पृष्ठ 178-82)*

विक्रम संवत् 1482 के इस ताम्रपत्र की भाषा को लेकर विरोधाभास है। श्रीनाथूलाल भागीरथ व्यास ने इसे जाली सिद्ध किया है और कहा है कि शोध की दृष्टि से यह दानपत्र बिल्कुल ही अनुपयुक्त होकर 18वीं शताब्दी से पूर्व का प्रतीत नहीं होता बल्कि व कृत्रिमता की ओर ही उसको ले जाता है। *(शोध पत्रिका, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर, सितम्बर 1955 पृष्ठ 50-83)*

मण्डन जो कुम्भा का समकालीन था, अतः उसका जीवनकाल भी कुम्भा का ही माना जा सकता है अर्थात 1440-1460 ई.। सूत्रधार मण्डन ने बहुत परिश्रम से वास्तु-शिल्पशास्त्र के ग्रन्थों का समीक्षायण करते हुए समकालीन आवश्यकता के

अनुसार पुनर्सम्पादन किया। उसी के पुत्र गोविन्द व ईश्वर तथा ईश्वर के पुत्र छीतर (1499ई.)ने भी मेवाड़ में देव व जन स्थापत्य के कार्यों को पूरा किया। बहुत सम्भव है कि मण्डन के पिता क्षेत्रार्क ने विश्वकर्मीय 'जयपृच्छा' का सम्पादन किया था।

इसी काल में जहां आबू पर्वत पर, अचलगढ़ में सूत्रधार देवाक, मेवाड़ ज्ञातीय सूत्रधार मिहीपा, देवा, हला, पदा, हांपा, नाला, दाना, कला आदि तथा आदिनाथ मन्दिर के निर्माण में डूङ्गरपुर के सूत्रधार लूम्बा और लापा या नापा और कुम्भगढ़ में सम्भवत: धषण, पना जैसे शिल्पी-सूत्रधार भी सक्रिय थे।

मेवाड़ के शिल्पियों के कार्य की इतनी प्रशंसा हुई कि कालान्तर में जब शत्रुञ्जय पर्वत स्थित जैन तीर्थ का जीर्णोद्धार कार्य हुआ तब यहां से शिल्पियों को सम्मान वहां बुलाया गया, इनके नाम थे- नाथा, जेता, भीम, वेला, टीला, पोमा, गोरा, ढोला, देवा, गोविन्द, वच्छा, भान, छाभा, दामोदर, हरराज के नाम उल्लेखनीय है। इनमें कुछ शिल्पी गुजरात के थे। शत्रुञ्जय तीर्थ का जीर्णोद्धार कार्य 1531 ई. में सम्पन्न हुआ था। *(भावनगर इन्स. सं. 10, पृष्ठ 131-140)* उक्त सूत्रधार नाथा व गोविन्द नामक शिल्पी सूत्रधार मण्डन के अनुज व पुत्र ही है, ऐसा कहने के लिए अन्य कोई पुष्ट आधार नहीं किंतु वे इस काल तक जीवित अवश्य रहे होंगे, ऐसा स्वीकारने से इन्कार भी नहीं किया जा सकता है।

*महाराणा रायमल और तत्कालीन स्थापत्य व शिल्पकार्य-*

महाराणा कुम्भा के उत्तराधिकारी के रूप में पितृघाती उदयसिंह या उदा मेवाड़ की गद्दी पर बैठा किंतु लोगों ने उसका मुख देखने तक से परहेज किया और विक्रम संवत् 1530 (1473 ई.) में सामन्तों व जनबल से रायमल ने उसे चित्तौड़गढ़ से खदेड़ दिया। उसने फिर से मेवाड़ में विश्वास प्राप्ति तथा कुम्भा के कार्यों को अग्रसर करने का उपक्रम किया। उसके ये प्रयास उसके शासन काल में संवत् 1566 (1509 ई.) अर्थात् लगभग 36 सालों तक चलते रहे।

आज यशद, सीसा और रजत की खदान के रूप में जग-जाहिर जावरमाईंस (शिलालेखों में योगिनीपुर) में रायमल के काल में भी खनन होता था। हाल ही यहां हिरण्यकश्यप के किले पर मैंने मेवाड़ के महाराणा लाखा या लक्षसिंह के राज्यकाल के वास्तु अवशेष खोजें हैं, जो रायमल से लगभग सवा सौ साल पहले बने हैं। इससे विदित होता है कि महाराणा लाखा के काल तक जावर में बड़े पैमाने पर उत्खनन होने लगा था और जावर एक महत्वपूर्ण नगर के रूप में विख्यात हो चुका था।

रायमल ने अपनी बहन और महाराणा कुम्भा की पुत्री रमाबाई को मेवाड़ का यह सर्वाधिक राजस्व और आय वाला क्षेत्र दान कर दिया था। रमाबाई का विवाह सोरठ-जूनागढ़ के चूड़ासमा यादव नरेश मण्डलिक अन्तिम के साथ हुआ था जिसने बाद में महमूद बेगड़ा से हारकर इस्लाम धर्म स्वीकार लिया। रमाबाई मेवाड़ चली आई और यहीं पर वैष्णव मत की दीक्षा ग्रहण कर विष्णु की पूजा में निरत हुई। वह भक्तिपरायण स्त्री थी, उसने विक्रम संवत् 1554 में जावर में आराधना के निमित्त विष्णु का पञ्चायतन मन्दिर बनवाया तथा पवित्र जलकुण्ड भी खुदवाया। आज भी इस मन्दिर को रमास्वामी का मन्दिर कहा जाता है-

श्रीचित्रकूटाधिपतिमहाराजाधिराजमहाराणाश्रीकुम्भकर्णपुत्री श्रीजीर्णप्राकारे सोरठपतिमहारायाश्रीमण्डलीकभार्याश्रीरमाबाईप्रसादरामस्वामि...। *(गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, प्रथमभाग पृष्ठ 325 पर पाद टिप्पणी)*

इसी प्रकार कुम्भलगढ़ में भी दामोदर और कुण्डेश्वर के मन्दिर की पहाड़ी के नीचे एक सरोवर तथा योगिनीपत्तन या जावर में रामकुण्ड व मन्दिर बनवाया जिसका वर्णन जावर के रमास्वामी मन्दिर की प्रशस्ति में हैं। कुम्भलगढ़ में इस मन्दिर का दायित्व सूत्रधार रामा को सौंपा गया था जबकि जावर के मन्दिर के निर्माण का श्रेय मण्डन के पुत्र ईसर या ईश्वर को जाता है। जावर के इसी मन्दिर में वह प्रशस्ति अद्यावधि विद्यमान है जिससे मण्डन के ऐतिहासिक व्यक्ति होने का प्रमाण मिलता है तथा उसकी वंश-परम्परा पर भी प्रकाश पड़ता है-

श्रीमत्कुम्भनृपस्य दिग्गजरदातिक्रान्तकीर्त्यंबुधे: कन्या यादववंशमण्डनमणि श्रीमण्डलीकप्रिया। श्रीमत्कुम्भलमेरुदुर्गशिखरे दामोदरं मन्दिरं श्रीकुण्डेश्वरदक्षिणाश्रित गिरे सर: सुन्दरं। श्रीमद्भूरिमहाब्धिसिंधुभुवने श्रीयोगिनीपत्तने भूय: कुण्डमचीरत्किल रमा लोकत्रये कीर्तये॥ *(ओझा उपर्युक्त पृष्ठ 341 पर पाद टिप्पणी)*

एक प्रशस्ति में यह भी कहा गया है-

धत्ते यादवपुत्रवादिनमणिर्माणिक्यनैराजनम्। तावच्चारुतरं रमा विरचितं कुण्डं चिरं नंदतु॥ मेरौकुम्भकुले महीपतनया श्रीमण्डलीक प्रिया। दामोदरं मन्दिरं व्यरचयत् कैलासशैलोज्ज्वलम्॥ श्रीरस्तु सूत्रधार रामा। *(वीरविनोद भाग 2, पृष्ठ 57)*

जावर की प्रशस्ति में ही सूत्रधार ईश्वर का नाम भी आता है-

श्रीमेदपाटेश्वरेदेशे कुम्भकर्णनृपगृहे क्षेत्रार्क सूत्रधारस्य पुत्रो मण्डनं आत्मवान्। मण्डनसुत ईसर ए कमठाणु विरचितम्...। *(वीरविनोद उपर्युक्त)*

रायमल के काल में मेदपाटेश्वर एकलिङ्गजी के मन्दिर का जीर्णोद्धार हुआ था। एकलिङ्गजी मन्दिर में दक्षिण द्वार में लगी 22 मार्च 1488 ई. की प्रशस्ति से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि रायमल ने राम, शाङ्कर तथा समयासङ्कट नामक तालाब का निर्माण करवाया और एकलिङ्गजी के मन्दिर का पुनर्नवीकरण करवाया। इस कार्य का नेतृत्व सूत्रधार अर्जुन ने किया था, अर्जुन ने ही इस प्रशस्ति को उत्कीर्ण किया था-

देवः सूत्रमृदर्जुनो व्यरचयत् श्रीशांभवं मन्दिर रम्यं रम्यतमामिमामुदकिस्तस्मिन् प्रशस्तिं सुधीः। *(वीरविनोद भाग 1, पृष्ठ 423 तथा भावनगर इंस्क्रिप्शन. नं. 9 पृष्ठ 117, 133)*

इस प्रशस्ति से चित्तौड़गढ़, नागदा-रामा, सिंहलीपुर, चीरुवर अथवा चीरवा, बाँधनवाड़ा, भीमाण या भुवाणा, कठड़ावन, मलकखेट, नोवांपुर, पीप्पली, पञ्चदेवला, रत्नखेट या रतनखेड़ा, थूर, कुम्भलगढ़ आदि गांवों, नगरों का वर्णन आता है, जिनका मैंने दौरा किया व पाया कि ये सभी स्थान सांस्कृतिक गतिविधियों की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण थे। यहां देव-वास्तु-शिल्प के कई अवशेष मिलते हैं।

रायमल के काल में ही मेवाड़ के पुरानगर व शिबियों की राजधानी के रूप में पहचाने गए माध्यमिका (सम्प्रति नगरी गांव) के निकट घोसुण्डी में सुन्दर वापी का निर्माण हुआ। इसका निर्माण रायमल की पत्नी शृङ्गारदेवी जो मारवाड़ के शासक राव जोधा की पुत्री थी, ने करवाया था। यहां से प्राप्त अक्षय तृतीया सन् 1504 ई. की प्रशस्ति में कवि महेश ने रायमल की उपलब्धियों का वर्णन किया है। *(जरनल बम्बई ब्रांच रॉयल एशियाटिक सोसायटी अङ्क 55 भाग 1)*

मेवाड़-मारवाड़ सीमा पर स्थित नारलाई गांव में आदिनाथ मन्दिर में रायमल के काल में ही, 1500 ई. में प्रतिमा स्थापित की गई। इस समय सूत्रधार सोमा ने यहां अपनी सेवाएं दीं। इसकी स्वीकृति महाराजकुमार पृथ्वीराज ने दी थी- श्रीमे[illegible]ाट देशे श्रीकुम्भकर्ण पुत्र राणा श्रीरायमल्ल विजयराज्ये तत्पुत्र महाकुमार पृथ्वीराज[illegible]नात... आ. श्री ईश्वरसूरिभिः इति लघुप्रशस्तिरियं लि. आचार्यश्री ईश्वरसूरिणा उत्कीण। सूत्रधार सोमकेन। *(भावनगर इन्स. सं. 12, पृष्ठ 143-145)*

रायमल के काल में ही ईश्वर का पुत्र छीतर भी शिल्पी के रूप में प्रसिद्ध हो चुका था। चित्तौड़गढ़ के आसपास उसने जैन मन्दिरों के निर्माण में प्रतिभा दिखाई। चित्तौड़ से प्राप्त सन् 1499 ई. के खरतरगच्छ अभिलेख में विवेवरत्नसूरि के शिष्य जयकीर्ति उपाध्याय के कार्यों के साथ रायमल की महत्ता का वर्णन किया गया है। इस

प्रशस्ति से छीतर के कार्यों का बोध भी होता है–सूत्र ईसर पुत्र सूत्र छीटरेणेयं कारितं मङ्गलं महाश्री। *(गोपीनाथ शर्मा–राजस्थान के इतिहास के स्रोत, पृष्ठ 157; उदयपुर पुरातत्त्वविभाग के संग्रहालय में विद्यमान तेबीसवां शिलालेख तथा राजपूताना म्यूजियम, अजमेर की वार्षिक रिपोर्ट– वर्षान्त, मार्च 1927 पृष्ठ 3–7)*

उक्त विवरण के आधार पर ऐसा जान पड़ता है कि चूंकि मेवाड़ और गुजरात में इस काल में बड़े पैमाने पर देव तथा जन स्थापत्य के महत्व का कार्य निरन्तर था, ऐसे में वास्तु–शिल्प शास्त्रीय ग्रन्थों की आवश्यकता भी समझी जा रही थी। यह आवश्यकता जहां नवनिर्माण के लिए थी, वहीं जीर्णोद्धार कार्य के लिए भी थी। दुर्ग, उद्यान वाटिका, महाराजाधिकार निवेश, पुर–ग्राम निवेशादि के लिए भी शास्त्रीय विमर्श आवश्यक था।

ऐसे में तत्कालीन आवश्यकता के अनुसार ही ग्रन्थों का लेखन–सम्पादन हुआ। सूत्रधार मण्डन (1440–1467 ई.), सूत्रधार नाथा (1460–1531 ई.) तथा सूत्रधार गोविन्द (1460–1531 ई.) ने करनी या सूत्राष्टक के ही कलम भी उठाई और ग्रन्थों का शोधन–चिन्तन पूर्वक रचनाकर्म किया।

मण्डन ने कई ग्रन्थ लिखे हैं। विभिन्न सूचीपत्रों के अनुसार मण्डन के ग्रन्थों को दो भागों में बांटा जा सकता है, मण्डन के ज्योतिष विषयक ग्रन्थों को छोड़कर अन्य सब ग्रन्थों को सानुवाद, विशेष भूमिका–भाष्य के मैंने सम्पादित किए हैं–

**मूर्ति–शिल्पशास्त्र विषयक ग्रन्थ** – रूपमण्डन्, देवतामूर्तिप्रकरणम् अथवा रूपावतार

**जन वास्तुशास्त्र विषयक ग्रन्थ** – वास्तुमण्डनम्, वास्तुसारमण्डनम्, राजवल्लभ वास्तुशास्त्रं, आयतत्त्वम्

**देववास्तु विषयक ग्रन्थ** – प्रासादमण्डनम्

**ज्योतिषशाकुनादि ग्रन्थ** – ज्योतिषमण्डनम् तथा शाकुनमण्डनम्।

सूत्रधार नाथा ने निम्न ग्रन्थ लिखा–

**वास्तुमञ्जरी** (इसमें तीन स्तबक है, ज्योतिष, आयादि गणित विषयक प्रथम स्तबक, प्रासाद स्थापत्य विषय प्रासादमञ्जरी द्वितीय स्तबक तथा प्रतिमा लक्षण विषयक रूपावतार तृतीय स्तबक)। यह आठ सौ श्लोकों का ग्रन्थ है। हाल ही में चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफीस, बनारस से इस ग्रन्थ का प्रकाशन मेरे सम्पादन हुआ है।

## सूत्रधार गोविन्द की रचनाएं

जैसा कि पूर्व में कहा गया है कि मण्डन की सृजन परम्परा को उसके पुत्र ने आगे बढ़ाया। विद्वानों ने उसकी रचनाओं का उल्लेख किया है। डॉ. डी.आर. भण्डारकर के अनुसार सूत्रधार गोविन्द ने तीन ग्रन्थ रचे-

1. कलानिधि 2. द्वारदीपिका तथा

3. उद्धारधोरिणी अथवा अनुकर्मविधानम्।

वर्ष 1919 जब डॉ. भण्डारकार संस्कृत ग्रन्थों की खोज के लिए उदयपुर आए थे तब यहां के तत्कालीन राजकीय सूत्रधार चम्पालाल भारद्वाज के संग्रह में मण्डन के साथ ही गोविन्द के उक्त ग्रन्थों को देखा था। *(राजस्थान में संस्कृत ग्रन्थों की खोज रिपोर्ट, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर पृष्ठ 39)*

बाद में यह ग्रन्थ संग्रह प्रकाशन की दृष्टि से किसी के कार्य आया हो, ऐसा ज्ञात नहीं होता। इस संग्रह में गोविन्द विरचित एक आयुर्वेदिक रसायन विषयक ग्रन्थ नहीं था, यह ग्रन्थ उदयपुर के राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान में विद्यमान है जिसका नाम है 'सारसमुच्चय' और यहीं पर इसकी प्रतिलिपि मेरे देखने में आई। यह 20.5 गुणा 16.5 आकार की है तथा इस इस ग्रन्थ में कुल 65 पृष्ठ हैं किंतु इसमें से 14, 15 तथा 21वां पृष्ठ नदारद है। इसका प्रतिलिपिकाल 18वीं सदी ठहराया गया है। *(केटलॉग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मैन्यूस्क्रिप्ट्स, भाग 12, पृष्ठ 316-317)*

यह आश्चर्य है कि गोविन्द ने आयुर्वेद पर भी ग्रन्थ का प्रणयन किया, यह उसकी बहुमुखी प्रतिभा को दर्शाता है। अन्यथा पूर्वोक्त तीन ग्रन्थ तो वास्तु-शिल्प कला पर ही आधारित है।

इनमें 'द्वारदीपिका' ग्रन्थ में देवपदानुसार द्वार के शुभशुभफल, राशिवश द्वारमुख, दिशानुसार द्वार, द्वारमान, द्वारोच्छ्रय, आयतनानुसार द्वारदेवता, त्रि, पञ्च, सप्त व नवशाखद्वार विभक्ति, दोष, द्वारदृष्टिनिर्णयादि विषयों को अपराजितपृच्छा, ज्ञानरत्नकोश, दीपार्णव, प्रासादमण्डनम्, जयपृच्छादि ग्रन्थों के आधार पर संपादित किया गया है।

'उद्धारधोरिणी' अथवा 'वास्तु उद्धारधोरिणी' अपरनाम अनुकर्मविधान में जीर्णवास्तु चालन शुभशुभता, जीर्णवास्तु गुण-दोष, जीर्णप्रासाद लक्षण, जीर्णलिङ्गोद्धार, जीर्ण प्रतिमादि विषयों पर उपर्युक्त ग्रन्थों के साथ ही मयमतम्, विष्णुधर्मोत्तर, अपराजितपृच्छा,

अग्नि आदि पुराणादि के मतों का सम्पादन मिलता है। 'कलानिधि' में मन्दिर की शिखर रचना का वर्णन किया गया है।

# मन्दिर संरचना और शिखर

सर्वेश्वर की पूजा पद्धति में देवालयों का माहत्म्य सर्वविदित है। वैदिक युग में प्रार्थना पद्धति से देवताओं की उपासना, आराधना की जाती थी। मन्दिर का सर्वप्रथम उल्लेख 'शतपथब्राह्मण' में मिलता है जबकि दो मण्डप युक्त मन्दिर बनाए जाते थे और ये मण्डप स्तम्भों व बल्लों पर आश्रित होते थे। इन पर छत या छतिस् डाली जाती थी। *(शतपथ 3, 5, 3, 9)* धरन् द्वारा छत को आश्रय दिया जाता था जिसे प्राचीन वंश कहा गया है। *(वही 3, 1, 1, 6)*

छतें व भित्तियां प्रायः नरकट की पट्टियों एवं चटाई से आच्छादित की जाती थी *(वही 3, 5, 3, 9)* किंतु अद्यावधि शतपथब्राह्मण के काल का कोई अवशेष नहीं मिला और न ही परवर्ती काल के किसी ग्रन्थ में देवालय निर्माण विषयक कोई स्पष्ट प्रमाण मिलता है। कुषाणकाल तक चैत्य एवं विहारों का निर्माण हुआ। बाद में जवकि गुप्तकाल में ब्राह्मण धर्म का पुनरूद्धार हुआ, तब स्पष्ट रूप से मन्दिरों का निर्माण होने लगा। भारत का पहला मन्दिर, जिसमें पत्थरों का प्रयोग किया था, सम्भवतः गुप्तवंश के संस्थापक श्रीगुप्त ने बनवाया था। इत्सिंग के अनुसार श्रीगुप्त द्वारा निर्मित देवालय नालन्दा से 40 ली (1 ली = 6 मील) की दूरी पर स्थिति था। यद्यपि इस काल के मन्दिरों का वास्तु-विन्यास बौद्ध-विहारों से अनुप्राणित था और उनमें गर्भगृह के साथ ही चिपटी छतें होती थीं। गर्भगृह के सामने ही स्तम्भाश्रित लघु या वृहद् अलिन्द या बरामदा (षण) होता था।

*प्रासादों की कोटियां-*

इस काल के साथ ही देव प्रासादों के विकास का जो क्रम शुरू हुआ तो मन्दिरों की तीन कोटियां सामने आई- नागर, द्राविड़ तथा वेसर। मान्यता यह है कि नगर में निर्माण होने से देवालयों को नागर कहा जाने लगा। जो देवालय द्रविड़ देश या दक्षिण में बनने लगे थे, उनको द्राविड़ कहा गया तथा दोनों ही मन्दिरों की मिश्र शैली को वेसर या मिश्रक नामाभिधान दिया गया।

इसी आधार पर शिल्पशास्त्र का बहुत कुछ विकास गुप्त और उत्तर गुप्तकाल में

ही माना जाता है। प्रारम्भिक मान्यताओं के अनुसार देवालयों की रचना मानव यष्टि की समान ही परिकल्पित की गई अर्थात् मानव देह की भांति ही पद से लेकर सिर तक के भाग देवालय में मूल या आधार तथा शिखर कहलाए। यह भारतीय आस्थाओं की नींव पर प्रतीकवाद का पल्लवन था।

'क्षीरार्णव' में प्रासाद की रचना को देव शरीर रूप माना गया है। नींव की शिला को पद के रूप में, गर्भगृह को उदर, नींव को जङ्घा, स्तम्भ को जानु, घण्टा को जिह्वा, दीपक को प्राण, प्रणाल को गुदा, देव के ब्रह्मस्थान को नाभि, पीठिका को हृदय, प्रतिमा को पुरुष, पद को अहङ्कार, ज्योति को चक्षु, ऊर्ध्वभाग को उसकी प्रकृति, प्रतिमा को आत्मा, द्वार के कुम्भी के तल के निम्न भाग को लिङ्ग, शिखर के शुकनास को नासिका, झरोखों को कान, शिखर के स्कन्ध को खम्भा और आमलसार के कण्ठ को कंठ, कलश को मस्तक व भित्ति लेप को मज्जादि रूप समझना चाहिए-

प्रासादो देवरूपः स्यात् पादौ पाद शिलास्तथा।
गर्भश्चैवोदरं ज्ञेयं जङ्घा पादोर्ध्व मुच्चते॥
स्तम्भाश्च जानवो ज्ञेया घण्टा जिह्वा प्रकीर्तिता।
दीपः प्राणः रूपो ज्ञेया ह्यपाने जल निर्गतः॥
ब्रह्मस्थानं यदैतच्च तन्नाभिः परिकीर्तिता।
हृदयं पीठिका ज्ञेया प्रतिमा पुरुषः स्मृतः॥
पादचारस्त्वहङ्कारो ज्योतिस्तच्चक्षुरुच्यते।
तदूर्ध्वं प्रकृतिस्तस्य प्रतिमात्मा स्मृतौ बुधैः॥
तलकुम्भादधोद्वारं तस्य प्रजननं स्मृतम्।
शुकनासा भेवन्नासा गवाक्षः कर्ण उच्चते॥
कायापाली स्मृतः स्कन्धे ग्रीवा चामलसारिका।
कलशस्तु शिरोज्ञेयो मज्जादित्पर संयुतम्॥ *(क्षीरार्णव 1, 1-7)*

शिल्पग्रन्थों से ज्ञात होता है कि प्रारम्भिक काल में नागर मन्दिरों को इन अष्टाङ्गों से युक्त किया जाता था-

**1. मूल या आधार**- नींव और उससे लगे अङ्ग जिन पर सम्पूर्ण प्रासाद को

आश्रित किया जाता है।

**2. मसूरक**- नींव और भित्तियों के मध्य का भाग।

**3. जङ्घा**- भित्तियां और विशेषकर गर्भगृह आदि की भित्तियां।

**4. कपोत**- अर्थात् देवालय का कार्निस।

**5. शिखर**- देवालय का शीर्ष भाग जो गर्भगृह का ऊर्ध्वभाग भी है।

**6. ग्रीवा**- शिखर से ऊपर का भाग।

**7. आमलक**- शिखर के शीर्ष पर स्थापित होने वाला आंवले के आकार का वह भाग जिस पर कलश प्रतिष्ठित किया जाता है।

**8. कलश**- शिखर पर स्थापित किए जाने वाली अण्डाकार रचना।

द्राविड़ शैली के मन्दिरों की स्थापत्य रचना किञ्चित भिन्न होती है। इन मन्दिरों का आधार भाग वर्गाकार होता है तथा गर्भगृह पर सीधा पिरामिड आकार का शिखर होता है। इस शिखर पर विभिन्न मंजिलें होती है। शीर्षभाग गुम्बदाकार, छह या आठ पहल का होता है। ये विस्तृत प्राङ्गण वाले व पर्याप्त ऊंचाई लिए होते हैं। प्राङ्गण में छोटे-बड़े अनेक मन्दिर, कक्ष, जलदीर्घिकाएं होती हैं। प्राङ्गण का मुख्य प्रवेशद्वार 'गोपुरम्' कहा जाता है।

गुप्तकाल में छतें सपाट ही अधिक होती थीं जबकि उत्तर गुप्तकाल में देवालयों में अलङ्करण को प्राथमिकता मिली तथा तथा उनके शीर्ष सुन्दर, सुसज्जित शिखर से मण्डित किए जाने लगे जो उस युग के शिल्पियों की उर्वर कल्पनाओं के द्योतक हैं। देवगढ़ का मन्दिर इस काल का अन्यतम उदाहरण माना जा सकता है।

*शिखर संरचना : प्रारम्भ और पल्लवन*-

देवालयों में शिखर की रचना अति महत्वपूर्ण कही गई है। इसके प्रारम्भ को लेकर कई विद्वानों के परस्पर विरोधी मत मिलते हैं। काडरिंगटन का मत है कि शिखर का उद्भव मध्ययुग में हुआ, किन्तु यह मत मान्य नहीं है। कतिपय विद्वानों ने माना है कि प्रथम शताब्दी के पूर्वार्द्ध में शिखर संरचना होने लगी थी। इस अवधारणा के मूल में विचार यह रहा है कि तत्कालीन झोपड़ियों से प्रेरणा लेकर शिल्पियों ने शिखर की कल्पना की होगी। इस प्रसङ्ग में पूर्वगुप्तशैली के अन्तर्गत बने नाचनाकुठारा के पार्वती मन्दिर की चिपटी छत की ऊपरी बनावट शिखर संरचना के उद्भव या प्राथमिक प्रयासों

की परिचायक है।

यह भी विचार प्रकट किया गया है कि शिखर की उत्पत्ति बौद्ध स्तूपों के आश्रय या उसकी रचना से प्रसूत है। इस सन्दर्भ में यह कहा जाता है कि स्तूप के शिखर की बनावट को क्रमशः ऊपर कुछ इस प्रकार बनाया गया है कि धीरे-धीरे वह अर्द्धव्यास से शुण्डाकार होता चला गया। स्तूपों में मण्डलाकार छत्र शिखर का ही पूर्व रूप है जो ऊपर की ओर किञ्चित शुण्डाकार निर्मित होने लगा। यह विचार अन्य प्रमाणों के अभाव में प्रथम व समीचीन भी माना जाता है।

पाँचवीं सदी के मन्दसौर में मिले कुमारगुप्त तथा बन्धुवर्मन के अभिलेख में एक सूर्य मन्दिर का वर्णन किया गया है जिसका निर्माण 437-38 ई. में हुआ तथा तत्कालीन लाट-गुजरात के रेशम-कौशेय शिल्पियों के संघ ने इसका 36 साल उपरान्त जीर्णोद्धार करवाया। इस मन्दिर के अवशेष वर्तमान के घोटारसी (प्राचीन नाम घोटावर्षिका, प्रतापगढ़ जिला चित्तौड़गढ़) के खेतों में मैंने देखें हैं। इस भंव्य शिखर था और उस पर ध्वजा फहरती थी। शिखर का यह प्रथम प्रमाण माना जा सकता है। इसके भग्नावशेषों में कतिपय प्रतिमाओं, स्तम्भों के पदाङ्गों के साथ ही आधा, खण्डित आमलक भी मैंने देखा है जो निश्चय ही इस मन्दिर के उन्नत शिखर पर स्थापित रहा होगा। इसे बहुत समय तक किसी स्तम्भ की तुला रचना तुल्य समझा जाता रहा किंतु यह चक्रीय रचना वास्तव में शिखर का आमलक है। अभिलेख में विस्तीर्ण, तुङ्गशिखर का उल्लेख भी है- विस्तीर्ण्ण तुङ्गशिखरं शिखरि प्रकाशमभ्युद्गतेन्द्वमल रश्मिकलापगौरं॥ *(जॉन फेथफुल फ्लीट : भारतीय अभिलेख संग्रह, जयपुर 1979, पृष्ठ 102)*

इसी प्रकार कुमारगुप्त प्रथम (415-16 ई.) के बिलसद् अभिलेख तथा कुमारपाल के सामन्त विश्ववर्मन (423-24 ई.) के झालावाड़ के निकटस्थ गङ्गधार में मिले अभिलेख में भी उच्च शिखरान्वित प्रासादों के निर्माण का संकेत मिलता है। विश्ववर्मा के मन्त्री मयूराक्ष ने विष्णुमन्दिर का निर्माण भी करवाया था जिसकी कैलाश पर्वत के उत्तुङ्ग शिखर के सदृश आकृति का गंगधार अभिलेख में उल्लेख है- कैलाशतुङ्गशिखर-प्रतिमस्य यस्स्य दृष्ट्वाकृतिं प्रमुदितैर्व्वकानारविन्दि। *(उपर्युक्त पृष्ठ 94)* उदयपुर जिलांतर्गत लोह प्रद्रावण के केंद्र के रूप में खोजे गए ईसवाल के निकट बड़वासन माता के मन्दिर के निकट गुप्तकालीन आमलक युक्त शिखर की संरचना मेरे देखने में आई है।

डॉ. राखालदास बनर्जी का इस सम्बन्ध में यह कहा जाना युक्ति संगत प्रतीत होता है कि उत्तर गुप्तकाल, लगभग छठी शताब्दी में ही देवालयों पर शिखर का

प्रचलन हुआ। प्रारम्भ में देवालयों की छतें चिपटी होती थीं किंतु कालान्तर में शिल्पियों, सूत्रधारों ने नवाचार किया। इसके परिणाम स्वरूप चिपटी छतों को ऊपर की ओर क्रमिक रूप से शुण्डाकार बनाया जाने लगा जो शिखर के रूप में व्यहृत हुआ। शिखर का पूर्ण विकसित रूप छठी सदी के देवगढ़ के दशावतार मंदिर के साथ देखा जाता है। इस प्रकार उत्तर भारतीय नागर शैली का प्रथम उदाहरण माना जाता है जो निपुण शिल्पियों के सतत परिश्रम और महान मेधा का परिचायक है। *(डॉ. सच्चिदानन्द सहाय- मन्दिर स्थापत्य का इतिहास, पटना 1989 पृष्ठ 17)*

उत्तर गुप्तकालीन विष्णुधर्मोत्तरपुराण में शिखर रचना पर विशेष जानकारी मिलती है। शिखर के अनुसार तव कैलास, त्रिकूट, राजराजाख्य आदि आठ प्रकार के प्रासाद बनने लगे थे जिनके विमान, सुरराट्, आनंद,सुसम, प्रभञ्जन, महासुमन, वज्र, लोकपाल, दिग्बन्ध, त्रिगुण, नंदक, आकाश, शंख, पद्मनाभ, अम्बु, मंगलादि सौ नाम भी थे-

शिखर कुहरोपेतो नानारूपभूपितः।

एक मण्डपसंयुक्तादृशैः सुरमन्दिरैः॥

... प्रासादानां शतं चैतत् समासात् कथितं मया।

यथेच्छाशाखामुखाः कार्या येषां दिङ्न प्रयोजिता॥ *(विष्णुधर्मोत्तरपुराण 3, 87, 107 तथा 129)*

इस प्रकार कहा जा सकता है कि गुप्तकाल तक देवालयों में शिखर रचना का विकास हो गया था और उन्नत शिखर पर आमलक के ऊपर कलश प्रतिष्ठित होने लगा था। इसके लिए शिखर को बहुत ही युक्तिसंगत विधि से तैयार किया जाता था और उसके साथ ध्वजा भी शोभायमान की जाती थी।

*एक जटिल विषय-*

देव वास्तुशास्त्रों के विकास या पल्लवन के साथ ही शिखर के नाना रूपों, अलङ्करणों और अङ्गों का विधान होता चला गया। इनके मूल में मन्दिर की सुन्दरता का ध्येय तो था ही, मन्दिर को उचित लक्षणों से सच्चरित्र, सविशेष्य और सुरम्य-सुभव्य करना भी था। राजपूतकाल, चालुक्यकाल और विशेषकर प्रतिहारकाल तक इस दिशा में विशेष रूप से चिंतन हुआ जिसे मैत्रकों के काल में भी निरंतर बल मिला। परवर्ती क्षेत्रीय नरेशों के काल में स्थापत्य की जो विशेषताएं परिलक्षित हुई, उनमें भी शिखरविधान एक प्रमुख विशेषता के रूप में पल्लवित होता रहा।

इस दिशा में मालव-अवन्तिका, गुजरात, राजपूताना के विभिन्न नरेशों के आश्रित सूत्रधारों ने नाना प्रयोग किया, नाना गणितीय पद्धतियों पर विचार किया और प्रासाद स्थापत्य के साथ उनको प्रदर्शित करने का उपक्रम किया। इनमें भौगोलिक विशेषता और देवाधारित, सम्प्रदायोक्त मान्यताएं सदैव विचारणीय रहीं। इस अवधि में रचित ग्रन्थों में समराङ्गणसूत्रधार, ज्ञानप्रकाशदीपार्णव, क्षीरार्णव, वृक्षार्णव, जयपृच्छा, अपराजितपृच्छा, प्रासादतिलक, ज्ञानरत्नकोश आदि के नाम स्मरणीय हैं जिनमें एक से लेकर दो या तीन अध्यायों तक शिखरविधान का वर्णन मिलता है। यहां यह भी स्मरणीय है कि खिलजिया सल्तनतकाल को मूर्तिभञ्जनावधि के रूप में कितना ही कोसा जाता रहा हो किंतु अल्लाउद्दीन खिलजी के ही दरबारी चन्द्राङ्गज ठक्कुर फेरू ने प्रासाद निर्माण विधि के साथ ही शिखर निर्माण निर्देशों को भी वरीयतः लिखा है।

क्षीरार्णव के रचनाकाल तक शिखरों के अनेक प्रकार प्रचलन में आ चुके थे। तब शिल्पियों को निर्देश दिया जाने लगा था कि वे शिखरों को अनेक अण्डकों से सुशोभित करते हुए चढ़ाएं। मण्डोवर पर छज्जे के ऊपर प्रहार का थर करें और उस पर शृङ्ग चढ़ाएं। एक शृङ्ग के उपर दूसरा शृङ्ग चढ़ाते हुए आधा भाग छोड़ें। इसी प्रकार अन्य निर्देश भी निर्धारित हो चुके थे-

शिखराश्च विविधाकाराऽनेकाण्डकभूषिताः।
छाद्योर्ध्वप्रहाराः स्यात् ऊर्ध्वे शृङ्गाणि कारयेत्॥
शृङ्गे-शृङ्गे त्वधच्छाद्यमूर्ध्वं शृङ्गताधोऽद्गमम्।
स्वस्याङ्गस्य प्रमाणं तु सपादे शृङ्गमुच्छ्रये॥
स्कन्धस्यार्द्धोदये घण्टा सर्वकामफलप्रदा।
मूलकर्णरथादौ च एकद्वित्रिक्रमो न्यसेत्॥
निरन्धारे मूलभित्तौ सान्धारे भ्रमभित्तिषु।
रेखा गर्भसमा शस्ता विस्तीर्णा धनदा स्मृता॥
रेखामूलस्य दिग्भागे कूर्यादग्रे षडंशकाः।
षड्बाह्ये दोषदं प्रोक्तं पञ्चमध्ये न शोभनम्॥

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने मन्दिर के शिखर की रचना को अत्यन्त जटिल विषय माना है। मण्डोवर के छज्जे के ऊपर दो एक थर और लगाकर शिखर की शुरूआत की जाती है। वास्तुसार में इन थरों के नाम बेराडु और पहारु (वास्तुसार पृष्ठ

112) किन्तु मण्डन ने प्रासादमण्डनम् में केवल पहारु थर का ही उल्लेख किया है। शिखर के उठते हुए विन्यास के शृङ्गों की रचना सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। मण्डोवर की विभिन्न फालनाओं की ऊंचाई स्कन्ध के बाद जब शिखर में उठती है तो कोण, प्रतिरथ और रथ आदि की सीध में शृङ्ग बनाए जाते हैं। इन्हीं शृङ्गों के द्वारा शिखर का ठाठ जटिल और सुन्दर हो जाता है। *(प्रासादमण्डनम्, जयपुर 1963, पृष्ठ 25)*

प्रसिद्ध शिल्पशास्त्री प्रभाशङ्कर ओघड़भाई सोमपुरा ने भी शिखर के विषय को अति गम्भीर माना है। उनके अनुसार शिखर में अधिक अण्डकों या कर्म उरुशृङ्ग, प्रत्यागादि वगैरह चढ़ाने के होते हैं। अनुभव के रहित सूत्रों से पकड़कर रखने वाले और दूसरों की कमी निकालते हैं, यह अयोग्य है। समदल उपाङ्गवाले प्रासाद के शिखर में शिल्पियों को कम तकलीफ पड़ती है परन्तु हस्ताङ्गुल उपाङ्गवाले प्रासाद के शिखर में तो शिल्पी की सचमुच कसौटी होती है। उसकी कद्र करने के बदले अल्पज्ञ कमी निकलाते हैं, यह दुःसह लगता है। अठारहवीं सदी में हुए तीन पद पर तीन शिखरों के पायचे मूलकर्ण गर्भगृह के पाट के समसूत्र में मिलाने की शिल्पियों की प्रथा उस समय में थी। हस्ताङ्गुल शिखर में शृङ्गों के निर्गम ऊरुशृङ्गों पर शृङ्ग मिलाने में शिल्पियों को कई मुश्किलें आती है, यह सब कठिनाइयां बुद्धिमान शिल्प मिलाकर सुन्दर शिखर बनाते हैं। *(क्षीरार्णव, पालीताणा 1967, भूमिका पृष्ठ 33)*

शिखर वस्तुतः प्रासादों की रचना के अनुसार ही निर्मित किए जाते रहे हैं। विश्वकर्माकृत क्षीरार्णव, भुवनदेवभाषित अपराजितपृच्छा तथा विश्वकर्मा के ज्ञानरत्नकोश आदि नागरादि शिल्पग्रन्थों में भारतीय प्रदेशों में प्रवर्तमान प्रासादों की चौदह जातियों का उल्लेख मिलता है। लगभग यही उल्लेख ठक्कर फेरूकृत वास्तुसार, सूत्रधार मण्डन के प्रसादमण्डनम् तथा सूत्रधार नाथा की वास्तुमञ्जरी में भी मिलता है। मण्डन ने चौदह में से आठ जातियों की श्रेष्ठता स्वीकारी है जबकि अपराजितकार ने इन जातियों के बारे में विस्तार से वर्णन करते हुए चार अध्यायों (सूत्र 103 से 106) की रचना की है।

ये जातियां हैं– 1. नागर 2. द्रविड़ 3. लतिन 4.भूमिज 5. वराट् 6. विमान 7. मिश्र 8. सान्धार 9. विमाननागर 10. विमानपुष्पक 11. वलभी 12. फासनाकार 13. सिंहावलोकन तथा 14. रथारूह–

नागरा द्राविडाश्चैव लतिलाश्च विमानकाः।
मिश्रकाश्च वराटाश्च सान्धारा भूमिजा स्तथा॥
विमान नागराच्छन्दा विमान पुष्पकाथवा।

वल्लभा फासनाकारा-सिंहावलोका रथरूहा॥ *(क्षीरार्णव 1, 10-11)*

अपराजितकार ने स्पष्ट किया है कि जिन-जिन देवों ने प्रासाद के आकार की पूजा की, उनके ही अनुसार सम्बद्ध नाम वाले प्रासादों का रचना विधान हो गया। देवों के पूजने से नागरजाति, दानवों से द्राविड़, गन्धर्वों से लतिन, यक्षों से विमान, विद्याधरों से मिश्रक, वसुदेवों से वराटक, नागदेवों से सान्धार, नरेंद्रों से भूमिज, सूर्य से विमाननागर, चन्द्रमा से विमानपुष्पक, पार्वती से वलभी, हरसिद्धि आदि से सिंहावलोकन, व्यन्तर स्थित देवों से फासनाकार और इन्द्रलोक के देवों के पूजनादि से रथारूह या दारुज जाति- इस प्रकार चौदह जाति के प्रासादों का उद्भव हुआ-

यत्र येषां कृता पूजा तत्र तन्नामकास्तु ते।
प्रासादानां समस्तानां कथयिष्याम्यनु क्रमम्॥
सुरैस्तु नागराः ख्याताः द्राविडा दानवेन्द्रकैः।
लतिनाश्चैव गन्धर्वैर्यक्षैश्चापि विमानजाः॥
विद्याधरैर्मिश्रकाश्च वसुभिश्च वराटकाः।
सान्धाराश्चोरगैः ख्याताः नरेंद्रैर्भूमिजास्तथा॥
विमाननागरच्छन्दाः सूर्यलोकसमुद्भवाः।
नक्षत्राधिलोकोक्ताश्चन्दा विमानपुष्पकाः॥
पार्वतीसम्भवाः सेना वलभ्याकारसंस्थिताः।
हरसिद्ध्यादिदेवीभिः कार्याः सिंहावलोकनाः॥
व्यन्तरस्थितदेवैस्तु फासनाकारिणो मताः।
इन्द्रलोकसमुद्भूता रथाश्च विविधा मताः॥ *(अपराजितपृच्छा 106, 11-16)*

धाराधिप भोजकृत 'समराङ्गणसूत्रधार' में इस सम्बन्ध में संक्षिप्त चर्चा की है किंतु जातिभेद के नाम पर भूमिज, लतिन, नागर, द्रविड़ व वलभी का ही विवरण दिया गया है। इससे पूर्व नेपाल में प्राप्त सातवीं सदी के 'लक्षणसमुच्चय' में प्रादेशिक आधार पर छह जातियों की सूचना मिलती है-1. कलिङ्ग 2. नागर 3. लाट 4. वराट 5. द्रविड़ तथा 6. गौड़। इसी ग्रन्थकार ने विधि स्वरूपानुसार देवालय की छह अन्य जातियों का भी नामोल्लेख किया है- 1. लतिन 2. कुटिन 3. शेखरी 4. चक्रीण 5. भूमिज 6. भूमिज तथा 6. सान्धार-

देश जाति कुलस्थान वर्ण भेदैस्तथा परे ॥ 3 ॥
जातयोऽष्टौ प्रवर्तन्ते गङ्गातीरेषु सर्वदा।
अहिराजेषु सान्धारो नागरश्च प्रशस्यते ॥ 4 ॥
गौडवङ्गकामरूपे सान्धारो लतिनस्तथा।
तुरकोऽहालेषु ? गङ्गोदधौ विमानकः ॥ 5 ॥
चौलदेशे महानीले श्रीनीले पर्वते तथा।
मल्यकलिङ्गकर्णाटे कान्यकुब्जनिवास के ॥ 6 ॥
वैराज्येषु विराटे च कोङ्कणे दक्षिणापथे।
नागराद्राविडाशूच्छन्दा वराटा भूमिजास्तथा ॥ 7 ॥
लतिनाश्चैव सान्धारा मिश्रकाश्च विमानकाः।
अष्टच्छन्दास्तथा चैते प्रासादाः परिकीर्तिताः ॥ 8 ॥
जयन्त्यां मालव देशे काञ्चयां कालञ्जरे तथा।
अन्तर्वेधां च मगधे मथुरायां हिमाश्रये ॥ 9 ॥
दण्डकारण्यसह्याच्योश्चत्वारश्छन्दका इमे।
लतिना नागराश्चैव सान्धारा भूमिजास्तथा ॥ 10 ॥
सिन्धौ च खुरासाणे च तेजों गक्षणकादिषु।
सवमोहनमादियुक्ते ? पश्चिमे पार्श्वमण्डले ॥ 11 ॥
सौराष्ट्रे गुर्जरे देशे काश्मीरे च स्वयंभरे।
... ... ... ... ... ... ... ॥
वहिरावत्योमवन्दने... यादि... सृष्टयो... प्रासादाः।
स्त्री पुरुषाणां सूर्ये कुर्यान्नपुंसकान् ॥ 14 ॥
विमाननागराश्छन्दान् कुर्याद्विमानपुष्पकान्।
सिंहावलोकवलभीफांसनांश्च रथारूहान् ॥ 15 ॥
प्रवर्तन्ते सर्वदेशे व्योम चैकं न वर्तते।
ऐतेषु भरतक्षेत्राद्यं देशानुक्रम कथ्यताम् ? ॥ 16 ॥ *(वास्तुनिघण्टु, गुजराती, पृष्ठ*

*159 पर उद्धृत)*

इसी के साथ 1. वलभी तथा 2. फासनाकार दो अन्य रूप भी,निर्दिष्ट किए हैं। इसी प्रकार दक्षिण में प्राप्त दसवीं सदी के ग्रन्थ 'कामिकागम' में प्रासादों की छह कोटियां ही निर्धारित की गई है- 1. नागर 2. द्रविड़ 3. वेसर 4. वराट 5. कलिङ्ग तथा 6. सर्वदेशी- जो देशानुसार उद्धूत बताए गए हैं-

नागरः पूर्वदेशे च कर्णाट द्रविडः स्म

व्यन्तर पश्चिमे देशे वेसर उत्तरापथे।

कलिङ्ग कलिङ्ग देशे यामुन सर्वतः स्थितः

देश जातिश्च कथिता कुलस्थान बलोद्भव॥ *(वास्तुनिघण्टु उपर्युक्त)*

प्रासादों की उक्त जातियां इन ग्रन्थों से पूर्व लिखित काश्यपशिल्पम् या अंशुमद्भेदागम, मयमतम् में तीन ही कोटियों का नामोल्लेख मिलता है जो संभवतः प्रारम्भिक स्तर पर प्रचलित हुई थी- 1. नागर 2. द्रविड़ तथा 3. वेसर। विद्वानों ने इसे तीन रूप में देखा है- शुद्ध, मिश्र तथा संकीर्ण। (विशेष- Essay on the architeture of the Hindu By Ram Raz, p. 49)

आठवीं-नवीं सदी में सम्पादित माने गए 'गरुडपुराण' के 47वें अध्याय में स्पष्ट किया गया है कि लक्षणों व स्वरूप की भिन्नता के कारण प्रासाद अनेक प्रकार के होते हैं। यथा- वैराज, पुष्पक, कैलास, मालिका या माणिक तथा त्रिविष्टप- ये पांच प्रकार के प्रासाद कहे गए हैं। इनमें से प्रथम प्रकार का वैराज नामक प्रासाद सब प्रकार से चौकोर और समतल होता है। पुष्पक प्रासाद आयताकार, कैलास वृत्ताकार, मालिका वृत्तायत तथा पाँचवा प्रासाद त्रिविष्टप अष्टकोणाकार होता है। ये प्रासाद मनोहारी होते हैं। इन प्रासादों से ही अन्य प्रकार के प्रासादों का स्वरूप निर्मित होता है।

पुराणकार का मत है कि वैराज प्रासाद की कला से नौ प्रकार के प्रासादों का उद्भव हुआ है- मेरु, मन्दर, विमान, भद्रक, सर्वतोभद्र, रुचक, नन्दन, नन्दिवर्धन और श्रीवत्स। पुष्पक प्रासाद से वलभी, गृहराज, शालागृह, मन्दिर, विमान, ब्रह्ममन्दिर, भवन, उत्तम्भ तथा शिविकावेश्म की उत्पत्ति मानी गई है। वलय, दुन्दुभि, पद्म, महापद्म, मुकुली, उष्णीषी, शंख, कलश, गुवावृक्ष तथा अन्य वृत्ताकार प्रासाद कैलास से निकले हैं। गज, वृषभ, हंस, गरुड, सिंह, सम्मुख, भूमुख, भूधर, श्रीजय तथा पृथ्वीधर का उद्भव मालिका से तथा वज्र, चक्र, मुष्टिकवभ्रु, वक्रस्वस्तिक, खड्ग, गदा,

श्रीवृक्ष, विजय एवं श्वेत प्रासादों का उद्भव त्रिविष्टप से हुआ है। पुराणकार ने मण्डप संस्थान विषयक प्रासाद संरचनाओं में त्रिकोण, पद्माकार, अर्धचन्द्राकार, चतुष्कोण तथा षोडशकोणीय प्रासादों का उल्लेख भी किया है जो क्रमशः राज्य, ऐश्वर्य, आयुष्य, पुत्रलाभ व स्त्रीसुख देने वाले हैं।

गरुडपुराणकार ने पुनः स्पष्ट किया है कि निर्माण पद्धति, आकार तथा परिमाण की विभिन्नता के फलस्वरूप उक्त प्रासाद भिन्न-भिन्न प्रकार के हो जाते हैं। इसमें से कुछ प्रासादों का आकार होता है किंतु कुछ आधार से हीन होते हैं। ये प्रासाद अपने छन्दक अर्थात् शिखर निर्माण के भेद से भिन्न-भिन्न प्रकार के हो जाते है। रचना-पद्धति तथा नाम के भेद से परस्पर सांकर्य के कारण भी भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रासाद हो सकते हैं। *(गरुडपुराण, गीताप्रेस गोरखपुर, पृष्ठ 69)*

निश्चय ही गरुडपुराण का यह संकेत प्रासादों की शिखर रचना के विकासक्रम के साथ ही शिखर के रूप विधान व उस पर आधारित संज्ञाभिधान को परिभाषित करता है और पूर्वी भारत में उस समय तक विकसित हो चुकी परम्परा का परिचायक कहा जा सकता है।

शिखर की रचना के सम्बन्ध में सर्वाधिक विस्तृत विवेचन भुवनदेव ने दिया है। प्रसिद्ध शिल्पी प्रभाशङ्कर ओघडभाई सोमपुरा का मत है कि अपराजितपृच्छाकार की व्याख्या के अनुसार गुजरात, राजस्थान और खजुराहो के और एकाण्डक प्रासादों का नागर जाति की मर्यादा में समावेश हो जाता है, परन्तु विकासक्रम की दृष्टि से अर्थात् उस एकाण्डक शिखर वाली जाति ज्यादा प्राचीन होने से और उस एकाण्डक का ही सन्तान होने से लतिन को ही नागर कहने का लक्षणसमुच्चय जैसे अपराजितपृच्छा से भी अधिक प्राचीन ग्रन्थों में मत है। इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखें तो प्रासादों की ज़ाति में एकाण्डक लतिन जाति को आदि मानना चाहिए अथवा व्यापक अर्थ में देखें तो, एकाण्डक और अनेकाण्डक दोनों नागर के ही प्रकार मानना चाहिए। एकाण्डक ज्यादा प्राचीन और अनेकाण्डक उत्तरकालीन भी सविशेष प्रचलित है। *(क्षीरार्णव, भूमिका पृष्ठ 12-13)*

देव शिल्प-स्थापत्य विषयक उक्त ग्रन्थों के आधार पर विभिन्न जातियों के कतिपय प्रासादों में शिखर के विभिन्न अङ्गों को इस प्रकार बताया गया है-

*भूमिजप्रासाद के शिखराङ्ग-*

1. वरण्डिका 2. प्रहार 3. रथिका 4. शुरसेनक 5. स्तम्भकूट 6. ध्वजापुरुष 7.

माला 8. स्कन्ध 9. घण्टा 10. चन्द्रिका तथा 11. कलश।

*लतिनप्रासाद के शिखराङ्ग-*

1. कलश 2. चन्द्रिका 3. आमलसारक 4. ग्रीवा 5. स्कन्ध 6. रेखा 7. कला 8. भूमि-आमलक 9. खण्ड 10. कण्ठ 11. वरण्डिका 12. वेणुकोश 13. मध्यलतापञ्जर 14. लतापञ्चक 15. बालपञ्जर। (अन्य अङ्ग-1. मूलघण्टा 2. ऊरुघण्टा 3. घण्टिका 4. रथ 5. रथिका 6. कूट 7. संवरणा 8. चूला या चूली 9. ग्रीवा)।

*नागरप्रासाद के शिखराङ्ग-*

1. कलश 2. आमलसारक 3. मूलरेखा या मूल मञ्जरी 4. ऊरूशृङ्ग 5. कर्म 6. सिंह 7. शुकनास 8. तवङ्ग 9. तिलक 10. कर्म 11. प्रहार।

*द्रविड़प्रासाद के शिखराङ्ग-*

1. अधिष्ठान 2. पद्म 3. कुमुद 4. सिंहमाला 5. प्रति 6. वेदी 7. आदितल 8. पाद 9. देवकोष्ठ 10. प्रस्तर 11. उत्तर 12. वाजन 13. नासिका 14. कपोत 15. मञ्च 16. सिंहमाला 17. कर्णकूट 18. वितार्दिका 19. भद्रशाल-कोष्ठ 20. नेत्रकोष्ठ 21. बारान्तर 21. द्वितीयतल 22. क्षुद्रनासिका 23. तिलनासिका 24. चतुरस्रशिखर 25. वृष 26. ग्रीवा 27. ग्रीवाकोष्ठ 28. महानास 29. सिंहवक्त्र 30. स्तूपिका।

द्रविड़ जाति के प्रासादों में शिखर के चतुरस्रादि स्वरूपों के अङ्ग पृथक-पृथक इस प्रकार होते है-

**1. चतुरस्त्रशिखर-** 1. शाला 2. हार 3. कर्णकूट 4. ग्रीवा 5. महानासी

**2. वृत्तशिखर-** 1. वृष 2. हंसवाजन 3. महानासी 4. पद्मपत्र 5. स्तूपिका

**3. अन्य वृत्तशिखर-** 1. पीढानफलक 2. ग्रीवा 3. महानासी 4. पार्श्वनासी

**4. अष्टास्त्रशिखर-** 1. सिंहमाला 2. पीढानफलक 3. वृष 4. ग्रीवा 5. नासिक तथा 6. कर्पूरीपद्मपत्रिका।

*वलभीप्रासाद के शिखराङ्ग-*

1. गर्भगृह 2. कपोत 3. वलितपट्टिका 4. कण्ठ 5. स्कन्धवेदी 6. वलभी 7. चन्द्रशाला 8. आमलसारक तथा 9. सिंह।

*फासनाकारप्रासाद के शिखराङ्ग-*

1. प्रहार 2. कर्णफासना 3. भूमिज 4. चन्द्रशालिका 5. सिंहकर्ण 6. घण्टा तथा

7. कलश।

इस प्रकार विभिन्न कोटियों के प्रासादों के शिखराङ्गों का विधान किया गया है और इनके प्रमाण यत्र-तत्र मिले हैं। ये शिखर रचना के निमित्त शिल्पिसमुदाय के निरन्तर शोधानुसंधान व प्रासादों को सुन्दर से सुन्दरतम बनाने की दिशा में एक अद्भुत, अपूर्व पहल-प्रयासों की कथा को भी कहते प्रतीत होते हैं।

नागरादि प्रासादों में शिखर रचना विशेष रूप से विवेच्य हुई है। इस पर कुछ विद्वानों ने प्रकाश भी डाला है। प्रासादमण्डनम् की भूमिका में डॉ. अग्रवाल ने लिखा है कि बीच के शिखर के यदि हम एक इकाई मानें तो उसकी चारों दिशाओं में चार उरुशृङ्ग बनाए जा सकते हैं। ये शृङ्ग भी शिखर की आकृति के होते हैं। यदि मूल शिखर का सामने से दर्शन किया जाए तो वह आकृति शृङ्ग होती है। प्रासाद के शिखर का सम्मुख दर्शन ही शृङ्ग है। मूल शिखर और उसके चारों ओर के चार शृङ्ग इस प्रकार कुल पाँच शृङ्गयुक्त रूप प्रासाद का एक सीधा प्रकार हुआ। बीच के शिखर को मूल मञ्जरी और चारों ओर के मूलभूत बड़े शृङ्गों को उरुशृङ्ग कहते हैं। इसी के लिए राजस्थानी और गुजराती स्थपतियों में छातिया शृङ्ग शब्द भी प्रचलित है। वस्तुतः शृङ्ग और शिखर पर्यायवाची है। ठक्कुर फेरू ने उरुशृङ्ग या छातिया शृङ्ग को उरसिहर कहा है। मूल मञ्जरी के चार भद्र या पार्श्व में चार उरुशृङ्गों के अतिरिक्त अनेक शृङ्ग बनाए जाते थे। *(प्रासादमण्डनम् पृष्ठ 25)*

इसी प्रकार शिखर पर उरुशृङ्गों की भद्रानुसार कितनी हो, अपराजित, दीपार्णव आदि देव वास्तुशास्त्रों के आधार पर सूत्रधार मण्डन ने कहा है कि उरुशृङ्गों की संख्या प्रत्येक भद्र में एक से नौ तक हो सकती है। सबसे बड़ा उरुशृङ्ग शिखर की कितनी ऊंचाई तक रखा जाए, इसका भी नियम होता है। शिखर के उदय के 13-13 भाग करके नीचे से सात भाग तक पहला छातिया शृङ्ग बनाया जाता है अर्थात् शिखर की ऊंचाई के सात भाग पहले उरुशृङ्ग के नीचे छिप जाते हैं। अब इस उरुशृङ्ग पर दूसरा उरुशृङ्ग बिठाना हो तो फिर इसकी ऊंचाई के तेरह भाग करके सात भाग तक के उदय तक दूसरा शृङ्ग बनाया जाता है। इस प्रकार जिस शिखर में नव उरुशृङ्ग रखने हो, उसकी ऊंचाई सोच विचार कर उसी अनुपात में निश्चित करनी होगी।

इसी प्रकार शिखर में गोलाई लाने या ढलान देने के लिए आवश्यक है कि यदि उसके मूल में दस भाग हो तो अग्रस्थान या सिरे पर छह भाग का अनुपात रखना चाहिए। इस अनुपात से शिखर सुहावना प्रतीत होता है। गर्भ की मूल रेखा या चौड़ाई

से शिखर का उदय सवाया रखा जाता है। शिखर के वलण अर्थात् नमन की युक्ति साधन के लिए उसके उदय भाग में और स्कन्ध में क्रमशः रेखाओं और कलाओं की सूक्ष्म गणना स्थपति सम्प्रदाय में प्रचलित है। उस विषय का संक्षिप्त संकेत मण्डन ने किया है। रेखाओं और कलाओं का यह विषय अपराजितपृच्छा *(अध्याय 139-41)* में भी आया है। खेद है कि यह विषय अभी तक स्पष्ट न होने से इस पर अधिक प्रकाश डालना सम्भव नहीं है। *(उपर्युक्त पृष्ठ 26)*

इस सन्दर्भ में मण्डन का कथन है कि खर शिला से कलश तक बीस भाग करके आठ या साढे आठ या नौ भाग में मण्डोवर की ऊंचाई और शेखर का उदय रखा जाता है। शिखर के गुम्मटनुमा उठान का पद्मकोश कहा जाता है। पद्मकोश की आकृति लाने के लिए मण्डन ने अति संक्षिप्त रीति से एक युक्ति कही है- चतुर्गुणेन सूत्रेण सपादः शिखरोदयः। इसके अनुसार शिखर की मूल रेखा से चौगुणा सूत्र लेकर यदि नए प्राप्त दोनों बिन्दुओं को केंद्र मानकर गोल रेखाएँ खींची जाएं तो जहां वे एक दूसरी को काटती हो तो वह शिखर का अन्तिम बिन्दु हुआ। शिखर की मूल रेखा से उसकी सवाई जितनी ऊंचाई तक एक रेखा खींची जाए तो वह शिखर का स्कन्ध स्थान होगा। इस स्कन्ध और पद्मकोश के अन्तिम बिन्दु तक की ऊंचाई के सात भाग करके एक भाग में ग्रीवा, डेढ़ भाग में आमलक शिला, डेढ़ भाग में पद्मपत्र, जिन्हें आजकल लीलोफर कहते हैं, और तीन भाग में कलश का मान रहेगा। *(उपर्युक्त)*

शिखर में शुकनास का भी महत्वपूर्ण स्थान है। शुकनास की ऊंचाई के पाँच विकल्प कहे गए हैं अर्थात् छज्जे से स्कन्ध तक के उदय के 21 भागों में बांटा जाए तो नौ, दस, ग्यारह, बारह, तेरह अंशों तक कहीं भी शुकनास का उच्छ्रय किया जा सकता है। शुकनासिका के उदय के पुनः नव भाग करके एक, तीन, पाँच, सात या नव भागों में झम्पासिंह रखना चाहिए। शुकनासा प्रासाद या देव मन्दिर की नासिका के समान हैं। शिखर में शुकनासिका का निकला खाता नीचे के अन्तराल मण्डप के अनुसार बनाया जाता है। अन्तराल मण्डप को कपिली या कौली मण्डप भी कहते हैं। अन्तराल मण्डप की गहराई छह प्रकार की बताई गई है।

शिखर की रचना में शृङ्ग, उरुशृङ्ग, प्रत्यङ्ग और अण्डकों का महत्वपूर्ण स्थान हैं एवं भिन्न-भिन्न के शिखरों के लिए उनकी गणना अलग-अलग की जाती है। इसी प्रकार तघङ्ग, तिलक और सिंहकर्ण ये भी प्रकारान्तर के अलङ्करण हैं जिन्हें प्रासाद के शिखर का भूषण कहा जाता है और इनकी रचना भी शिखर को विभिन्नता प्रदान करती

है। मण्डन के अनुसार प्रासाद के शिखर पर एक हिरण्यमय प्रासाद पुरुष कीस्थापना की जाती है। कलश, दण्ड और ध्वजारोपण के सम्बन्ध में भी मण्डन ने संक्षिप्त वर्णन किया है। *(उपर्युक्त)*

प्रसादमण्डनम् की तरह ही अपराजितपृच्छादि देव-स्थापत्य विषयक शास्त्रों में शिखरों की रचना, उनके मुख्य अङ्ग या भागाङ्गों के मान, स्थान, निर्माण, गणित, ज्यामितीय सिद्धान्त आदि का वर्णन किया गया है। निश्चय ही यह रोचक विषय रहा है जिसमें जहां दर्शनीय सुन्दरता का तत्व निहित है, वहीं निर्माण की जटिलता और इस जटिलता को हल करने के लिए सैद्धान्तिक विचार भी मिलता है। वस्तुतः शिखर की यह जटिलता मानवीय स्नायुतन्त्र के मुकाबले की है जिसे समझना और व्यवहार्य रूप देना विशेष परिश्रम, अभ्यास के बूते ही सम्भव है।

# कलानिधि : रचना व प्रतिपाद्य

सूत्रधार गोविन्द कृत 'कलानिधि' मुख्य रूप से प्रासाद अथवा मन्दिर स्थापत्य कार्य के अंतर्गत शिखर की संरचना से सम्बन्धित बहु निर्देश ग्रन्थ है। इस विषय पर सूत्रधार मण्डन द्वारा 'प्रासादमण्डनम्' जैसे प्रतिष्ठापूर्ण ग्रन्थ की रचना के बावजूद गोविन्द ने कलानिधि की रचना की, इसका कारण सम्भवत: यही रहा है कि प्रासादमण्डनम् में शिखर विधान पर अपेक्षाकृत न्यून निर्देश ही उपलब्ध होते हैं। फिर, यह भी विचारणीय है कि महाराणा कुम्भा के अनन्तर, रायमल के काल में हिन्दू, जैन मन्दिरों पर शिखर विशेष मान, गणित-मपितादि के साथ बनाए जाने लगे थे। इस काल के एकलिङ्गजी, चित्तौड़गढ़ के कुम्भश्याम प्रासाद के अहाते में स्थित सम्प्रति मीरामन्दिर, अद्भुतजी प्रासाद, अन्नपूर्णा व बाणमाता मन्दिर, कुकड़ेश्वर मन्दिर, शृङ्गारचंवरी तथा जावर के पञ्चायतन मन्दिर, कुम्भलगढ़, देलवाड़ा-देवकुलपाटन, रणकपुर-मारवाड़ नारलाई-नाडोल तथा आबू पर्वत के देवालयों में यह विशिष्टता देखी और तलाशी जा सकती है।

यही नहीं, स्वयं मण्डन ने भी कहा था कि देव स्थापत्य विशिष्ट कार्य है तथा अकेला मणि जिस प्रकार अधिक गुणवाला होने पर भी इतनी शोभा नहीं देता जितनी सुवर्णादि अन्य पदार्थों के साथ मिलाने पर देता है, इसी प्रकार शिल्प के अन्य अनेक शास्त्र देखने पदार्थ की सिद्धि होती है-

एकेन शास्त्रेण गुणाधिकेन विना द्वितीयेन पदार्थसिद्धिः।

तत् स्मात् प्रकारान्तरो विलोक्यं मणिर्गुणाढ्योऽपि सहायकाङ्क्षी॥

*(प्रासादमण्डनम् 8, 15)*

इस प्रकार गोविन्द ने प्रासाद के सुन्दर शिखर, चन्द्रकलादि रेखा, शृङ्ग, उरुशृङ्ग, रथ, प्रतिरथ, तिलक, आमलक, ग्रीवा, शुकनासिका, कपोतावली, ध्वज, दण्ड, सुवर्णपुरुष जैसे पूर्ववर्णित शिखरोपयोगी नाना शृङ्गारावयवों के निमित्त विशेष रूप से पूर्व सूरियों के रूप में अन्य शास्त्रों का अवलोकन, मन्थन किया और उक्त सामग्री के आधार पर ही 'कलानिधि' का प्रणयन किया। शिखर संरचना की दृष्टि से, प्रासादस्थापत्य विषयक

ग्रन्थों की कोटि में कदाचित यह एक मात्र स्वतन्त्र ग्रन्थ कहा जाना चाहिए।

इसमें अध्यायानुसार निम्न विषय है-

*1.प्रासाद के ऊर्ध्वमान का निर्णय-*

मन्दिरों में ऊंचाई के सन्दर्भ में शास्त्रकारों ने अपने मत दिए हैं। अपराजितकार ने प्रासादों की उत्पत्ति के साथ ही विविध कोटियों के प्रासादों का वर्णन किया है। त्रैलोक्यदीक्षा नामक सूत्र में अपराजित के निम्न प्रश्न पर विश्वकर्मा ने प्रासादों की संरचना प्रक्रिया को विस्तारपूर्वक समझाया है-

प्रासादानां कथं तात चोत्पत्तिर्दिव्यसूत्रिणः।

किमाकारजातिरूपा नागराश्छन्दकास्तथा॥

द्राविडा मिश्रकाः ख्याता विमाना भूमिजास्तथा।

सान्धारश्च वराटश्च लतिनाश्चैवकामदा॥

वलभ्यः फांसनाकाराः सिंहालोकनदारुजाः।

विमानं नागरश्छन्दे कुर्याद विमानपुष्पकम्॥ *(सूत्र 103, 1-3)*

इनकी की ऊंचाई के लिए कहा गया है कि तल-छन्द के विभाजनपूर्वक इनका ऊर्ध्वमान रखा जाना चाहिए। सूत्रधार गोविन्द ने 'अपराजितपृच्छा' के 138वें 'प्रासादस्योर्ध्वमाननिर्णय' संज्ञक सूत्र को यथानुरूप 'कलानिधि' के प्रथम प्रकाश के रूप में उपन्यस्त किया है। अपराजितपृच्छा के प्रकाशित पाठ में कुल साढ़े 29 श्लोकों में यह सूत्र लिखा गया है और कलानिधि में मङ्गलाचरण तथा प्रवर्तनपाठ को मिलाकर कुछ 30 श्लोक होते हैं।

प्रथम प्रकाश में स्पष्ट किया गया है कि प्रासाद के तल-छन्द के मान का विभाजन कर जो अर्धांश प्राप्त हो, उसके बराबर शिखर का मान रखना चाहिए। इसी प्रकार शिखर शुक के अग्र सूत्र के उदय के अनुसार मण्डप करें। प्रासाद में शुक, मण्डप के आगे चतुष्किका, जगती, उत्तानपट्ट, शाला, परित भी क्रमानुसार बनाना चाहिए-

प्रासादाग्रे शुकोयद्वन्मण्डपाग्रे चतुष्किका।

जगत्युत्तानपट्टं च शालाद्याः परितः क्रमे॥ *(कलानिधि 1, 5)*

इसी प्रकाश दोषादि पर भी विचार किया गया है कि यदि जगती को शाला व मण्डप की छाया लोपती हो तो दोषकारक है किंतु प्रासाद की छाया मण्डप को लोपती-

हो तो दोषकारक नहीं हैं-

जगत्यां लोपयेच्छायां शालायामपि मण्डपं।

मण्डपे नैव प्रासादो ग्रस्तः स्यदोषकारकः॥ *(उपर्युक्त 1, 6)*

प्रासाद की ऊर्ध्व रचना में गुणग्रहण पर जोर दिया गया है तथा इस ज्ञान के जानकारों को शास्त्रप्रवीण माना गया है और निर्देश है कि निरन्धार सहित सभी नागर, मिश्रक, विमान, नागरछन्द, विमान पुष्पक में भी इनका ध्यान रखा जाए। इसमें मर्मवेध को भी महत्व दिया गया है तथा कहा है कि भित्ति की मोटाई के मानानुसार निर्धारित शृङ्गों का आरोहण करें और यदि गर्भ के मध्य रेखा का वेध होता है तो वह मर्मवेध कहा जाता है-

यन्मानं भित्तिःपृथुत्वे तच्छृङ्गक्रमूर्ध्वतः।

गर्भमध्ये यदा रेखा महामर्म क्षयावहा।

एक-द्वि-त्रिक्रमाणिस्यु भित्तिमध्ये यथोत्तरम्।

अधिकानि न कुर्वीत पीडिते च कुलक्षयः॥ *(उपर्युक्त 1, 8-9)*

शिखर के सम्बन्ध में मण्डन का निर्देश है कि शिखर के नीचे के दोनों कोने के विस्तार को दस भागों में विभाजित करें। इनमें से शिखर के स्कन्ध का विस्तार छह भाग रखें, इसका न्यूनाधिक रखना क्रमशः दोषकारक व अशोभनीय होता है-

रेखामूले च दिग्भागं कुर्यादग्रे षडंशकम्।

षड्बाह्ये दोषदं प्रोक्तं पञ्चमध्ये न शोभनम्॥ *(प्रासादमण्डनम् 4, 12)*

इस सम्बन्ध में विश्वकर्मीय ज्ञानरत्नकोश का मत विचारणीय है कि प्रासाद के समचोसर क्षेत्र का दस भाग करें, इनमें से दो-दो भाग के दो कोण, तीन भाग का भद्र और डेढ़-डेढ़ भाग के दो प्रतिकर्ण बनाएं। शिखर विस्तार से ऊंचाई में सवाया रखें तथा उसका स्कन्ध छह भाग विस्तारयुक्त करें। इसके नौ भाग करें व चार भाग के दोनों कोण, तीन भाग के दोनों प्रतिकर्ण व दो भाग का भद्र बनाएं-

चतुरस्त्रीकृते क्षेत्रे दशधा प्रतिभाजिते।

द्वौ-द्वौ भागौ तु कर्तव्यो कोणे-कोणे न संशयः॥

भद्रं भागत्रयं कार्यं सार्धभागं तु चानुगम्।

व्यासमानं सपादं च उच्छ्र्येण तु कारयेत् ॥

स्कन्धं षडभागिकं कार्यं तस्योर्ध्वं नवधा भवेत् ।

चतुर्भागायतं कोणं त्रिभिर्भागैस्तु चानुगम् ॥

भद्रपूर्णं तु द्विभिर्भागैस्ततस्तु साधयेत् कलाम् ॥

इसके बाद कला रेखा का निर्धारण किया जाना चाहिए। इसके लिए एक ओर के कोने का दो भाग करें। इसमें से प्रथमभाग का चार व द्वितीय भाग का तीन भाग करने से सात कला रेखा होती है। इसी प्रकार दूसरी ओर के कोण की भी सात ही कला रेखा होती है, कुल चौदह कला रेखाओं में दोनों प्रतिकर्ण की दो कला रेखा संयुक्त किए जाने से सोलह कला रेखाएँ होती है। इनके उदय में सोलह-सोलह भाग किए जाने से कुल 256 कला रेखाएँ होती हैं-

आदिकोणं द्विधा कृत्य प्रथमं वेदभाजितम्।

द्वितीयं तु त्रिभिर्भागैरेवं सप्तकला भवेत् ॥

उदयं द्व्यष्टभिर्भागैः कृत्वा रेखां समालिखेत्।

उर्ध्वतिर्यग् भागानां भागे भागे तु लाञ्छयेत् ॥

एवं तु सिध्यते रेखा भद्रे कोणे तथानुगे ॥

गोविन्द ने इस प्रकाश में सांधारादि प्रसाद के शिखर के लिए इसी प्रकार का मत अपराजित से उद्धृत किया है। इसके लिए शृङ्ग, उरुशृङ्ग, प्रत्यङ्ग, कर्ण, तवङ्ग, तिलकादि प्रासाद-भूषणादि निर्माण के नियम भी दिए हैं। इनमें से एक के ऊपर एक, दो अथवा तीन अनुक्रम से चढ़ाना चाहिए। निरन्धार या प्रकाश वाले प्रासाद की मुख्य भित्ति पर व सान्धार या परिक्रमा वाले प्रासाद में परिक्रमा की भित्ति पर शृङ्गों का क्रम रखना चाहिए। प्रासाद के भद्र के ऊपर एक से नौ तक उरुशृङ्गों का आरोहण किया जाता है। शिखर के उदय के तेरह भाग कर सात भाग के मान का उरुशृङ्ग बनाने का निर्देश है। इसी प्रकार द्वितीय उरुशृङ्ग के लिए प्रथम उरुशृङ्ग के तेरह भाग करें व सातवें भाग के मान का बनाएं। इसी प्रकार ऊपर के अन्य उरुशृङ्गों को तेरह भाग में से सात भाग के मान से निर्माण करने का नियम निर्धारित किया गया है।

शुकनासिका के सम्बन्ध में नियम यह है कि छज्जे से शिखर पर्यन्त उदय के इक्कीस भाग करें, इसमें से नवें, दसवें, ग्यारहवें, बारहवें या तेरहवें भाग तक शुकनासिका

का उदय रखना चाहिए। इस प्रकार शुकनासिका का उदय पाँच प्रकार का है। इसमें से शुकनासिका का जो उदय रखा गया हो, उसका नौ भाग करें। इसमें से एक, तीन, पाँच, सात या नौ भाग में से किसी भाग में सिंह स्थान को परिकल्पित किया जा सकता है।

देवालयों में गर्भगृह के द्वार के ऊपर दाहिने व वाम भाग में छह प्रकार की कपिली या कोली का निर्माण किया जाता है। इसकी ऊंचाई में शुकनासिका रखनी चाहिए। यह प्रासाद की नासिका कही गई है। देवालय के विस्तार का दस भाग करें तथा उसमें से दो, तीन या चार भाग की और देवालय के मान से आधे, चौथे या तीसरे भाग के मान की- इस प्रकार छह प्रकार की कोली बनाने का निर्देश दिया गया है। छहों कपिलियों या कोलियों के नाम हैं- अञ्चिता, कुञ्चिता, शस्या, मध्यस्था, भ्रमा और सभ्रमा। इसका लक्षणानुसार नियम यह है कि प्रासाद के विस्तार के दस भाग में से दो भाग की कोली को अञ्चिता कहा जाता है। तीन भाग वाली कुञ्चिता, चार भाग वाली शस्या, प्रासाद के विस्तार के चौथे भाग वाली मध्यस्था, तीसरे भाग वाली भ्रमा तथा आधे भाग वाली कोली सभ्रमा कही जाती है।

इसके साथ ही मण्डोवर के लिए ज्येष्ठ, मध्यम व कनिष्ठमान की मान्यता भी है, जिसे योग्य वास्तुविद् जानते हैं। गोविन्द का कथन है कि खरशिला से लेकर कलश पर्यन्त तक के उदय के बीस भाग करें। इनमें से आठ, साढ़े आठ अथवा नौ भाग का मण्डोवर का उदय रखा जाना चाहिए- यही मान क्रमशः ज्येष्ठ, मध्यम व कनिष्ठ कहा गया है-

मूलशिलातः उदये प्रासादे कलशान्तके।

भागे विभक्ते विंशत्यां अधऊर्ध्व प्रकल्पयेत्॥

अष्टभागोदयोज्येष्ठ सार्ध अष्टौ च मध्यमः।

कन्यसे नवभागैस्त्रिधा मण्डोवरो मतः॥ *(कलानिधि 1, 28-29)*

इसमें जो शेष बचें, उतने उदय का शिखर निर्माण किया जाना चाहिए, यही मत मण्डन का भी है-

विंशद्भिर्विजयेद् भागैः शिलातः कलशान्तकम्।

मण्डोवरोऽष्टसार्धष्ट नवांशैः शिखरं परम्॥ *(प्रासादमण्डनम् 4, 22)*

*2. रेखार्णव निर्णय-*

कलानिधि का द्वितीय प्रकाश भी 'अपराजितपृच्छा' से उद्धृत है। अपराजितकार

ने रेखानिर्णय संज्ञा से जिस 139वें सूत्र को लिखा है, वह गोविन्द के द्वितीय प्रकाश के रूप में उपन्यस्त किया गया है। अपराजितकार ने कुल 42 श्लोकों में इस सूत्र को लिखा है जबकि कलानिधि में श्लोक 34 ही मिलते हैं।

इस प्रकाश में रेखा भेद को कहा गया है और उनकी पृथक्-पृथक् विधि को बताया गया है। शिखर के लिए निर्दिष्ट सभी कलादि सोलह रेखाओं से समुत्पन्न होती है। ये तीन खण्ड से लेकर अठारह खण्ड तक की होती है जिनसे सोलह समचारा कलादि रेखाएँ परिकीर्तित होती है-

सर्वा कलाः समुत्पन्ना रेखाः षोडशकीर्तिताः।
त्रिखण्डादौ खण्डवृद्ध्या खण्डान्यष्टादशावधि।
समाचाराः षोडशैव पृथक् जाता कलोन्मिता॥ *(कलानिधि 2, 1-2)*

रेखार्णव के सम्बन्ध में यहां कहा गया है कि शिखर के उदय में अठारह तथा तिरछी सोलह रेखा होती है। यदि ऐसा चक्र बनाएं तो उनकी संख्या 256 हो जाती है। त्रिखण्ड से लेकर एक-एक खण्ड बढ़ाते हुए 18 खण्ड तक बढ़ाते जाएं तो प्रथम प्रत्येक खण्ड में समचार की आठ-आठ कला रेखाएं होती है, ऐसे सोलह चार कहे गए हैं। द्वितीय सपादचार की त्रिखण्डा कला रेखा के सम्बन्ध में कहा गया है कि पहले खण्ड में आठ, दूसरे में नौ व तीसरे खण्ड में दस कला रेखा बनानी चाहिए। इस तरह शेष चार में भी क्रमानुसार रेखाएँ बनाई जाती है। तीसरे सार्धचार के सम्बन्ध में निर्देश है कि प्रथम खण्ड में आठ, दूसरे में दस व तीसरे खण्ड में बाहर कला रेखा का निर्माण करना चाहिए। इसी क्रम से अन्य चारों के कोष्ठकों को भी अंक-पूरित किया जाना चाहिए।

इन सोलह कला रेखाओं के नाम हैं- शशिनी, शांतिनी, लक्ष्मिणी, कामिनी, पुष्पिका, शुभा, शान्ता, आह्लादा, कुमुदा, शाश्वता, शान्तिकी, विद्याशोधनिका, नाहानी, द्वीपिनी, सौम्या, रम्या। त्रिखण्डादि खण्डों में सोलह कलाचारों के भेदों से इनका उद्भव होता है। सोलह कलाचार इस प्रकार हैं- प्रथम सम या बराबर चार, द्वितीय सपाद या सवाया, तृतीय सार्द्ध या डेढ़ा, चतुर्थ पौने दो गुना, पाँचवां दो गुना, छठा सवा दो गुना, सातवां ढाई गुना, आठवां पौने तीन गुना, नवां तीन गुना, दसवां सवा तीन गुना, ग्याहवां साढ़े तीन गुना, बारहवां पौने चार गुना, तेरहवां चार गुना, चौदहवां सवा चार गुना, पन्द्रहवां साढ़े चार गुना और सोलहवां पौने पाँच गुना।

इस प्रकार सोलह प्रकार के कलाचारों के भेदों से प्रत्येक त्रिखण्डादि में

सोलह-सोलह रेखाएँ निष्पन्न होती है। इनकी कुल संख्या 256 होती है। शिखर के उदय में जितनी कला रेखा निष्पन्न हो, उतनी स्कन्ध में भी निर्मित करनी चाहिए। मण्डन का भी यही निर्देश है- रेखाणां जायते सङ्ख्या षटपञ्चाच्छतद्वयम्। दैर्घ्ये भवन्ति यावन्त्यः कलाः स्कन्धेऽपि तत्समाः॥ *(प्रासादमण्डनम् 4, 21)*

प्रासाद में विविध गोलाइयों को युक्तिपूर्वक संयोजित करने की कला रेखाज्ञान से ही संभव होती है। प्रो. पोपटभाई अम्बाशङ्कर मनकड ने अपराजितपृच्छा की भूमिका में रेखाओं के भेदादि पर पर्याप्त विचार किया है और माना है कि इस संयोजन के अभाव में शिखर युक्तिसंगत नहीं कहा जा सकता है। रेखादि का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

**रेखा-** यह शिखर का पार्श्वदृश्य या एकचश्मीय (Profile) अङ्कन है जो शिखर रचना के सिद्धान्त को परिभाषित करने के लिए है।

**कला-** यह अङ्क है, एक भाग या अंश है।

**खण्ड-** एक खण्ड, एक समान ऋजु या वक्रता, शिखर का भाग।

**चार-** रेखाओं के समूह की एक कोटि।

रेखाओं के स्पष्टीकरण के लिए विभिन्न सारणियाँ इस अध्याय के अन्त में दी जा रही हैं, किन्तु उनके नामादि प्रकार यहां प्रस्तुत है—

*3. अष्टादशखण्डीय रेखार्णव निर्णय-*

यह प्रकाश भी अपराजितपृच्छा के आधार पर ही है। भुवनदेव ने शशिनी आदि त्रिखण्डा से अष्टादशखण्डा रेखा का विवरण दिया है। इसके चारों में सोलह चार दिए गए हैं- समचार (1), सपादचार (1।), सार्धचार (1।।), पादोनद्वयचार (1।।।), द्विगुणचार (2), सपादद्विगुण (2।), सार्धद्विगुणा (2।।), पादोनत्रय (2।।।), त्रय (3), पदाधिक (3।), सार्धत्रय (3।।), पादोनचतुष्क (3।।।), चतुर्गुण (4), सपादचतुष्क (4।), सार्धचतुष्क (4।।) तथा पादोनपञ्चक (4।।।)। चार के योग से इनकी संख्या 256 होती है तथा लम्बना सूत्रयोग से ये नागरी व घण्टिका के योग क्रम से विमान या भूमिजा कही जाती है-

चार योगेन जायन्ते षट्पञ्चाच्छतद्वयम्।

कलानां साधनां चारं स्कन्धस्थाने स्फुटी भवेत्॥

लम्बना सूत्रयोगेन भवेद्रेखा तु नागरी ॥

घण्टिकायां क्रमं योगे विमाने भूमिजेऽथवा ॥ *(कलानिधि 3, 3-4)*

कलानिधि के अनुसार इनकी त्रिखण्डा रेखाओं के सोलह नाम हैं- शशिनी, शीतला, सौम्या, शान्ता, मनोरमा, उमा, मनोभवा, वीरा, कुमुदा, पद्मशेखरा, ललिता, लीलावती, त्रिदशा, पूर्णमण्डला, पूर्णभद्रा व भद्राङ्गी। इनमें प्रथम खण्ड में सभी में 8-8 को रखकर द्वितीय व तृतीय खण्ड में कला को 8 से क्रमशः एक-एक (9, 10... 23) तथा दो के क्रम से (10, 12... 38) तक बढ़ाया जाता है। सभी खण्डों में कला संख्यात्मक रूप से 24 से तीन-तीन अंक (27, 30... 69) तक बढ़ती हैं। त्रिखण्डा रेखाएं अध्याय के अन्त में दिए गए चक्र संख्या 1 से स्पष्ट होती है।

पूर्वोक्त चारानुसार चतुष्खण्डा सोलह रेखाओं के नाम क्रमशः निम्न होते हैं- शांतिनी, शुभा, शान्ता, त्रिदिवा, देवदुर्लभा, वीभत्सा, शिवा, सौम्या, वीरभद्रा, नारायणी, सुषिरा, शेखरा, रम्या, पूर्णा, पूर्णभद्रिका एवं विजया। प्रथम खण्ड से चार खण्डों तक ये 12 से क्रमशः सवाया क्रम से पौने पाँच तक गुणा होकर 57 संख्या में लब्ध होती है। चतुष्खण्डा रेखाएँ अध्याय के अन्त में दिए गए चक्र संख्या 2 से स्पष्ट होती है।

पञ्चखण्डा रेखाओं के सोलह नाम क्रम से इस प्रकार हैं- लक्ष्मिणी, श्री, सम्भवा, विधूरा या विद्विप्रभा, पूर्णमण्डला, सुशीला, मानसी, शैला, नन्दा, मन्दाक्षी या नन्दाक्षी, शैला, कौमुदी, शान्ति, लाभा, कल्याणी, सुभद्रा एवं भद्रेश्वरी। ये एक से पाँच खण्ड तक बढ़ती है तथा 16 के बाद चारों से विभाजित होकर 76 तक खण्डीय होती है। इनका दिग्दर्शन अध्याय के अन्त में दिए गए चक्र संख्या 3 से किया जा सकता है।

षट्खण्डा रेखाएँ क्रमशः छह तक बढ़ती हैं और 20 कला प्रथम खण्ड के बाद चार से गुणा होती हुई उत्तरोत्तर 95 तक खण्डीय होती है। इन सोलह रेखाओं के नाम हैं- कामिनी, कमला, पद्मा, सभ्रमा, भ्रमशेखरा, शुभद्रा, सार या शांतिसंभूता, वैदेवी, राजशेखरा, गांधारी, गन्धर्वा, वृत्ता, तिलका, त्रिलोकसुन्दरी, महाभद्रा तथा इन्द्रा। इनको अध्याय के अन्त में दिए गए चक्र संख्या 4 से समझा जा सकता है।

सप्तखण्डा रेखाएं सातखण्ड तक होती हैं और प्रथम खण्ड के बाद सातवें खण्ड तक 24 से चारानुसार गुणा करने पर 114 होती है। पहले खण्ड के छोड़कर शेष खण्डों तक क्रमशः एक, दो, तीन, चार, पाँच व छह संख्या के योग से बढ़ती है। चारानुसार इनके नाम हैं- पुष्पिता, पुष्पिका, चम्पा, समहा, कांतिला या तिलका, अद्भुता, सिद्धा,

सिद्धांगी, स्वरूपा, क्रीडामणि, नरनारा, नरेश्वरी, विरूपाक्षा, महोद्भवा, सिद्धासा तथा सर्वमण्डला। इन कला रेखाओं को अध्याय के अन्त में दिए गए चक्र संख्या 5 से समझा जा सकता है।

कलानिधि के अनुसार अष्टखण्डा रेखाएँ आठ खण्ड तक होती हैं और 28 कला के अनुसार प्रथम खण्ड को छोड़कर उसमें एक से क्रमशः सात तक का अंतराल जुड़ता जाता है। चारानुसार प्रत्येक कला गुणा होकर 133 तक बढ़ती है। शुभा, शीतला, गन्धा, मालती, हर्म्यसंयुता, मेघा, मेघपदा, अनुजा, कृष्णा, निर्मला, परा, तेजा, प्रतापतेजा, कीर्ति, आनन्दा तथा सम्भृता- ये इनके नाम हैं। यह रेखार्णव अध्याय के अन्त में दिए गए चक्र संख्या 6 से स्पष्ट है।

इसी प्रकार नवखण्डा रेखाएँ नौ खण्ड तक होती हैं तथा 32 कला के अनुसार प्रथम खण्ड को छोड़कर उसमें एक से क्रमशः आठ तक का अंतराल जुड़ता जाता है। चारानुसार प्रत्येक कला गुणा होकर 152 तक बढ़ती है। इनके नाम हैं- शान्ता, मुकुला, नन्दा, श्रिया, भद्रा, सम्भवा, शोभना, सुभद्रा, सुता, कुलनन्दिनी, गम्भीरा, मधुरा, शेखरा, शिखरोन्नता, महानीला एवं रत्नाचला। इन कला रेखाओं को अध्याय के अन्त में दिए गए चक्र संख्या 7 से स्पष्ट किया जा सकता है।

दसखण्डा रेखाएँ दस खण्ड तक होती हैं और 36 कला के अनुसार प्रथम खण्ड को छोड़कर उसमें एक से क्रमशः नौ तक का अंक जुड़ता जाता है। चारानुसार प्रत्येक कला गुणा होकर 171 तक बढ़ती जाती है। इनके नाम इस प्रकार हैं- आह्लादा, श्रिया, नन्दा, गौमती, नामसुन्दरी, सुभद्रा, भद्रिका, भद्रा, भद्रांगा, भद्रमालिनी, सम्भूता, भूतशरदा, पताका, कीर्तिवर्द्धिनी, माहेंद्री तथा सुन्दरा। यह रेखा खण्ड अध्याय के अन्त में दिए गए चक्र संख्या 8 से समझा जा सकता है।

एकादशखण्डा रेखाएँ दस खण्ड तक होती हैं। इनके नाम हैं- कुमुदा, भद्रका, ध्वजा, ध्वजाक्षी, मकरध्वजा, सुपताका, वीरभद्रा, रुपभद्रा, विनायका, वीरा, विक्रमा, रम्या, मन्मथा, देवसुन्दरी, उग्रा तथा कनकेशी या कनकेश्वरी। इनमें 40 कला के अनुसार प्रथम खण्ड को छोड़कर एक से क्रमशः 10 तक का अंतराल जुड़ता जाता है। चारानुसार प्रत्येक कला गुणा होकर 190 तक बढ़ती जाती है। एकादशखण्डा रेखाएं अध्याय के अन्त में दिए गए चक्र संख्या 9 से स्पष्ट हो सकती है।

द्वादशखण्डा रेखाएँ अपने नामानुसार बारहखण्ड तक होती हैं और 44 कला के अनुसार प्रथम खण्ड को छोड़कर उसमें एक से क्रमशः 11 तक का अंक जुड़ता जाता

है। चारानुसार प्रत्येक कला गुणा होकर 209 तक बढ़ती जाती है। इन रेखाओं के नाम हैं- शाश्वता (ी?) वरदा, रम्या, सुन्दरा, (आ)मोदा, (आ)मोदिका, शिवा, सर्वलभ्या, विशाला, कुलनायका, शिम्भा, शिवतमा, दिव्या, शिवांगना, विश्वेश्वरी तथा विश्वरूपा। इनको अध्याय के अन्त में दिए गए चक्र संख्या 10 से स्पष्ट किया जा सकता है।

त्रयोदशखण्डा रेखाएँ अपने नामानुसार ही तेरहखण्ड तक होती हैं और इनमें 48 कला के अनुसार प्रथम खण्ड को छोड़कर एक से क्रमशः 12 तक का अंक जुड़ता जाता है। चारानुसार प्रत्येक कला गुणा होती है और 228 तक बढ़ती है। इन रेखाओं के नाम हैं- शान्तिकी, विमला, सूर्या, वर्द्ध(मा)ना, विजया, वांछिता या वासना, वंशोद्भवा, वंशभूता, रेखिता, वंशतारा, अधिवास्या, वश्या, माना, शिखोद्भवा, वांस्या, वसंतोद्भवा। इस रेखाचक्र को अध्याय के अन्त में दिए गए चक्र संख्या 11 से स्पष्ट किया जा सकता है।

चतुर्दशखण्डा रेखाएँ चौदहखण्ड तक होती हैं। इनमें 52 कला के अनुसार प्रथम खण्ड को छोड़कर एक से क्रमशः 13 तक का अंतराल जुड़ता रहता है। सम आदि चारानुसार प्रत्येक कला गुणा होकर 247 तक क्रमशः बढ़ती है। इनके नाम इस प्रकार दिए गए हैं- विद्याशोधनिका, रम्या, गौरी, हंसी, सरस्वती, सारङ्गी, सौरम्या, शुक्राग्रा, अशोका, शौचकी, कनका, कनाकावती, कन्दर्पी, कन्दर्पाश्विनी, कमला तथा कलहंसी। इन कला रेखाओं को अध्याय के अन्त में दिए गए चक्र संख्या 12 से समझा जा सकता है।

इसके बाद पञ्चदशखण्डा रेखाएँ पंद्रहखण्ड तक होती हैं। इनमें 56 कला के अनुसार प्रथम खण्ड को छोड़कर एक से क्रमशः 14 तक का अंतराल जुड़ता जाता है। सम, सपाद आदि चारानुसार प्रत्येक कला गुणा होकर अंत में 266 तक क्रमशः बढ़ती है। अपराजितपृच्छा में इनके नाम नाहिनी, हस्तिनी, कुम्भिका, गजमालिनी, गजी, गजागना, शेखरी, राज्ञी, गजेश्वरी, रत्ना, रत्नगर्भा, माल्या, जया, उग्रतेजा, प्रिया और वक्त्रा दिए हैं जबकि कलानिधि की मातृकाओं में पञ्चदशखण्डा रेखाओं के नाम मन्दिनी, रत्नगर्भा, राज्ञी, गजेश्वरी, शान्ता, मनोज्ञा, नन्दा, द्वीपी, नान्दी, सन्निभा, उदिता, उग्रतेजा, सुभद्रा, नन्दिनी, प्रिया एवं वक्त्रा कहे गए हैं- यह भेद विचारणीय है। अपराजित के आधार पर इनको अध्याय के अन्त में दिए गए चक्र संख्या 13 से स्पष्ट किया गया है।

इसके अनन्तर षोडशखण्ड रेखाओं के विषय में कहा गया है जो सोलह खण्डों

तक बढ़ती है। इनमें प्रथम खण्ड में कुल कला 60 होती है जो द्वितीय खण्ड से सोलह खण्ड तक क्रमशः एक-एक बढ़ती हुई 75 तक जाती है। इनको समचारादि से गुणा करने पर कुल लब्धि 285 तक होती है। द्विपिनी, सिंहिनी, सिंही, सिंहरूपा, सिंहोन्नता, सिंहग्रीवा, सिंहा, सिंहाख्या, सिंहेश्वरी, महानादा, नादवती, नादोद्भवा, सिंहांगना, सिद्धा और सकलेश्वरी- इनकी सोलह संज्ञाएं हैं। इनका स्पष्टार्थ चक्र अध्याय के अन्त में क्रम 14 पर है।

कलानिधि में सप्तदशखण्डा रेखाओं के नाम क्रमशः सौम्या, नारायणी, रम्या, नरा, नरोत्तमा, नरेश्वरी, नराज्ञा, नरांगना, नृत्येश्वरी, वीरवती, वीरांगना, महावीरा, वीरनायका, वीभत्सा, सती और शान्ता बताए गए हैं। प्रथम खण्ड में इनकी कला संख्या की गणना 64 से करते हुए सत्रह खण्ड तक गणना की जाती है, इसके बाद एक-एक अंक बढ़ाते हुए 16 तक बढ़ती है। चारानुसार गणना करने पर कुल अंक 304 प्राप्त होते हैं। अध्याय के अन्त में दिए गए चक्र संख्या 15 से इनका स्पष्ट ज्ञान होता है।

अष्टादशखण्ड रेखा में कुल खण्ड 18 होते हैं। कला की गणना 68 से आरम्भ होकर 323 तक बढ़ती है जो चारों से गणना करने पर प्राप्त होती है। चारानुसार ही इसकी रेखाओं के रम्या, रम्येश्वरी, गङ्गा, ककुदा या कुमुदा, कुमुदशेखरी, वीभत्सा, पार्थिवा, कान्ता, मनोहरी, स्वरूपा, विक्रमा, शान्ता, मनोज्ञा, सर्वतोमुखी, यज्ञभद्रा और सुखासीना- ये सोलह नाम बताए गए हैं तथा अठारह कलांश बताए गए हैं।

चारानुसार इनका आकार एक से पौने पाँच तक माना गया है। अर्थात् 68 को क्रमशः एक, सवा, डेढ़, पौने दो, दो, सवा दो, ढाई, पौने तीन, तीन, सवा तीन, साढ़े तीन, पौने चार, चार, सवा चार, साढ़े चार तथा पौने पाँच से गुणा किए जाने पर क्रमशः 68, 85, 102, 119, 136, 153, 170, 187, 204, 221, 238, 255, 272, 289, 306 और 323 की लब्धि होती है। इनको अध्याय के अन्त में दिए गए चक्र संख्या 16 से समझा जा सकता है।

इस प्रकार तीसरे प्रकाश में त्रिखण्डा से अष्टादशखण्ड तक रेखाओं का विवरण दिया गया है। देवालयों में स्कन्ध स्थान से रेखाओं के प्रयोग की परम्परा इस विवरण से स्पष्टतः समझी जा सकती है। शिखर की श्रेष्ठता के लिए गोविन्द का यह विवरण निश्चय ही उपादेय है, उसके काल में तो इन नियमों का पालन हुआ ही, परवर्ती काल में भी उक्त नियम अनुकरणीय रहे।

*4. रेखाभेद स्कन्धोदय व कलाभेद–*

कलानिधि का चौथा प्रकाश पुनः अपराजितपृच्छा से लिया गया है। इसमें रेखाओं के भेद, स्कन्धभेद व कलाभेद पर प्रकाश डाला गया है। उदयभेदोद्भव रेखा के विषय में कहा गया है कि मूल रेखा के विस्तार से शिखर का उदय सवा रखें। सवा भाग शिखर में दोनों कोने के मध्य पच्चीस रेखाएं होती हैं। सवाया उदय वाले शिखर के दोनों कोने के मध्य पच्चीस रेखाएं उदय में होती हैं। कला के भेद से ये शिखर के नमन में शोभना, भद्रा, सुरूपा, सुमनोरमा, सुता, शान्ता, कौबेरी, सरस्वती, कौला, करवीरा, कुमुदा, पद्मिनी, कनका, विकटा, रम्या, रमणी, वसुन्धरा, हंसी, विशाखा, नन्दिनी, जया, विजया, सुमुखा, प्रियाननादि पच्चीस रेखाएँ होती हैं–

सव्यासं शिखरं कार्यं सकलाः शिखरोदयः।

व्यासस्य कर्णयोर्मध्ये सङ्ख्यायाः पञ्चविंशति॥ *(कलानिधि 4, 1)*

यही मत सूत्रधार मण्डन का भी है– सपादं शिखरं कार्यं सकर्णं शिखरोदयम्। सपादकर्णयोर्मध्ये रेखाः स्युः पञ्चविंशतिः॥ सपादकर्णयोर्मध्ये उदये पञ्चविंशतिः प्रोक्ता रेखाः कलाभेदैर्वलणे पञ्चविंशतिः॥ *(प्रासादमण्डनम् 4, 13-14)*

इसके बाद कलाभेदोद्भव रेखाओं की जानकारी दी गई है। इनके लिए शिखर के उदय का पाँच से लेकर उनतीस खण्ड किए जाने चाहिए। उन खण्डों में अनुक्रम से एक-एक कला उदय में बढ़ाते जाएं। यथा– प्रथम पाँच खण्डों में एक से पाँच कला, छठें में छह और सातवें में सात– इसी भांति उनतीसवें खण्ड में उनतीस कला होती है। उदय में जितनी कला हो, उतनी कला संख्या स्कन्ध में भी रखनी चाहिए–

पञ्चखण्डादि खण्डवृद्ध्यावदेकोनत्रिंशति।

खण्डचारे कलाज्ञेया अङ्कवृद्धि क्रमेश च॥ *(कलानिधि 4, 6)*

पञ्चखण्डीय कला रेखाओं की संख्या पन्द्रह मानी गई है तथा उनतीस, पैंतीस व एक सौ चार तक भी गणना की जाती है–

पञ्चखण्डे कला चैव सङ्ख्यया दशपञ्च च।

एकोनत्रिंशे पञ्चत्रिंशदूत्तरम् चतुःशतम्॥ *(वही 4, 7)*

इन रेखाओं के नाम हैं– चन्द्रकल्पा (चंद्रकला?), कलावती, कलधौता, रुधिरा, नलिनी, मालिनी, कमला, दुन्दुभि, वनवेल्लिका, रत्नतूला, वृंदारका, त्रिशिखा,

नन्दा, कौमोदिनी, चक्रा, शुचिशाल, भ्राम्या, चलिता, मृगाक्षी, द्वीपिन्या, शशिकौमुदी, मंजरी, पूर्णमाहेंद्री, पताका, त्रैलोक्यमोहिनी, विजया। नाना भेदों वाली इन रेखाओं को सर्व कालफलप्रदायिनी कहा गया है।

इस सम्बन्ध में मण्डन का मत है कि प्रथम समचार की त्रिखण्डों में आठ-आठ कला रेखा होती है, बाद में आगे के हर खण्ड में चार-चार कला बढ़ाने से अठारहवें खण्ड में अड़सठ कला रेखा हो जाती है। उदय में जितनी कला रेखा हो, उतनी ही स्कन्ध में बढ़ानी चाहिए। कम होने पर शिखर सौंदर्यहीन हो जाता है- अष्टादावष्टपर्यंतं चतुर्वृद्ध्या च षोडश। दैर्घ्यतुल्याः कलाः स्कन्धे एकहीनांशोऽशोभनम्॥ *(प्रासादमण्डनम् 4, 16)*

*5. रेखा कुण्डलियां-*

कलानिधि का पाँचवा प्रकाश 'रेखाकुण्डलिया' किसी 'विवेककल्पलता' नामक ग्रन्थ से उद्धृत किया गया है। यह ग्रन्थ निश्चय ही तत्कालीन वास्तुकलाविदों के बीच लोकप्रिय नहीं तो विशेष ज्ञान रखने वालों के बीच समादरणीय अवश्य रहा होगा।

'विवेककल्पलता' नामक ग्रन्थ के विषय में गोविन्द ने यह संकेत दिया है कि इसका प्रणयन स्वयं विश्वकर्मा ने किया था। विश्वकर्मा प्रणीत् ग्रन्थों में यह ग्रन्थ अब तक अनुपलब्ध है। यद्यपि विश्वकर्माकथित जयपृच्छा, क्षीरार्णव अथवा नारदपृच्छा, ज्ञानप्रकाशदीपार्णव, वृक्षार्णवादि ग्रन्थों में देव स्थापत्य विषयक मत मिलते हैं। विश्वकर्मीय ज्ञानप्रकाश दीपार्णव में नवें अध्याय में शिखरविधान पर विमर्श है किंतु गोविन्द का स्पष्ट संकेत है कि विवेककल्पलता में अध्यायों का नामकरण 'स्तबक' अभिधान से किया गया है और उसमें आठवें स्तबक में प्रतानरेखादि की जानकारी है, जिसे उसने उद्धृत किया है-श्रीः प्रासाद रेखा कुण्डल्यो विश्वकर्म मताश्रिताः। विवेककल्पलतायां अष्टमे प्रताने रेखा स्तबकः॥ *(5, 44)*

इस प्रकार गोविन्द ने एक अज्ञात देवशिल्पविषयक वास्तुग्रन्थ का संकेत दिया है। मेरे यह देखने में नहीं आया न ही शताधिक वास्तु व शिल्पकला विषयक जानकारी देने वाले किसी ग्रन्थ, शोधप्रबंधों और सूचीपत्रों में ही इसका उल्लेख आया है। यह अपराजितपृच्छा के बाद लिखा गया हो तो कोई सन्देह नहीं क्योंकि अपराजितपृच्छा में उक्त प्रकाश में निहित विचार या मत को नहीं दिया गया है। निश्चय ही यह तेरहवीं सदी की रचना होगी जबकि नागर प्रासादादि के शिखरों में विशेष प्रयोग किए जाने लगे थे। सूत्रधार मण्डन, नाथा आदि ने इस ग्रन्थ का उल्लेख नहीं किया है।

इस प्रकाश में जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि उस छन्द का वर्णन है कि जिसमें गोलाई या अन्य समानान्तर रेखाओं से वृत्ताकार रेखाएँ तैयार की जा सकती है। इसमें तीन खण्डीय अठारह रेखाओं का विवरण दिया गया है जिनमें से प्रत्येक के तीन, चार व पाँच खण्डानुसार सोलह भेद होते हैं। रेखाविचार का एक अध्याय क्षीरार्णव में मिलता है किंतु उसका पाठ भ्रष्ट अधिक है। गोविन्द ने इस अध्याय में अंकों के अनुसार क्रमशः 153 व 136 रेखाओं को आठ-आठ के मान से शिखर में प्रयोग करने की युक्ति दर्शाई है तथा कहा है कि पाँच खण्ड से एक एक कला की वृद्धि, उनतीस खण्ड तक की व खण्डचारी अनुक्रम से अंकवृद्धि से करते हुए रेखा का ज्ञान करें। एक, दो तीन, चार, पांच, छह, सात और आठ- इस क्रम के योग से उनतीस तक की वृद्धि करें और पाँच खण्ड की कला दस खण्ड तक करें। इस प्रकार उनतीस खण्ड तक की चार सौ पैंतीस कला भेद की रेखा की साधना करें-

पञ्चखण्डादि खण्डर्ध्यायावदेकोनत्रिंशति।

पञ्चखण्डादि रेखास्तु कला पञ्चदशादितः ॥

एक-द्वि-त्रि-चतुःपञ्चषट्सप्ताष्टदिवर्धनात्।

क्रमेणाङ्कं द्विखण्डाया पञ्चरामचतुः$_{435}$कलाः ॥

कलाभेदाद्भवा एव रेखाः स्युः पञ्चविंशति। *(वही 5, 23-25)*

इसी प्रकाश में ग्रन्थांतर से चार श्लोक लिए गए हैं तथा उदाहरण के रूप में त्रिखण्डा रेखा में शशिनी आदि को समचार में 24 कला से मानकर आगे सपादचार में 27 आदि क्रम से गणना का कहा गया गया है। यह उदाहरण अपराजित के मत से लिया गया है- नामानि तेषां ज्ञानीयादऽपराजितं तंत्रतः। *(कलानिधि 5, 21)* इस प्रकार 256 रेखाओं को अपराजित के मत से व्यवहार्य को कहा गया है।

*6. गुण-दोष रेखा विभक्ति कोश प्रकार-*

कलानिधि के छठे प्रकाश में रेखाओं के गुणदोष एवं विभक्तियों का प्रकार दर्शाया गया है। यह अध्याय विश्वकर्मीय शास्त्र सहित जयपृच्छा, समराङ्गणसूत्रधार, प्रासादमण्डन आदि पर आधारित है। यह पाठ हालांकि अस्पष्ट है किंतु उपर्युक्त ग्रन्थों के आधार पर इसे शोधित करने का प्रयास किया गया है। इसमें शिखर की ऊंचाई को दस भागों में विभाजित कर स्कन्ध भाग पर विभिन्न रचनाएं करने का निर्देश है। शिल्प शास्त्रीय परम्परानुसार मूल शिखर के पायचे के दस भाग कर ऊपर के स्कन्ध पर चतुर्थ

भाग रखना चाहिए, न्यूनाधिक दोषकारक हैं। इन पर शिवक, मनोरथ, बाहुक, वैचित्र्य, गुह्यका, खंजन, विशाल, चारण, पुष्पक, वृंदारक, कौलेय, क्षत्रिय, नाग, कौस्तुभ, वृषभ, अर्बुद, कमठ, कुटिक, गोलक, पुलक, किरीट आदि बनाने को कहा है। यह भी कहा गया है कि चार भाग पर रचनांकन उत्तम, साढ़े तीन पर मध्यम व तीन पर अधम माना गया है।

गोविन्द का मत है कि रेखाओं का ज्ञान बड़ा ही कठिन है, इसे सुगुरु से ही शास्त्रसिद्धि से पाया जा सकता है। जो इसे जानता है वह स्थपति सम्मान्य होता है। इसके फलाफल के सम्बन्ध में कहा गया है कि भग्नकलांश, चिपिटा, स्थूला, ऊंची-नीची, वक्रीय, दुर्गत, गलत माप वाली रेखाओं के अंकन से कुलनाश होता है। स्कन्ध से च्युत रेखा से अकाल मृत्यु होती है। क्षेत्र से चूक हो जाने पर अकाल व शत्रुओं का भय होता है। भग्नकलांश व चिपिटा रेखा नृपभय देती हैं। स्थूला रेखा स्थान का विनाश एवं ऊंची-नीची रेखा महामारी देती है। वक्रीय रेखा राष्ट्र के लोगों को वक्रचारी करती है। इसी प्रकार का विचार क्षीरार्णव के 14वें अध्याय में भी दिया गया है।

जयपृच्छा से जो श्लोक उद्धृत किए गए हैं, वे प्रकाशित पाठ में भ्रष्ट हैं तथापि इसके पाठ के साथ तुलनीय रूप में दिए गए हैं। जयपृच्छा में रेखा विषयक दो अध्याय दिए गए हैं- शिखराधिकारे रेखार्णवे (12) तथा रेखार्णवे (13) और इनमें कई श्लोक अपराजित तथा वृक्षार्णववास्तुशास्त्रम् से उद्धृत हैं। कलानिधि के कुछ श्लोक 13वें और कुछ 12वें अध्याय से उद्धृत किए गए हैं।

शिखराधिकार से उद्धृत श्लोकों में स्पष्ट किया गया है कि रेखा के विस्तार मान के उदय में पाव को मिलाएं, इसके बाद तीन या साढ़े तीन भाग मिलाना चाहिए। अर्थात् तीन, सवा तीन व साढ़े तीन- इस मान से रेखा तीन प्रकार की होती है कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठ। उदय के अनुसार शिखर की चार से पाँच सौ हाथ तक यदि गणना करें तो चौबीस भाग का स्कन्ध मान रखना चाहिए। उसका आधा कर उसके भी नौ भाग करें जिसमें से चार भाग पर कोण बनाएं तथा तीन प्रतिरथ बनाएं। दो भाग पर भद्र करें और कला को साधें, पुनः रेखा का विभाजन करें तथा तदनुसार बालपञ्जर बनाएं।

इसे क्षीरार्णव में सान्धार प्रासाद के प्रसंग में स्पष्ट किया गया है शिखर के पायचे के बाइस भाग करें। उसमें रेखा चार भाग की, प्रतिरथ तीन भाग का, दूसरा उपरथ दो भाग और आधा भद्र दो भाग का करना चाहिए। उनके ऊपर स्कन्ध के तेरह भाग करें और तीन भाग की रेखाकर्ण, दो भाग का दूसरा प्रतिरथ, एक भाग का रथ तथा शेष

आधा भद्र आधे भाग का रखें। इस प्रकार कुल तेरह भाग सान्धार प्रासाद के शिखर के स्कन्ध पर होते हैं। शिखर की रेखा के बालपञ्जर के भेद इस प्रकार जानने चाहिए।

गोविन्द के चाचा सूत्रधार नाथा ने वास्तुमञ्जरी में इस सम्बन्ध में कहा है-

रेखामूले तु दिग्भक्ते कोणः कार्योद्विभागकः।

त्र्यंशभद्रं रथः सार्द्ध स्कन्धोर्ध्वे च नवांशके॥

कोणौ युगांशौ भद्रं च द्व्यंशत्र्यशोरथो भवेत्॥ *(वास्तुमञ्जरी 2, 90-91)*

जयपृच्छा ग्रन्थ में बालपञ्जर के निर्माण के लिए कहा गया है-

रेखामान मयाख्यात बालपञ्जरऽत शृणु॥

रेखा विस्तार यन्मानं षड्विंशति पदभजेत्।

कोणं च भाग चत्वारि प्रतिरथ त्रिणिमेव च॥

द्वि-द्विभाग उपरथ भद्रमभाग अष्टकम्।

बालंजरश्च कार्यं चोभयश्च विभिर्भाजितः।

चोदयं त्रयं तु कर्तव्यं शिल्पिनात्वय॥

रेखा त्रयं तु कर्तव्यं पूर्वमानेन शिल्पिना।

स्कन्ध षोडशभिर्भागेः कर्तव्या च सदा बुधे॥ *(जयपृच्छा 12, 23-26)*

गोविन्द ने स्पष्ट किया है कि मान प्रमाण से कम या अधिक स्कन्ध वाला शिखर नहीं बनाना चाहिए। न्यून मान वाला शिखर कुल का नाश, मृत्यु और रोग का कारण बनता है इसलिए सर्व प्रयत्नेन मानानुसार ही शिखर रचना की जानी चाहिए। यदि स्कंध के मूल में ध्वजादण्ड की प्रविष्टि होती है तो उसे स्कन्ध-वेधकारक समझना चाहिए। इससे शिल्पी व स्वामी का नाश होता है। इनमें सन्देह नहीं है। निर्गम को हस्त और अंगुल मानादि के अनुसार ही रखना चाहिए। *(कलानिधि 6, 25-27)*

इसके बाद गोविन्द ने अपने पिता मण्डन कृत प्रासादमण्डनम् के श्लोक उद्धृत करते हुए शिखर विधान लिखा है कि मूल रेखा के विस्तार से चार गुणा सूत्र से दोनों कोने के मूल विन्दु से दो गोल बनाएं जिसके दोनों गोल के स्पर्श से कमल के पत्र जैसी आकृति के समान पद्मकोष बन जाता है। उसमें दोनों कोने के मध्य विस्तार से सवाया

शिखर का उदय रखना चाहिए-

रेखामूलस्य विस्तारात् पद्मकोशं समालिखेत्।

चतुर्गुणेन सूत्रेण सपादः शिखरोदयः॥ *(प्रासादमण्डनम् 4, 23)*

पूर्वोक्त मानानुसार सवाया शिखर का उदय करने के बाद जो पद्मकोश का उदय शेष रहता है, उसमें ग्रीवा, आमलसार और कलश बनाना चाहिए। यथा- शिखर के स्कंध से लेकर पद्मकोश के अन्तिम बिन्दु तक के उदय का सात भाग करें, उसमें से एक भाग की ग्रीवा, डेढ़ भाग का आमलसार, डेढ़ भाग का पद्मच्छत्र या चन्द्रिका और तीन भाग का कलश बनाएं। द्विभाग के विस्तार वाले कलश का बिजोरा बनाना चाहिए। कलश के अण्डा का विस्तार प्रासाद के आठवें भाग का बनाएं।

इसके बाद गोविन्द ने भोजमत को ग्रहण किया तथा मेरु, स्वस्तिक, रुचक, केसरी, नन्दिशाल आदि प्रासादों के शिखर पर पद्मकोश, वेणुकोश, आमलसारिका, कलशादि का प्रमाण दिया है। इस उद्धरण में गोविन्द ने यह महत्वपूर्ण जानकारी दी है कि अपराजित का उपस्कारक ग्रन्थ भोज प्रणीत समरांगणसूत्रधार भी था। संभवतः गोविन्द के संग्रह में ऐसी कोई संकेतित प्रतिलिपि रही हो।

*7. प्रासादपुरुष निवेश-*

मध्यकालीन शिखर संरचना में प्रासादपुरुष की स्वर्ण मूर्ति बनाकर आमलसार में स्थापित की जाने लगी थी। अपराजितकार सहित क्षीरार्णव, जयपृच्छा, दीपार्णवकार ने प्रासाद पुरुष का स्वरूप वर्णन किया है जो परवर्ती ग्रन्थकारों के लिए ग्राह्य रहा है। नींव शिला में कूर्मादि की प्रतिमा के निवेश के अनन्तर शिखर पर प्रासादपुरुष का निवेश एक प्रकार से सम्पूर्ण पुरुषत्व के आरोपण या स्थापन की अभिकल्पना का द्योतक है।

दसवीं सदी में सम्पादित कहे जाने वाले 'अग्निपुराण' में भी प्रासादपुरुष की कल्पना मिलती है। इसे कलश में स्थापित किया जाता था। प्रासादपुरुष को स्वर्णधातु से तैयार किया जाता था, इसलिए उसका नामाभिधान स्वर्णपुरुष भी मिलता है। इसे पुरुष तत्त्व से युक्त कर पञ्चगव्य तथा कषाय आदि से संस्कारित करने के बाद रुद्र का ध्यान किया जाता और शिवमन्त्र से अभिषिक्त किया जाता, देवता का सामीप्य पाने के लिए हवन, शरीर शुद्धि, स्पर्श, जप के अनन्तर आवाहन, जागरण व प्रकृति पर्यन्त न्यास विधान कर कलश में स्थापित किया जाता था-

सुवर्णाद्युद्भवं यद्वा पुरुषं पुरुषानुगम् ॥

पञ्चगव्यकषायाद्यैः पूर्ववत्संस्कृतं ततः ।

शय्यायां कुम्भमारोप्य ध्यात्वा रुद्रमुमापतिम् ॥

तस्मिंश्च शिवमन्त्रेण व्यापकत्वेन विन्यसेत् ।

संनिधानाय होमं च प्रोक्षण स्पर्शनं जपम् ॥

सान्निध्यबोधनं सर्वं भागत्रयविभागतः ।

विधायैवं प्रकृत्यंते कुम्भे तं विनिवेशयेत् ॥ *(अग्निपुराण 101, 10-13)*

कलानिधि में अपराजितपृच्छा के मत से कहा गया है कि यह स्वर्णपुरुष देवालय का जीव स्थान है, इसलिए उसको देवालय में स्थापना करने का स्थान महत्व है। यह छज्जा के प्रवेश में, शिखर के मध्य अथवा उसके ऊपर, शुकनास के अन्तिम भाग में, वेदी के ऊपर और दो भूमिकाओं के मध्य गर्भ में स्थापित करना चाहिए। यह हृदयवर्णक या जीव विधि कही गई है। इसको ताम्र के पर्यङ्क पर रेशम की शय्या बनाकर शयन करवाएं। प्रासादपुरुष के दायें हाथ में पद्म और बायें हाथ में ध्वजा रखकर उस हाथ को वक्ष पर रखना चाहिए-

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि पुरुषस्य प्रवेशनम् ।

न्यसेद् देवालयेष्वेवं जीवस्थानफलं भवेत् ॥

छादनोपप्रवेशेषु शृङ्गमध्येऽथवोपरि ।

शुकनासावसानेषु वेद्यूर्ध्वे भूमिकान्तरे ॥

मध्यगर्भे विधातव्यो हृदयवर्णको विधिः ।

हंसतुलीं ततो कुर्यात् ताम्रपर्यङ्कसंस्थिताम् ॥ *(कलानिधि 7, ...)*

कलानिधिकार ने प्रासादपुरुष का प्रमाण भी कहा है- एक हाथ से पचास हाथ तक के प्रासाद के लिए आधा-आधा अङ्गुल बढ़ाकर इसे बनाएं। प्रासादपुरुष को स्वर्ण, रजत अथवा ताम्र धातु से बनाएं और जलपूर्ण कलश में स्थापित करें। बाद में उसे पर्यङ्क पर रखें और अपने नाम वाली स्वर्णमुद्रा से पूरित चार कलश पर्यङ्क के चारों पायों के निकट रखें। इस प्रकार स्वर्णपुरुष को स्थापित किए जाने से वह जब तक विद्यमान रहता है, तब तक देवालय के निर्माता को किसी प्रकार का खेद नहीं होता-

प्रमाणं तस्य वक्ष्यामि प्रासादादौ समस्तके।
यावच्छतार्ध हस्तादेः कल्पयेच्च यथाक्रमम्॥
वृद्धिरर्धाङ्गुलाद्धस्ते यावन्नोरुं प्रकल्पयेत्।
एवं विधं प्रकर्त्तव्यं सर्वकामफलप्रदम्॥
हेमजं तारजं वापि ताम्रजं वापि भागशः।
कलशे चाम्बुपूर्णे तु सौवर्णपुरुषं न्यसेत्॥
पर्यङ्कस्य चतुःषत्सु कुम्भाश्चत्वार एव च।
हिरण्यनिधि संयुक्ता आत्ममुद्रारिरङ्किताः॥
एवमारोपयेद् देवं यथोक्तं वास्तुशासने।
तस्य नैव भवेद् दुःखं यावदाभूत सम्प्लवम्॥ *(कलानिधि 7,...)*

प्रासादपुरुष की प्रतिष्ठा विधि भी इसी प्रकाश में दी गई है-

सार्वदैविक्यां हृत्प्रतिष्ठा देशिकोमूर्तियैः सार्धवास्तु पूजा विधाय दिक्पालग्रदेवताः सम्पूज्यमूलमन्त्रेण सहस्रं हुत्वा कुम्भमादाय सर्पि-दधि-मधु-क्षीर-पायसैः पूरयित्वा पञ्चरत्न निक्षिप्यांगुष्टमात्रं सौवर्ण पुरुषं पञ्चकषायोदकेन पञ्चपल्लवोदकेन सर्वोषध्युदकेन स्नापयित्वा कुम्भमध्येतं मूलमन्त्रेण प्रक्षिपेत्। कुम्भमामलसारिकाया अधोवेदिकोपरि स्थापेयत्। तत्पार्श्वे सतूलकगेन्दुकां खड्वा क्षिपेत्। पश्चाद्दत्विग्भिः साधर्माचार्य पूजयेच्छिल्पिन च इति हृदय प्रतिष्ठा।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण के तीसरे खण्ड में प्रतिष्ठाकल्प में इस सम्बन्ध में एकाधिक अध्याय लिखे गए हैं। इनमें 95, 96, 97, 98,99, 100 तथा 101वें अध्याय विशेष रूप में ज्ञातव्य है। इसमें कालनिर्णयाध्याय मुहूर्तादि के प्रसंग में विचारणीय है।

*8. प्रासाद में घण्टा व आमलसारिका निर्णय-*

देवालय में घण्टा व आमलसार को जिह्वा और कण्ठ रूप का प्रतिरूप माना गया है। शिखर के स्कन्ध के आमने-सामने के दो प्रतिरथ के समान आमलसार का गोलवृत्त रखने का शास्त्रों में निर्देश मिलता है। कलानिधि में यह अध्याय मुख्यतः अपराजितपृच्छा तथा विश्वकर्माप्रणीत ज्ञानरत्नकोश से उद्धृत किया गया है। मातृका में अन्तिम श्लोक को केवल रत्नकोश के उद्धृत बताया गया है जबकि रत्नकोश जो पांचवीं सदी में लल्लाचार्य द्वारा लिखा गया और हालांकि उसका पाठ आज नहीं मिलता किंतु, उसमें यह पाठ

नहीं रहा होगा, क्योंकि उक्त ग्रन्थ मुहूर्त पर आधारित था। ज्ञानरत्नकोश में यह पाठ मिलता है क्योंकि यह ग्रन्थ देवालय वास्तु पर ही आधारित रहा है।

गोविन्द का मत है कि दो प्रतिरथ के मध्य वृत्त में आमलसार बनाना चाहिए। व्यास को आधा कर उसके उत्सेध को चार अंशों में विभाजित करे। ग्रीवा को दो भाग व मण्डप के दो भाग करें और चंद्रिका को एक भाग में रखकर उसी के अनुसार आमलसार बनाएं-

द्वयोप्ररथयोर्मध्ये वृत्तमामलसारकः ।

व्यासार्धेन तदुत्सेधविभक्ते तु (वि ?) युगांशकै ॥

ग्रीवापादोन भागस्यात् सपादांश मण्डकं ।

चन्द्रिकाचैवभागेन भागेनामलसारिका ॥ *(कलानिधि 8, 1-2)*

नागर प्रासाद हो या लतिन, सांधार हो अथवा मिश्रक उनमें उदय के व्यास के विभाजन से एक भाग के अनुसार बांटे और कण्ठ, ग्रीवा, कपोल, पद्मछत्र, उपछत्र का निर्धारण करें। इसी प्रकार विमानक भूमिज, विमान, नागर पुष्कक आदि में भी आमलसार का मत दिया गया है-

नागरेलतिने कुर्यात्सांधारे चापि मिश्रके ।

व्यासार्धमुदयं कृत्वा विभजेत्यं च भागिकैः ॥

कण्ठोग्रीवाकपोलं च पद्मछत्रोपछत्रकम् ।

विमानेभूमिजेकुर्याद्विमान नागर पुष्पके ॥

इत्थमामलसारः सप्रयुक्तो वास्तुवेदिभिः । *(वही 8, 5-7)*

गोविन्द ने प्रकारान्तर से भी यह मान दिया है। 'जयपृच्छा' में कहा गया है कि शिखर का स्कन्ध छह भाग हो तो आमलसार की चौड़ाई को सात भाग रखें। आमलसार की चौडाई के क्षेत्र के अट्ठाइस भाग करे तथा उसका अर्द्ध, चौदह भाग उसकी ऊंचाई रखनी चाहिए। ग्रीवा तीन भाग, अण्डक पाँच, चन्द्रिका तीन भाग तथा तीन भाग की आमलसार को बनाना चाहिए, इस प्रकार चौदह भाग की रीति कही गई है। निर्गम के सम्बन्ध में कहा गया है कि गर्भ से आमलसार को साढ़े छह भाग और उसमें से ढाई भाग निर्गमित चन्द्रिका रखनी चाहिए और चन्द्रिका से पाँच भाग अण्डक निकलना हुआ रखना चाहिए- इस प्रकार 14+14 कुल 28 भाग आमलसार की

चौड़ाई का मान कहा गया है-

स्कन्ध षटभागिकं ज्ञेयं सप्तभागामलसारक।
क्षेत्राष्टाविंशतिर्भागेः उच्छ्रयेण तदर्धत्॥
ग्रीवा भाग त्रयं कार्यं अण्डकं पञ्चमेव च।
त्रिभागः चन्द्रिकाश्चैव मामलसारी चथैव च॥
निर्गमैः षट् सार्धे च आमलसारी भवेद्बुधः।
चन्द्रिका द्विसार्धे तु अण्डकै पञ्चभ्यमेव च॥ *(जयपृच्छा 12, 40-42)*

यही मान ज्ञानरत्नकोश में मिलता है जिसे गोविन्द ने उद्धृत किया है। इसके अनुसार स्कन्ध का विस्तार छह भाग और आमलसार का विस्तार सात भाग रखें। आमलसार के विस्तार का 28 भाग और ऊंचाई का चौदह भाग करें। उदय में तीन भाग की ग्रीवा, पाँच भाग का अण्डक, तीन भाग की चन्द्रिका और उतना ही, तीन भाग का आमलसार रखें। आमलसार के मध्य गर्भ से विस्तार में साढ़े छह भाग निर्गम हो, ऐसे आमलसार, इसमें ढाई भाग निर्गम चन्द्रिका और उसमें पाँच भाग अण्डक का निर्गम रखना चाहिए-

स्कन्धे षडंशके सप्तभाग आमलसारकाः।
अष्टविंशति भक्ते तु उदयः स्यात्तदर्धतः॥
ग्रीवाभाग त्रयं कार्यं अण्डकं च पञ्चभागिकं।
त्रिभागा चन्द्रिका कार्यामलसारी तथैव च॥
निर्गमे सार्धषड्भागम् कुर्यादामलसारिकाम्।
चन्द्रिका च द्विसार्धांशां अण्डकं पञ्चभागिकम्॥ *(कलानिधि 8, 17-19)*

यह प्रकारान्तर मान है जिसे ज्ञानप्रकाश दीपार्णव में भी लिखा गया है-

स्कन्धः षड्भागको ज्ञेयः सप्तांशामलसारकाः।
क्षेत्रमष्टविंशभागैरुच्छ्रये च तदर्धतः॥
ग्रीवा भागत्रयं कार्या अण्डकः पञ्चभागकः।
त्रिभागा चन्द्रिका चैव तथैवामलसारिका॥
निर्गमे षट्सार्धभागौ भवेदामलसारिका। *(दीपार्णव 9, 63-65)*

घण्टा के सम्बन्ध में गोविन्द ने कहा है कि सिंहावलोकन के साथ ही घण्टा को मन्दार के पुष्प के समान बनाना चाहिए। इस सम्बन्ध में यह कहा गया है कि अर्कपुष्प के समान ही निर्माण करना प्रशस्त होता है-

सिंहावलोकने कुर्याद्घण्टा मन्दारपुष्पवत्।

अर्कपुष्पोपमा शस्ता दारुजा पुष्पकादिषु॥ *(कलानिधि 8, 16)*

विधान के अनुसार शिखर के शुकनास के समान मण्डप की घण्टा को रखना चाहिए किंतु अपराजितपृच्छा के सूत्र 185 में 'शुकनासे समाघण्टा न न्यूना न ततोधिका' कहा गया है किंतु दीपार्णवादि और अपराजित में अन्य स्थल पर 'तदूर्ध्वे न प्रकर्त्तव्यं अध: स्थे नैव दूषयेत्' भी कहा गया है। इससे स्पष्ट होता है कि शुकनास से मण्डप के घण्टा को नीचे रखना चाहिए, इसमें दोष नहीं हैं।

इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध स्थपति प्रभाशङ्कर ओघडभाई सोमपुरा ने स्पष्ट किया है कि शुकनास समाघण्टा कहते हैं लेकिन आमलसार मण्डप के ऊपर का नहीं कहा है, इसका कारण तेरहवीं सदी में मण्डप पर गुम्बज नहीं है, लेकिन संवरणा का प्रयोग होता था और सर्वोपरि मूलघण्टा होती, इसलिए घण्टा कहा जाता था। संवरणा पीछे के काल में कम होने लगी, इसी कारण गुम्बज बनाकर चन्द्रिका रख आमलसार पर कलश रखने की परम्परा शुरू हुई। *(क्षीरार्णव पृष्ठ 153 पर पाद टिप्पणी)*

शिल्पियों की मान्यता रही है कि मूलकर्ण या पायचे से शिखर का उदय सवाया करना हो तो उसके विस्तार से चार गुना सूत्र से, डेढ़ा करना हो तो पाँच गुना सूत्र से पौने दुगुना करना हो तो पौने सात गुना सूत्र से और एक तिहाई करना हो तो साढ़े चार गुना सूत्र से मूलकर्ण के दोनों बिन्दु से दो गोल बनाने से पद्म पत्र के समान आकार बन जाता है। इसमें इष्टमान के उदय में शिखर का स्कन्ध और शेष उदय में आमलसार व कलश आदि की संरचना करनी चाहिए। इस प्रकार इस प्रकाश में घण्टा व आमलसार का मान पूर्व निर्धारित मानानुसार और प्रकारान्तर को भी सूत्रधार ने स्पष्ट किया है।

*9. कलश प्रमाण लक्षण-*

इस ग्रन्थ में कलश का प्रमाण आदि अपराजितपृच्छा से लिया गया है। कलश को मन्दिर का मस्तक माना गया है। इसी स्थापना के मूल में सर्वकल्याण का भाव निहित मिलता है। अपराजितकार ने कलशोत्पत्ति का पौराणिक आख्यान भी दिया है

जिसके अनुसार देवों-दानवों द्वारा समुद्रमन्थन के दौरान क्षीरसागर से कलश की उत्पत्ति हुई जो सुन्दर तिलक से युक्त और कामनाओं को पूर्ण करने वाला था इसीलिए उसे प्रासाद के शीर्ष भाग पर स्थापित करने तथा सभी प्रतिष्ठादि कार्यों में स्थापित करने की परम्परा चली-

क्षीरोदार्णवके पूर्वं मथ्यमाने सुरासुरैः।

तत्रोत्पन्न सुतिलकम् कलशः कामरूपिणम् ॥

प्रतिष्ठादिषु सर्वेषु सर्वपुण्य (पुष्य?) महोत्सवे।

संस्थाप्य पुण्यकलशं सर्वविघ्नोपशामकम्॥ *(कलानिधि 9, 2-3)*

यही मत मण्डन ने भी दिया है-

क्षीरार्णवे समुत्पन्नं प्रासादस्याग्रजातकम्।

माङ्गल्येषु च सर्वेषु कलशं स्थापयेद्बुधः॥ *(प्रासादमण्डनम् 4, 36)*

अभिषेक कार्य के समय दिव्य घट को श्रीफल, पल्लवों से युक्त कर स्थापित करना चाहिए। यह कलश सभी पापों से निर्मुक्त करने वाला है और इससे श्रेय की प्राप्ति होती है। क्षीरार्णव से उत्पन्न इस प्रकार के मङ्गल कलश को मन्दिरों, राजाओं के महल, सभी देवताओं के स्थानों सहित लोगों के भवन पर भी स्थापित करना चाहिए, ऐसा विश्वकर्मा का निर्देश भी है-

अभिषिक्तो दिव्यघटैः फलपल्लवसंयुतैः।

सर्वपापविनिमुक्तः श्रियं प्राप्नोति मानवः॥

क्षीरार्णवे समुत्पन्नं प्रासादस्याग्रजातकम्।

प्रासादो देवतानां च नरेंद्राणां च हर्म्यकम्॥

देवागारेषु सर्वेषु नृपाणां भवने तथा।

संस्थाप्यं दिव्यकलशं विश्वकर्मवचो यथा॥ *(कलानिधि 9, 4-6)*

इसके बाद गोविन्द ने कलश के लक्षणों का वर्णन किया है जिसे सूत्रमान से नौ भाग से विभाजित कर प्रयुक्त करना चाहिए। यदि प्रासाद शैलोत्पन्न प्रस्तर से बना हो तो उसमें शैलोत्पन्न प्रस्तर का कलश लगाएं। काष्ठ का बना हो तो काष्ठ, धातु का हो तो धातु, ईष्टिका का हो तो ईष्टिका का कलश लगाना श्रेष्ठ होता है। चित्र का हो तो चित्र,

विधातु का हो तो स्वर्ण का कलश सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है, इसमें भी सभी प्रासादों में स्वर्णकलश, ध्वज की स्थापना सर्वश्रेष्ठ कही गई है-

उत्पत्तिः कथिता चैवं लक्षणं शृणु साम्प्रताम्।
विभक्तिभागसङ्ख्यानां प्रमाणं सूत्रमानतः ॥
शैलजे शैलजं कुर्याद् दारुजे दारुजं तथा।
धातुजे धातुजं चैव ऐष्टिके चैष्टिकं शुभम्॥
चित्रे चित्रं विधातव्यं हेमजं सर्वकामदम्।
श्रेष्ठं सर्वत्र श्रेष्ठानां सुवर्णकलशध्वजम्॥ *(उपर्युक्त 9, 7-9)*

कलश के उदय मान के सन्दर्भ में ज्ञातव्य है कि प्रासाद के अष्टमांश से कलशाण्डक की मोटाई रखें तथा यदि उसका सोलहवां भाग बढ़ाएं तो ज्येष्ठ मान तथा बत्तीसवां भाग बढ़ाएं तो मध्यम मान के कलश का उदय होता है। इस प्रकार जो उदय हो उसके नवें भाग में से एक भाग की ग्रीवा और पीठ, तीन भाग का अण्डक या कलश का उदर, दोनों कर्णिका एक-एक भाग तथा तीन भाग का बीजोरा अथवा बीजपूरक रखना चाहिए-

प्रासादस्याष्टमांशेन पृथुत्वं कलशाण्डके।
षोडशांशैर्युतं श्रेष्ठं मध्यं द्वात्रिंशदंशतः ॥
मूलरेखा पञ्चमांशे पृथुत्वं तस्य कारयेत्
घण्टा विस्तारपादेन तत्पादेन युता पुनः ॥
इत्थं कलशविस्तारमुच्छ्रयस्तस्य सार्द्धतः। *(उपर्युक्त 10-12)*

तथा-

उच्छ्रयो नवभागः स्यात् षडभागा विस्तृतिस्तथा।
अण्डकं चैकपादं स्यात् त्रिपदा पद्मपत्रिका॥
ग्रीवा पादोनभागा च सपादं द्वे च कर्णिके।
मातुलिङ्ग त्रिभिभागैः कर्त्तव्यं सर्वकामदम्॥
उच्छ्रयः कथितश्चैवं विस्तरं शृणु साम्प्रताम्।

पद्मपत्रं त्रिभिर्भागैस्तत्कन्दे च द्विभागकम्॥

अण्डकम् च घटाकारं कुर्यात् षडभागविस्तृतम्।

ग्रीवा मध्ये द्विभागाभ्यां चतुर्भिः कर्णिकान्तरम्॥

सार्धं द्व्यंशं बीजपूरमग्रे निम्नं सुलक्षणम्।

प्रमाणं तत्र चाख्यातं कलशे सर्वकामदम्॥ *(कलानिधि 9, 18-22)*

यही मत सूत्रधार मण्डन का भी है, जो अपराजितपृच्छा से ही साम्य रखता है। तुलनीय है-

पूर्वोक्तमानतो ज्येष्ठः षोडशांशाधिको भवेत्।

द्वात्रिंशदंशतो मध्यो नवांशोऽभ्युदयं भवेत्॥

ग्रीवापीठं भवेद्भागं त्रिभागेनाण्डकं तथा।

कर्णिके भागतुल्ये च त्रिभागं बीजपूरकम्॥ *(प्रासादमण्डनम् 4, 37-38)*

नागर, लतिन, सान्धार, मिश्रक, विमाननागर, विमान पुष्पक में कलश का उक्त मान प्रशस्त माना गया है जो कि धातुज व रत्नज होता है, रथारूह में दारुज होना चाहिए। शैलज कलश के प्रसंग में इष्टिका के लिए चतुर्थांश रखें तथा इस मान का कलश सर्व कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है-

नागरे लतिने शस्तं सान्धारे मिश्रके तथा॥

विमाननागरे छन्दे विमानपुष्पके तथा।

धातुजे रत्नजे चैव रथारोहे च दारुजे॥

शैलजे च चतुर्थांशमैष्टिकादौ समस्तके।

इत्युक्तं कलशं चैव सर्वकामफलप्रदम्॥ *(कलानिधि 9, 12-14)*

वराट, द्राविड़, भूमिज व विमान प्रासाद में और वलभी आदि समस्त देवालयों में षडांश मान से कलश बनाएं। यह कलश धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की इच्छा रखने वालों की कामनाओं को पूर्ण करता है। कलश को पूर्ण सज्जित कर स्थापित करना चाहिए। ऐसा नागर प्रासाद में कलश का विधान किया गया है-

वराटे द्राविडे चैव भूमिजे च विमानके।

प्रासादस्य तु षष्ठांशे समस्त वलभीषु च॥

तत्षडंशयुतं श्रेष्ठं कनिष्ठं तद्विहीनकम्।

इत्थं मानं समुद्दिष्टं कर्त्तव्यं सर्वकामदम्॥

धर्मार्थकाममोक्षांश्च ईप्सितान् लभते ध्रुवम्।

युक्तालङ्कारयुक् स्थाप्यं कलशं कामरूपकम्॥ *(उपर्युक्त 9, 15-17)*

इसके बाद पुनः गोविन्द ने ऊर्ध्व मान के सम्बन्ध में कहा है कि पूर्वानुसार ही कलश का उत्सेध करना चाहिए। इसके लिए पद्मपत्र बनाएं जो कि त्रिपद की पत्रपत्रिका हो, इसमें एक पद की कर्णिका बनाएं व पाद मान से पद्म करें। इसमें दो भाग का अण्डक बनाएं जो कि वृत्ताकार व सुलक्षण हो। इसकी ग्रीवा को पाद के एकभाग से बनाएं तथा अर्धभाग की अर्क पट्टिका बनाएं। यह विचारणीय है कि लतिन प्रासाद में अर्ध पद्मपत्रिका बनाएं तथा तीन भाग अधिक का बीजपूरक बनाएं जो कि पद्माकृति वाला हो-

अतः ऊर्ध्व पुनश्चाऽन्यं प्रवक्ष्येऽहमनुक्रमम्।

पूर्ववच्च समुत्सेधो विस्तरः पूर्वकल्पितः॥

पद्मपत्रनिभाकारा त्रिपदा पद्मपत्रिका।

कर्णिका पदमेकं तु सपादः पद्मसम्भवः॥

द्विभागं चाण्डकं कुर्याद् वृत्ताकारं सुलक्षणम्।

ग्रीवा पादोनभागा स्याद् भागार्धं चार्कपट्टिका॥

लतिने च प्रकर्त्तव्या अर्धं वै पद्मपत्रिका।

त्रिभागं बीजपूरं च अधिकस्य पद्माकृतिः॥ *(उपर्युक्त 9, 23-26)*

कलश के उच्छ्रेय के सम्बन्ध में पुनः कहा गया है कि पद्मपत्र को तीन भाग से तथा दो भागों से कर्णिका वृत्त बनाएं। पद्म के आगे चार भाग विस्तार की पत्रिका बनाएं। छह भाग का अण्डक तथा मध्य में ग्रीवा को दो भाग रखें। चार भाग की अर्क पट्टी पर साढ़े तीन भाग की पत्रिका रखें। ऐसी रचना पर ढाई भाग का बीजपूर हो तथा उसके नीचे आगे की ओर पद्माकृति हों। पद्म को तिलक से युक्त करें व रत्न, वृत्तादि से युक्त करें। अर्कपट्टिका के आगे उन्नत पद्मपत्र बनाना चाहिए-

उच्छ्रयः कथितश्चेत्थं विस्तरं शृणु साम्प्रताम्।

पद्मपत्रं त्रिभिर्भागैर्द्विभागा कर्णिका वृता॥

पद्माग्रे पत्रिका चैव चतुर्भागा च विस्तरे।

षड्भागमण्डकं चैव ग्रीवा मध्ये द्विभागिका॥

अर्कपट्टी चतुर्भागा सार्धत्र्यंशा च पत्रिका।

सार्धद्वयं बीजपूरं निम्नाग्रे पद्मकाकृति॥

पद्मनिबन्धतिलकं मुक्तरतं सुवृत्तकम्।

V.99360

अर्केऽर्कपट्टिकां कुर्यात् पद्मपत्राग्र उन्नता॥ *(उपर्युक्त 9, 27-30)*

इस प्रकार गोविन्द ने कलश के उदय व विस्तार मान सहित वहां स्थापनीय अन्य स्थापत्य रचनाओं का मानादि पूर्व सूरियों के अनुसार देने का प्रयास किया है।

*10. प्रासाद दण्ड ध्वज प्रमाण-*

कलानिधि के दसवें प्रकाश में प्रासाद के दण्ड व ध्वज के प्रमाण को प्रस्तुत किया गया है। यह विवरण अपराजितपृच्छा के आधार पर ही दिया गया है। इसमें कुल 34 श्लोक हैं। दण्ड, ध्वजा प्रमाण के विषय में पुराणों में भी पर्याप्त वर्णन उपलब्ध होता है। इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम निर्देश उत्तर गुप्तकाल में संपादित विष्णुधर्मोत्तरपुराण में प्राप्त होता है जो अन्यान्य शास्त्रों के ततद् विषयक संकेत का उत्स प्रतीत होता है। कहा गया है कि देवालय निर्माण के बाद वहां पर ध्वज विन्यास किया जाना चाहिए-

ततो ध्वजस्य विन्यासः कर्तव्यः पृथिवीपते।

असुरा वासमिच्छन्ति ध्वजहीन सुरालये॥

ध्वजेन सकलं पापं जनस्य च विनश्यति।

तत्मात्सर्वप्रयत्नेन दद्याद्देवकुले ध्वजम्॥

एवं कृते देवगृहे वृद्धिस्सदा स्यान्न हि संशयोऽत्र।

तस्मात्प्रयत्नेन विधानयुक्तं देवालयं कार्यमदीन-सत्त्व॥ *(विष्णुधर्मोत्तर. 3, 94, 45-47)*

अग्निपुराण के 102वें अध्याय में कहा गया है कि शिखर पर दण्ड आधा अंदर प्रवेश कराना चाहिए- कभागार्धप्रवेशाद्वा यद्वा सर्वार्धवेशनात्। *(102, 2)* इससे लगता है कि प्रारंभ में शिखर पर ध्वजाधार का विधान नहीं था अपितु दण्ड को शिखर में ही निवेशित किया जाता था। इस पुराण के रचनाकाल तक देवालय यदि ईंटों का बना हो

तो उस पर काष्ठ का तथा प्रस्तर निर्मित हो तो उस पर प्रस्तर का दण्ड स्थापित होता था।

वैष्णवादि देवालयों पर कलश को चक्र से सुशोभित किया जाता था-

ऐष्टिके दारुजः शूलः शैलजे धाम्नि शैलजाः ॥

वैष्णवादौ च चक्राढ्यः कुम्भः स्यान्मूर्तिमानतः ।

स च त्रिशूलयुक्तस्तु अग्रचूलाभिधो मतः ॥ *(वही 102, 2-3)*

शिवालयों को अग्रचूर नामक त्रिशूल से युक्त किया जाता था। यह पुराण यह संकेत भी करता है कि उस समय तक जो शिवशास्त्र लिखे जा चुके थे, उनमें शिवालयों पर बीजपूरकयुक्त कलश भी चढ़ाए जाने लगे थे-

ईशशूलः समाख्यातो मूर्ध्नि लिङ्गसमन्वितः ।

बीजपूरकयुक्तो वा शिवशास्त्रेषु तद्विधः ॥ *(वही 102, 4)*

इस समय तक शिखरों पर ऐसी ध्वजाएं भी चढ़ाई जाने लगी थीं जो सम्पूर्ण प्रासाद की पीठ को आवेष्टित कर लेती थी, उन्हें 'महाध्वज' कहा जाता था। ध्वजदण्ड के मानानुसार तीन प्रकार थे-

| क्रम | दण्ड की लम्बाई | प्रकार |
|---|---|---|
| 1. | चौदह हाथ | उत्तम |
| 2. | नौ हाथ | मध्यम |
| 3. | छह हाथ | अधम |

भविष्यपुराण में कहा गया है कि ध्वज का दण्ड सीधा, व्रण रहित व प्रासाद के व्यास के बराबर लम्बा होना चाहिए। दण्ड के मान इस पुराण में पाँच प्रकार के हैं- चार हाथ, आठ, दस, सोलह तथा बीस हाथ। बीस हाथ से अधिक दण्ड को निषिद्ध किया गया है तथा समपर्वों सहित चार अङ्गुल गोलाई आवश्यक बताई गई है। *(भविष्यपुराण ब्राह्मपर्व 134, 1-5)*

अग्निपुराण के रचनाकाल तक ध्वजदण्ड को बाँस और शालजा या सागवान पेड़ की लकड़ी का बनाया जाने लगा था। इसकी स्थापना के समय शकुन की मान्यता भी प्रचलित हो चुकी थी। मान्यता थी कि यदि आरोपण के बाद ध्वज टूट जाए तो राजा या यजमानों का अनिष्ठ होता है, इसलिए इसकी शान्ति के लिए बहुरूपेण मन्त्र का पाठ

किया जाता था, द्वारपालों का पूजन व तर्पण किया जाता था-

अयमारोप्यमाणस्तु भङ्गमायाति वै यदि।

राज्ञोऽनिष्टं विजानीयाद्यजमानस्य वा तथा॥

मन्त्रेण बहुरूपेण पूर्ववच्छान्तिमाचरेत्।

द्वारपालादिपूजां च मन्त्राणां तर्पणं तथा॥

विधाय चूलकं दण्डं स्नापयेदस्त्रमन्त्रतः।

अनेनवोक्तमन्त्रेण ध्वजं संप्रोक्ष्य देशिकः॥ *(अग्निपुराण 102, 8-10)*

इस समय तक ध्वज के लिए विशेष अनुष्ठान प्रचलित हो चुके थे। पुराण संकेतित 'फडन्तसंहिता' में इसका विधि-निर्देश किया गया था। स्थापित किए जाने वाले दण्ड में आत्म तत्त्व का, विद्यातत्त्व का सद्योजात आदि पांच मुखों से न्यास किया जाता था, मन्त्रज्ञ गुरुध्वज तथा ध्वजाग्रभाग में सन्निधीकरण के लिए उक्त संहिता मन्त्रों से प्रत्यक भाग में होम करता। पुराणोक्त अस्त्रयाग विधि में ध्वज के संस्कार की विधि भी दी गई है।

प्रतिष्ठारोहण के समय शिखरोक्त अंगों में मञ्जरी वेदिका पर विद्यादि चार तत्त्वों, कण्ठ में रुद्र सहित माया व आमलसार पर विद्याओं की भावना का निर्देश दिया गया है। कलश पर बिन्दु, जटाजूट, त्रिशूल व चन्द्रार्ध की कल्पना करने को कहा गया है। दण्ड में नाद, ध्वज में कुण्डली शक्ति की कल्पना का निर्देश है-

मञ्जरी वेदिकायां च विद्यादिकचतुष्टयम्॥

कण्ठे मायां सरुद्रां च विद्याश्चामलसारके।

कलशे चेश्वरं बिन्दुं विद्येश्वरसमन्वितम्॥

जटाजूटं च तं विद्याच्छूलं चन्द्रार्धरूपकम्।

शक्तित्रयं च तत्रैव दण्डे नादं विभाव्य च॥

ध्वजे च कुण्डलीशक्तिमिति धाम्नि विभावयेत्। *(वही 102, 22-24)*

भविष्यपुराण में ध्वज का निर्माण कराकर अधिवासन आवश्यक माना गया है। ध्वज के लक्षण के अनुसार वेदी का निर्माण करने को कहा है जिसके मध्य भाग में ध्वज को खड़ाकर उसकी नानोपचारों से पूजा करने व पुष्पमाला धारण करवा, दिक्पालों को बलि देकर एक रात अधिवासन का निर्देश दिया गया है। दूसरे दिन शुभ मुहूर्त में

स्वस्तिवाचन आदि मांगलिक कृत्यों के संपादन के साथ ध्वज को आरूढ़ करने को कहा है। इसका पुण्य भी बताया गया है कि ध्वजारोहण से कर्ता की सम्पति की सदैव वृद्धि होती है, वह परम गति को प्राप्त करता है। नरसिंहपुराण में कहा गया है कि विष्णु को ध्वजा चढ़ाने वाला ध्वजामण्डित जगमगाते हुए विमान पर आरूढ़ हो, अप्सराओं से सेवित होकर विष्णुलोक को प्राप्त करता है-

दद्यात्सोऽपि ध्वजाकीर्णविमानेन विराजिता।

विष्णुलोकमवाप्नोति सेव्यमानोऽप्सरोगणैः॥ *(नरसिंहपुराण 34, 39)*

इस प्रकार भविष्यपुराण में प्रतिष्ठा के लिए शुभ मुहूर्त का निर्देश भी है तथा इसके लिए स्थिर लग्न को उपयुक्त माना है। इसी पुराण में प्रतिमादि प्रतिष्ठा के लिए प्रतिपदा, द्वितीया, चतुर्थी, पञ्चमी, दशमी, त्रयोदशी तथा पूर्णिमा तिथियां प्रशस्त कही गई है और चंद्रमा, बुध, गुरु व शुक्र के उदित व अनुकूल होने पर प्रतिष्ठा शुभ और तीनों उत्तरा, रेवती, अश्विनी, रोहिणी, हस्त, पुनर्वसु, पुष्य, श्रवण, भरणी, नक्षत्र प्रशस्त स्वीकारे गए हैं। *(भविष्यपुराण ब्राह्मपर्व पूर्वोक्त)*

कलानिधि के दसवें अध्याय में प्रासाद के ध्वजलक्षण के सम्बन्ध में कहा गया है कि दण्ड की ऊंचाई व पताका, मण्डकी के अनुसार ही उनका नामकरण किया जाता है जिसके अनुसार वे जया, विजया, वेणुक, घण्टा, चामर होते हैं जो सभी कामनाओं को पूर्ण करते हैं-

दण्डोच्छ्रयप्रमाणं च पताकामण्डकीं तथा॥

जया च विजया चैव वेणुकं घण्टचामरम्।

कलशोर्ध्वे समाख्यातं कर्त्तव्यं सर्वकामदम्॥ *(कलानिधि 10, 1-2)*

ज्ञानप्रकाश दीपार्णव में स्पष्ट किया गया है कि ध्वजदण्ड की लम्बाई के पाँच प्रमाण होते हैं- 1. प्रासाद की कटि के विस्तार के बराबर 2. चतुष्की पद के दो स्तम्भ के विस्तार तुल्य 3. गर्भभित्ति के विस्तार के बराबद 4. रेखाएँ हो उतना 5. प्रासाद के शिखर के मूलकर्ण के विस्तार के बराबर। इन पांचों प्रकारों के अलग-अलग नाम होते हैं-

प्रासादकटिविस्तारंचतुष्कीस्तम्भविस्तरात्।

गर्भभित्तिसमं दैर्ध्यं क्वचित् कर्णस्य विस्तरम्॥ 92॥

विभक्ते चैव प्रासादे शिखरविस्तृते: समम्।

ध्वजवंशस्य दीर्धत्व मया प्रोक्तं मतान्तरे॥ *(दीपार्णव 9, 92-93)*

दीपार्णव में लम्बाई के अनुसार ध्वजदण्ड के नाम निम्न बताए गए हैं- 1. विजय 2. शक्तिरूप 3. सुप्रभ 4. जयावह और 5. विश्वरूप-

विजय: शक्तिरूपश्च सुप्रभश्च जयावह:।

पञ्चमी विश्वरूपस्तु प्रमाणं तस्य कल्पयेत्॥ *(उपर्युक्त 94)*

गोविन्द ने स्पष्ट कियां है कि प्रासाद के पृथुत्व मान से ध्वजादण्ड का मान रखना चाहिए। इसमें मध्यम दण्ड मोटाई का दशमांश तथा कनिष्ठ का पञ्चमांश रखें। मूलरेखा के प्रमाण से ज्येष्ठ दण्डमान रखना चाहिए। इसके अनुसार द्वादशांश मध्यम मान तथा उससे आधा या छठांश कनिष्ठ मान होता है-

प्रासादपृथुमानेन ध्वजादण्डं तु कारयेत्।

मध्यमं दशमांशोन कनिष्ठं चोनपञ्चमम्॥ 6॥

मूलरेखाप्रमाणेन ज्येष्ठ: स्याद् दण्डसम्भव:।

मध्यमं द्वादशांशोन षडंशोनं कनिष्ठकम्॥ 7॥ *(कलानिधि 10, 6-7)*

गोविन्द का अपराजित के अनुसार मत है कि ध्वजाधार, स्तम्भिका को कलशादि से विभूषित करना चाहिए। बांस के आधार को वज्रबन्ध से युक्त करें तथा उस पर यथेष्ट वेष्टन भी लगाएं। गोविन्द के अनुसार नीचे लगने वाली शिला का उदयमान ऊपर के कलश के अन्त के अनुसार रखें तथा तृतीयांश ध्वजादण्ड का प्रमाण जाने। यदि यह अष्टमांश हीन हो तो वह मध्यम तथा शुभ होता है जबकि उससे कम कनिष्ठ मान होता है जबकि पादानुसार ज्येष्ठदण्डमान रखना वर्जित कहा गया है-

ध्वजाधरस्तम्भिका च कलशैश्च विभूषितम्।

वंशाधारो वज्रबन्धो वंशाना वेष्टनादिकम्॥

आदिशिलोद्भवं मानं ऊर्ध्वे च कलशान्तिके।

तृतीयांशे प्रकर्त्तव्यो ध्वजादण्ड: प्रमाणत:॥

अष्टमांशे ततो हीने मध्यमं शुभलक्षणम्।

कनिष्ठं तद्भवेद् दण्डं ज्येष्ठत: पादवर्जितम्॥ *(उपर्युक्त 10, 3-5)*

दण्डमान के सम्बन्ध में स्पष्ट किया गया है कि एक हाथ का प्रासाद हो तो एक अङ्गुलमान का दण्ड रखना चाहिए तथा पचास हाथ तक क्रमशः आधा-आधा अङ्गुल दण्ड को बढ़ाते जाना चाहिए। प्रासाद की मोटाई के अनुसार ही दण्ड की गोलाई व पर्वों को रखा जाना चाहिए। दण्ड में पर्वों को एक से लेकर पच्चीस संख्या तक रखा जा सकता है-

एकहस्ते तु प्रासादे दण्डं पादोनमङ्गुलम्।

अर्धाङ्गुला भवेद्वृद्धिः पञ्चाशद्धस्तकावधि॥ 8॥

पृथुत्वं च प्रकर्त्तव्यं सुवृत्तं पर्वकान्वितम्।

एकादिपर्वतः कार्यः पञ्चविंशतिकावधि॥ 9॥ *(उपर्युक्त 10, 8-9)*

इस पर्व क्रम से ध्वजदण्डों के जयन्तादि नामों का भी गोविन्द ने भी इस प्रकाश में उल्लेख किया है-

विषमपर्वोद्गमाश्च शस्ताः स्वस्वाभिधानतः।

त्रयोदश स्युर्दण्डा वै पर्वभेदैस्तथोत्तमाः॥

जयन्तः शत्रुमर्दनः पिङ्गलो नाम सम्भवः।

श्रीमुखश्च तथानन्दस्त्रिदेवो दिव्यशेखरः॥

कालदण्डो महाकूटः सूर्याख्यः कमलोद्भवः।

विश्वकर्मा समाख्याताः कर्त्तव्याः सर्वकामदाः॥ *(उपर्युक्त 10, 10-12)*

एक पर्ववाला दण्ड जयन्त, तीन पर्ववाला शत्रुमर्दन, पाँच पर्ववाला पिङ्गल, सात पर्ववाला सम्भव, नौ पर्ववाला श्रीमुख, ग्यारह पर्ववाला नन्द, तेरह पर्ववाला त्रिदेव, पन्द्रह पर्ववाला दिव्यशेखर, सत्रह पर्ववाला कालदण्ड, उन्नीस पर्ववाला महोत्कट, इक्कीस पर्ववाला सूर्य, तेबीस पर्ववाला कमल और पच्चीस पर्ववाला विश्वकर्मा संज्ञक कहा गया है। इनमें से विषम पर्व वाले ध्वजादण्ड शुभ होते हैं तथा नामानुसार शुभशुभ फल देने वाले होते हैं-

जयन्तस्त्वेकपर्वश्च त्रिपर्वः शत्रुमर्दनः।

पिङ्गलः पञ्चपर्वश्च सप्तपर्वश्च सम्भवः॥

श्रीमुखो नवपर्वश्च आनन्दो रुद्रपर्वकः।

त्रिदेवो विश्वपर्वश्च तिभिर्दिव्यशेखरः ॥

मुनीन्दुभिः कालदण्डो महोत्कटो नवेन्दुतः ।

सूर्याख्यस्त्वेकविंशत्या कमलो वह्निनेत्रतः ॥

तत्पर्वो विश्वकर्मा दण्डनामानि पर्वतः ।

शस्ताशस्तत्वमेतेषामभिधानगुणोद्भवम्॥ *(उपर्युक्त 10, 13-16)*

ध्वजा में मण्डकी या पाटली को अर्धचन्द्राकार बनाने का निर्देश है। वह एक हाथ से पाँच हाथ तक के लम्बे ध्वजादण्ड के विस्तार से सात गुणी, छह से बारह हाथ लम्बे ध्वजादण्ड के विस्तार से छह गुणी और तेरह से पचास हाथ तक के ध्वजादण्ड पर पाँच गुणी मण्डकी की रचना करनी चाहिए। लम्बाई का तीसरा भाग विस्तार रखें। यह सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली कही गई है। अर्धचन्द्राकृति के उभय पार्श्व में गगारकों की रचना करें व दण्ड के ऊपर कलश रखें और मण्डकी के दोनों पार्श्व में लम्बी घण्टड़िया स्थापित करना चाहिए। इस प्रकार से बने दण्ड पर लगी पताका शत्रुपक्ष का क्षय करने वाली कही गई है-

मण्डकी तस्य कर्त्तव्या अर्धचन्द्राकृतिस्तथा।

पृथुदण्डसप्तगुणा हस्तादि पञ्चकावधि॥

षड्गुणा च द्वादशान्तं शेषाः पञ्चगुणास्तथा।

तथा त्रिभागविस्ताराः कर्त्तव्याः सर्वकामदाः ॥

अर्धचन्द्राकृति चैव पक्षे कुर्याद् गगारकम्।

वंशोर्ध्वे कलशं चैव पक्षे घण्टाप्रलम्बनम्॥

चामरैर्भूषितं कुर्याद् घण्टा पक्षे विचक्षणः।

पताका पापहारी च शत्रुपक्षक्षयंकरी॥ *(उपर्युक्त 10, 17-20)*

दण्ड के लिए बांस के साथ ही किस जाति के काष्ठ का चयन किया जाए, इस सम्बन्ध में देववास्तुविषयक ग्रन्थों में कई वृक्षों का नाम है। दीपार्णव में सीसम, खेर, महुआ के नाम गिनाए गए हैं-

वंशमयोऽपि कर्त्तव्यो दृढदारुमयोऽपि च।

शिंशपः खदिरश्चैव अर्जुनो मधुकस्तथा॥

सुवृत्तः सारदारुश्च ग्रंथिकोटरवर्जितः ॥ *(दीपार्णव 9, 97)*

गोविन्द ने इसके लिए सार वृक्ष के काष्ठ को उपयुक्त माना है। इसके लिए काष्ठ निर्व्रण हो, सुदृढ़ हो तथा जला हुआ नहीं हो। काष्ठ एक ही हो या समग्र हो। दण्ड को विषम पर्व से युक्त रखें तथा उस पर पताका को दण्ड के समाकार ही लम्बा बनाएं। पताका को दिव्य वस्त्रों से बनाना चाहिए व अर्धचन्द्र, किङ्किणी, घण्टिका, घुंघरु आदि से युक्त करना चाहिए-

वंशमयस्तु कर्त्तव्यः सारदारुसमन्वितः।

निर्व्रणः सुदृढः कार्यो ज्वालादोषविवर्जितः ॥

समग्रन्थिर्विधातव्यो विषमपर्वसमन्वितः।

ध्वजादण्डप्रमाणेन पताकां च प्रलम्बयेत् ॥

पृथुत्वमष्टमांशेन त्रिशाखाग्रविभूषितम्।

शिखाः पञ्च कर्त्तव्या ध्वाजाग्रे च विचक्षणैः ॥

दिव्यवस्त्रपताका च अर्धचन्द्रैश्च किंकिणीः।

... ... ... ... ... ... घुर्घुरान्वितम् ॥ *(कलानिधि 10, 21-24)*

ध्वजा के लिए आधार महत्वपूर्ण है। वास्तुग्रन्थों में ध्वजाधार या स्तम्भवेध के लिए विभिन्न मत मिलते हैं। ज्ञानप्रकाशदीपार्णव में कहा गया है कि शिखर की रेखा के उदय के छह भाग करें और उनमें से ऊपर के छठे भाग के पुनः चार भाग कर उनमें से नीचे का एक भाग छोड़, उसके ऊपर के भाग में दांयें प्रतिरथ में ध्वजाधार बनाना चाहिए। गणित इस प्रकार है कि रेखा का चौबीस भाग कर ऊपर के बाइसवें भाग में ध्वजाधार की संरचना करनी चाहिए-

रेखायाः षष्ठमे भागे तदंशे पादवर्जिते।

ध्वजाधास्तु कर्त्तव्यः प्रतिरथे च दक्षिणे ॥ *(ज्ञानप्रकाशदीपार्णव 9, 70)*

इसी प्रकार गोविन्द का मत है कि शिखर की रेखा या कोण के ऊपर अर्ध भाग का तीन भाग करें। ऊपर के तीसरे भाग का फिर चार भाग करें और नीचे से एक भाग छोड़कर उसके ऊपर के भाग में स्थम्भवेध बनाएं। यह ईशान अथवा नैर्ऋत्य कोण में प्रासाद के पृष्ठभाग में प्रतिरथ में भित्ति के छठे भाग के बराबर मोटा बनाना चाहिए-

रेखाध त्रिभागोर्ध्वं सूत्रांशे (तदंशे) पादवर्जितम्।

ध्वजोन्नतिस्तु कर्त्तव्या ईशाने नैर्ऋतेऽथवा ॥

प्रासादपृष्ठदेशे तु प्रतिरथे च दक्षिणे।

स्तम्भवेधस्तु कर्त्तव्यो भित्तेरष्टमांशके(भित्याश्च षष्ठमांशके) ॥ *(वही 10, 25-26)*

ध्वजा पर देवादि के अङ्कन के सम्बन्ध में कहा गया है कि देवालय जिस देवता का हो, उसका वाहन उस पर बनाना चाहिए। ध्वजा पर यह अङ्कन उसके मुख प्रमाण के अनुसार ही बनाना चाहिए। जिस देवता का प्रासाद हो, उसी के अनुसार मुखबिम्बमान से उस पद देवता का आयुध भी बनाना चाहिए-

निलयो यस्य देवस्य तस्य देवस्य वाहनम्।

ध्वजा तु कारयेच्चैव मुखबिम्बप्रमाणतः ॥

यस्य यस्य हि देवस्य प्रासाद आलयो हि सः।

आयुधं तस्य देवस्य मुखबिम्बप्रमाणतः ॥ *(उपर्युक्त 10, 27-28)*

इस प्रकार कलानिधि के दसवें प्रकाश में ध्वजादण्ड का मान, प्रमाण आदि का वर्णन किया गया है। शिखर विधान में इस निर्णय पर अपराजित के मानानुसार यह प्राचीनतम मत है जिसे गोविन्द से अन्तिम माना है।

*11. ध्वजारोहण तथा प्रासाद माहात्म्य-*

ध्वजारोहण तथा प्रासाद निर्माण की महिमा इस ग्रन्थ का अन्तिम अध्याय है। एक प्रकार से शिखर विधान के उपसंहार में इस अध्याय या प्रकाश को लिखा गया है। ग्रन्थों में इष्टापूर्तकर्म के अन्तर्गत देवालय, जलाश्रय आदि के निर्माण की विस्तृत महिमा मिलती है।

पुराणों में भी शिखरविधान व ध्वजारोहण के फलाफल का वर्णन मिलता है। ऐसा जान पड़ता है कि मेरु पर्वत की परिकल्पना से ही शिवादि देवताओं की प्रतिष्ठा के लिए नाना शिखर विधानवाले देवालयों का विकास हुआ और उनके लिए विविध छन्दों का निरूपण हुआ, रेखाओं की कल्पना हुई और मांगलिक चिह्नों से समन्वित शिखर रचना का विकास हुआ। देवी पुराण, अग्नि, गरुड तथा भविष्यादि पुराणों में शिखर व ध्वजारोहण अथवा ध्वजारोपण के विधान का वर्णन उपलब्ध होता है। इन सभी पुराणों का रचनाकाल सातवीं से दसवीं सदी तक माना जाता है, इसलिए ऐसा

जान पड़ता है कि उत्तर गुप्तकाल या राजपूतकाल में इस परम्परा को शास्त्रीय आधार दिया गया।

यह मान्यता भी प्रतिपादित की गई कि देवालय को कभी ध्वज रहित नहीं रखा जाना चाहिए। जिस मंदिर पर ध्वज नहीं होता, वहां असुरगण निवास करने लगते हैं। इसी प्रकार ध्वजादि के लिए देवासुर संग्राम को आधार मानते हुए यह कल्पित हुआ कि पूर्वकाल में जब देवासुरों में घमासान हुआ तब देवताओं ने अपने-अपने रथों पर जिन-जिन चिह्नों की कल्पना की, वे ही उनके ध्वज कहलाए। इसलिए देवताओं को सूचित करने वाले चिह्नों से अंकित ध्वज ही उक्त देवालयों पर स्थापित करने का निर्देश दिया गया। दण्ड के लिए धातु एवं रंग का भी इस प्रकार निर्धारण किया गया। *(भविष्यपुराण ब्राह्मपर्व 138, 2-5)* नरसिंहपुराण से ज्ञात होता है कि उस समय, लगभग नवीं सदी तक विष्णु मंदिरों पर गरुडचिह्न से युक्त ध्वजाएं आरोहित की जाती थी-ध्वजं तु विष्णवे यस्तु गरुडेन समन्वितम्॥ *(34, 38)*

मण्डन ने कहा है कि पुर, नगर, कोट, रथ, हर्म्य, वापी, कूप, जलाश्रय आदि पर सुन्दर ध्वजाएं होनी चाहिए। जिन सुरालयों पर ध्वजा नहीं होती वहां पर असुरगण निवास करने की इच्छा रखते हैं-

पुरे च नगरे कोट्टे रथे राजगृहे तथा।

वापीकूपतडागेषु ध्वजाः कार्याः सुशोभनाः॥

निष्पन्नं शिखरं दृष्ट्वा ध्वजहीने सुरालये।

असुरा वासमिच्छन्ति ध्वजहीनं न कारयेत्॥ *(प्रासादमण्डनम् 4, 47-48)*

ध्वजाहीन देवालयों के सम्बन्ध में यही मत अग्नि, देवी प्रभृति पुराणों तथा दीपार्णवकार का भी है-

निष्पन्नं शिखरं दृष्ट्वा ध्वजहीनं न कारयेत्।

असुरा वासमिच्छन्ति ध्वजहीने सुरालये॥ *(दीपार्णव 9, 104)*

इसी प्रकार विश्वकर्मीय वास्तुविद्या के शिखर लक्षणाधिकार में कहा गया है कि ध्वजादण्ड की मर्कटिका के बराबर दण्ड की पाँचवीं भाग चौड़ाई से ध्वजा का निर्माण करना चाहिए। इस पताका के नाम हैं- विजय, वैजयन्ती, शक्तिरूप, अपराजिता तथा सुरूपा। दिव्यवस्त्र से पञ्चरंगी ध्वजा का निर्माण करना चाहिए। देवालय के निर्माण के

उपरांत वहां पताकारोहण से पुण्य मिलता है। अन्यथा वहां पर दुष्टात्माओं का आवास हो जाता है–

विजया वैजयन्ती च शक्तिरूपा तथैव च।
अपराजिताः सुरूपाः पताका परिकीर्तिताः॥
दिव्यवस्त्र पताका च पञ्चवर्णक संयुता।
तारकैरर्धचन्द्रश्च किङ्किणी घुर्घुरान्विता॥
निष्पन्नं शिखरं दृष्ट्वा ध्वजहीनं न धारयेत्।
असुरावासमिच्छन्ति ध्वजहीन सुरालये॥
वाताहुनं पताकानां फोफारो यत्र दृश्यते।
तत कृतं निष्फलं यान्ति पुण्यं तस्य न विद्यते॥
तस्तात्सर्व प्रयत्नेन ध्वजहीनं न धारयेत्।
इदशंकुरुते यस्तु स्थापकः स्थपक सदा॥
राज्यवृद्धिः स्थानवृद्धिः प्रजा सौख्येन नंदति। *(वास्तुविद्या 8, 68–73)*

कलानिधि में इसके माहात्म्य स्वरूप अपराजितपृच्छा से सम्पूर्ण अध्याय उद्धृत किया गया है। देवालयों पर ध्वजा के माहात्म्य के सन्दर्भ में कहा गया है कि पाताल, भूधरादि लोकों सहित द्वीप व सागरों में धर्मस्थान को बनाया जाना चाहिए। इससे तीनों ही लोकों में सिद्धि होती है। जलाश्रयों व देवकुल के निर्माण से यश की प्राप्ति होती है। जिस देवालय पर ध्वजादण्ड का आरोहण किया जाता है, उसके वंश का वर्धन होता है। पताका पापों का हरण तथा शत्रुपक्ष का क्षय करती है–

पातालभूधरा लोकास्तथा वै द्वीपसागराः।
यंत्र निवासात्मकानां धर्मस्थामनोद्भवः॥
त्रीणि कुर्यादूर्ध्वतश्च अधस्तात् त्रीणी एव च।
स्वर्गारिततडागानि यशो देवकुलं कुलम्॥
यत्र देवकुलाग्रे च ध्वजावंशश्च वंशकृत्।
पताका पापहारी च शत्रुपक्षक्षयंकरी॥ *(कलानिधि 11, 1–3)*

शिखर पर ध्वजादण्ड के सन्दर्भ में भुवनदेव ने स्पष्ट किया है कि पञ्चध्वजाएं पञ्चात्मा, पञ्चभूत, पञ्चतत्त्व, पञ्चेन्द्रिय व पञ्चलोकपाल तुल्य कही गई है, अर्थात् देवालय में उसका होना तत्त्व की भांति महत्त्वपूर्ण है। पाँचों ही अङ्गों से परिपूर्ण होकर वह कुल में धर्म का लाभ प्रदान करती है-

पञ्चात्मपञ्चभूतानि पञ्चतत्त्वेन्द्रियाणि च।

पञ्चैव लोकपालाः स्युः पताकाग्रे शिखास्तथा॥

पञ्चभिः पञ्चभिः पाल्यं धर्मो यत्र कुले भवेत्।

पञ्चैः स्यात् हम्यमानैः धर्मारितत्कालारिजम् ?॥ *(उपर्युक्त 11, 4-5)*

इसी प्रकार ध्वजारोहण से पितर संतुष्ट होते हैं, इससे अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। इस प्रकार के कार्य को अतीव शुभ कहा गया है। इससे देवालय निर्माता व शिल्पाचार्य दोनों ही शिव का सान्निध्य प्राप्त करते हैं जहां कि कैलास के सदृश पुरी है। वहां दिव्यरत्न, काञ्चनादि द्रव्यों को प्राप्त करते हैं तथा सात करोड़ गणों के साथ चन्द्र व तारों के रहने तक निवास होता है। ध्वजारोहण का यही पुण्य प्रभाव है कि मेवाड़ क्षेत्र में पीपाक्षत्रिय समाज, भावसार, सालवी-सहस्त्रबाहु, पूर्बिया कलाल, लौहार, सुथार आदि समाजों की ओर से विभिन्न मन्दिरों पर ध्वजारोहण को पर्व प्रकार से मनाया जाता है। एकलिंगजी, हस्तिमाता, सारणेश्वर महादेव आदि मंदिरों पर यह परम्परा देखने को मिलती है। श्रीनाथजी के मन्दिर पर सात ध्वजाएं फहराई जाती हैं।

अपराजितकार ने 'समस्तध्वजानिर्णय' संज्ञक अध्याय भी लिखा है जिसमें 33 श्लोकों में वापी, कूप, तडाग, कुण्ड, पुष्कर, पुर, नगर, कोट, राजगृह, रथादि पर ध्वजा फहराने का निर्देश किया गया है-

वापीकूपतडागेषु कुण्डे च पुष्कराह्वये।

ध्वजास्तत्रापि कर्तव्याः स्थानमानं च लक्षितम्॥

पुरे च नगरे चैव कोटे, कुर्याद् ध्वजारुहान्।

राजगृहे रथे वापि ध्वजास्तत्राऽपि कारयेत्॥

कटकादेश्च भवने महाराझ्या ध्वजोद्भवः।

यत्र राजा ध्वजा तत्र अनेकाकाररूपिणी॥ *(अपराजित. 145, 1-2)*

सूत्रधारों व अन्य शिल्पकारों को इसलिए यजमानों का हितैषी होकर प्रासादादि

को सुधा या चूनादि के लेपन से युक्त देवालयों का निर्माण करना चाहिए-

यजमानशिल्प्याचार्याः शिवसान्निध्यगाः सदा।
अधस्ताच्च पुरे रम्ये कैलाससदृशे तथा॥
दिव्यरत्नमये चैव प्राकारैः काञ्चनैर्युते।
सप्तकोटिगणैर्युक्ताश्चन्द्रार्कतारकावधि॥
सूत्रकारापवरका यजमानहितैषिणः।
सुधया रचनालेपे यान्ति ते परमा गतिम्॥ *(उपर्युक्त 11, 21-23)*

अन्यत्र कहा गया है कि देवालयों के निर्माण और उनमें देवताओं की प्रतिष्ठा के साथ ही वहां पर चित्रादि विविध कार्यों को किए जाने से व्यक्ति उसी देवता के लोक को प्राप्त करता है। जो फल यज्ञ, तप, दान, तीर्थ, वेदादि के पठन-पाठन से मिलता है, उससे कोटिगुणा अधिक फल प्रासाद के निर्माण व वहां पर देव प्रतिष्ठा से सुलभ होता है। वहां मनोहर शाला का निर्माण कराना चाहिए, सर्वाङ्गोचित प्रासाद से कोटि-कोटि पुण्य की प्राप्ति होती है-

कृत्वा देवकुलं शुभ्रं प्रतिष्ठाप्य च देवताम्।
विधाय विविधं चित्रं तल्लोकं विदन्ति ध्रुवम्॥
सर्वयज्ञतपोदानतीर्थवेदेषु यत्फलम्।
तत्फलं कोटिगुणितं लभेद्देवःप्रतिष्ठया॥
कजजं स्थाप्येद्यस्तु कृत्वा शाला मनोरमाम्।
सर्वाङ्गोपचितां पुण्यां पुण्यं कोटिगुणं भवेत्॥ *(उपर्युक्त 11, 24-26)*

मण्डन *(प्रासादमण्डनम् 1, 33-35)* ने कहा है कि अपनी शक्ति के अनुसार काष्ठ, मिट्टी, ईंट, पाषाण, धातु, रत्नादि से देवायतन का निर्माण करना चाहिए। किसी भी पदार्थ का देवालय बनाने से धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति होती है। तृण का देवालय बनाने से कोटिगुणा, मिट्टी के देवालय से दस कोटिगुना, ईंटों से सौ कोटिगुना तथा पाषाण का देवालय बनाने से अनन्त कोटिगुणा फल मिलता है-

स्वशक्त्या काष्ठमृदिष्टकाशैलधातुरत्नजम्।
देवतायतनं कुर्याद् धर्मार्थकाममोक्षदम्॥

कोटिघ्नं तृणजे पुण्यं मृन्मये दशसङ्गुणम्।

ऐष्टके शतकोटिघ्नं शैलेऽनन्तं फलं स्मृतम्॥ *(उपर्युक्त 11, 27-28)*

ग्रन्थ के अन्त में सूत्रधार गोविन्द ने अपना संक्षिप्त परिचय देते हुए अपने को महाराणा रायमल्ल के राज्याश्रय में रहकर इस ग्रन्थ की रचना करने वाला बताया है।

# चक्र 1 त्रिखण्डारेखा

| क्रम संख्या | चार की संज्ञा | रेखा की संज्ञा | कुल कला | प्रथमखंड की कला | द्वितीयखंड की कला | तृतीयखंड की कला |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | समचार<br>8 × 1= 8 | शशिनी | 24 | 8 | 8 | 8 |
| 2. | सपादचार<br>8 × 1। = 8 | शीतला | 27 | 8 | 9 | 10 |
| 3. | सार्द्धचार<br>8 × 1॥ = 12 | सौम्या | 30 | 8 | 10 | 12 |
| 4. | पादोनद्वयचार<br>8 × 1॥। = 14 | शान्ता | 33 | 8 | 11 | 14 |
| 5. | द्विगुणचार<br>8 × 2 = 16 | मनोरमा | 36 | 8 | 12 | 16 |
| 6. | सपादद्विगुणचार<br>8 × 2। = 18 | शुभा (उमा) | 39 | 8 | 13 | 18 |
| 7. | सार्द्धद्विगुणचार<br>8 × 2॥ = 20 | मनोभवा | 42 | 8 | 14 | 20 |
| 8. | पादोनत्रयचार<br>8 × 2॥। = 22 | वीरा | 45 | 8 | 15 | 22 |
| 9. | त्रयचार<br>8 × 3 = 24 | कुमुदा | 48 | 8 | 16 | 24 |
| 10. | पदाधिकत्रयचार<br>8 × 3। = 26 | पद्मशेखरा | 51 | 8 | 17 | 26 |
| 11. | सार्द्धत्रयचार<br>8 × 3॥ = 28 | लतिना (ललिता) | 54 | 8 | 18 | 28 |
| 12. | पादोनचतुष्कचार<br>8 × 3॥। = 30 | लीलावती | 57 | 8 | 19 | 30 |
| 13. | चतुर्गुणचार<br>8 × 4 = 14 | त्रिदशा | 60 | 8 | 20 | 32 |
| 14. | सपादचतुष्कचार<br>8 × 4। = 34 | पूर्णमण्डला | 63 | 8 | 21 | 34 |
| 15. | सार्द्धचतुष्कचार<br>8 × 4॥ = 36 | पूर्णभद्रा | 66 | 8 | 22 | 36 |
| 16. | पादोनपञ्चकचार<br>8 × 4॥। = 38 | भद्राङ्गी | 69 | 8 | 23 | 38 |

## चक्र 2 चतुष्खण्डारेखा

| क्रम सं. | चार की संज्ञा | रेखा की संज्ञा | कुल कला | प्रथमखंड की कला | द्वितीयखंड की कला | तृतीयखंड की कला | चतुर्थखंड की कला |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | समचार<br>12 × 1 = 12 | शान्तिनी | 48 | 12 | 12 | 12 | 12 |
| 2. | सपादचार<br>12 × 1। = 15 | शुभा | 54 | 12 | 13 | 14 | 15 |
| 3. | सार्द्धचार<br>12 × 1॥ = 18 | शान्ता | 60 | 12 | 14 | 16 | 18 |
| 4. | पादोनद्वयचार<br>12 × 1॥। = 21 | त्रिदिवा | 66 | 12 | 15 | 18 | 21 |
| 5. | द्विगुणचार<br>12 × 2 = 24 | देवदुर्लभा | 72 | 12 | 16 | 20 | 24 |
| 6. | सपादद्विगुणचार<br>12 × 2। = 27 | वीभत्सा | 78 | 12 | 17 | 22 | 27 |
| 7. | सार्द्धद्विगुणचार<br>12 × 2॥ = 30 | शिवा | 84 | 12 | 18 | 24 | 30 |
| 8. | पादोनत्रयचार<br>12 × 2॥। = 33 | सौम्या | 90 | 12 | 19 | 26 | 33 |
| 9. | त्रयचार<br>12 × 3 = 36 | वीरभद्रा | 96 | 12 | 20 | 28 | 36 |
| 10. | पदाधिकत्रयचार<br>12 × 3। = 39 | नारायणी | 102 | 12 | 21 | 30 | 39 |
| 11. | सार्द्धत्रयचार<br>12 × 3॥ = 42 | सुषिरा | 108 | 12 | 22 | 32 | 42 |
| 12. | पादोनचतुष्कचार<br>12 × 3॥। = 45 | शेखरा | 114 | 12 | 23 | 34 | 45 |
| 13. | चतुर्गुणचार<br>12 × 4 = 48 | रम्या | 120 | 12 | 24 | 36 | 48 |
| 14. | सपादचतुष्कचार<br>12 × 4। = 51 | पूर्णा | 126 | 12 | 25 | 38 | 51 |
| 15. | सार्द्धचतुष्कचार<br>12 × 4॥ = 54 | पूर्णभद्रिका | 132 | 12 | 26 | 40 | 54 |
| 16. | पादोनपञ्चकचार<br>12 × 4॥। = 57 | विजया | 138 | 12 | 27 | 42 | 57 |

## चक्र 3 पञ्चखण्डारेखा

| क्रम सं. | चार की संज्ञा | रेखा की संज्ञा | कुल कला | प्रथमखंड की कला | द्वितीयखंड की कला | तृतीयखंड की कला | चतुर्थखंड की कला | पञ्चमखंड की कला |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | समचार 16 × 1 = 16 | लक्ष्मिणी | 80 | 16 | 16 | 16 | 16 | 16 |
| 2. | सपादचार 16 × 1। = 20 | श्री | 90 | 16 | 17 | 18 | 19 | 20 |
| 3. | सार्द्धचार 16 × 1॥ = 24 | सम्भवा | 100 | 16 | 18 | 20 | 22 | 24 |
| 4. | पादोनद्वयचार 16 × 1॥। = 28 | विधूरा | 110 | 16 | 19 | 22 | 25 | 28 |
| 5. | द्विगुणचार 16 × 2 = 32 | पूर्णमंडला | 120 | 16 | 20 | 24 | 28 | 32 |
| 6. | सपादद्विगुणचार 16 × 2। = 36 | सुगन्धा | 130 | 16 | 21 | 26 | 31 | 36 |
| 7. | सार्द्धद्विगुणचार 16 × 2॥ = 40 | मानसी | 140 | 16 | 22 | 28 | 34 | 40 |
| 8. | पादोनत्रयचार 16 × 2॥। = 44 | शैला | 150 | 16 | 23 | 30 | 37 | 44 |
| 9. | त्रयचार 16 × 3 = 48 | नन्दा | 160 | 16 | 24 | 32 | 40 | 48 |
| 10. | पदाधिकत्रयचार 16 × 3। = 52 | मन्दाक्षी | 170 | 16 | 25 | 34 | 43 | 52 |
| 11. | सार्द्धत्रयचार 16 × 3॥ = 56 | कौतुका | 180 | 16 | 26 | 36 | 46 | 56 |
| 12. | पादोनचतुष्कचार 16 × 3॥। = 60 | शान्ति | 190 | 16 | 27 | 38 | 49 | 60 |
| 13. | चतुर्गुणचार 16 × 4 = 64 | लाभा | 200 | 16 | 28 | 40 | 53 | 64 |
| 14. | सपादचतुष्कचार 16 × 4। = 68 | कल्याणी | 210 | 16 | 29 | 42 | 55 | 68 |
| 15. | सार्द्धचतुष्कचार 16 × 4॥ = 72 | सुभद्रा | 220 | 16 | 30 | 44 | 58 | 72 |
| 16. | पादोनपञ्चकचार 16 × 4॥। = 76 | भद्रेश्वरी | 230 | 16 | 31 | 46 | 61 | 76 |

## चक्र 4 पट्खण्डारेखा

| क्र. सं. | चार की संज्ञा | रेखा की संज्ञा | कुल कला | प्रथमखंड की कला | द्वितीयखंड की कला | तृतीयखंड की कला | चतुर्थखंड की कला | पञ्चमखंड की कला | षष्ठखंड की कला |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | समचार<br>20 × 1 = 20 | कामिनी | 120 | 20 | 20 | 20 | 20 | 20 | 20 |
| 2. | सपादचार<br>20 × 1। = 25 | कमला | 135 | 20 | 21 | 22 | 23 | 24 | 25 |
| 3. | सार्द्धचार<br>20 × 1॥ = 30 | पद्मा | 150 | 20 | 22 | 24 | 26 | 26 | 30 |
| 4. | पादोनद्वयचार<br>20 × 1॥। = 35 | संभ्रमा | 165 | 20 | 23 | 26 | 29 | 32 | 35 |
| 5. | द्विगुणचार<br>20 × 2 = 40 | भ्रमशेखरा | 180 | 20 | 24 | 28 | 32 | 36 | 40 |
| 6. | सपादद्विगुणचार<br>20 × 2। = 45 | शुभद्रा | 195 | 20 | 25 | 30 | 35 | 40 | 45 |
| 7. | सार्द्धद्विगुणचार<br>20 × 2॥ = 50 | शांतिशंभूना | 210 | 20 | 26 | 32 | 38 | 44 | 50 |
| 8. | पादोनत्रयचार<br>20 × 2॥। = 55 | वैदेवी | 225 | 20 | 27 | 34 | 41 | 48 | 55 |
| 9. | त्रयचार<br>20 × 3 = 60 | राजशेखरा | 240 | 20 | 28 | 36 | 44 | 52 | 60 |
| 10. | पदाधिकत्रयचार<br>20 × 3। = 65 | गान्धारी | 255 | 20 | 29 | 38 | 47 | 56 | 65 |
| 11. | सार्द्धत्रयचार<br>20 × 3॥ = 70 | गन्धर्वा | 270 | 20 | 30 | 40 | 50 | 60 | 70 |
| 12. | पादोनचतुष्कचार<br>20 × 3॥। = 75 | वृत्ता | 285 | 20 | 31 | 42 | 53 | 64 | 75 |
| 13. | चतुर्गुणचार<br>20 × 4 = 80 | तिलका | 300 | 20 | 32 | 44 | 56 | 68 | 80 |
| 14. | सपादचतुष्कचार<br>20 × 4। = 85 | लोकसुंदरी | 315 | 20 | 33 | 46 | 59 | 72 | 85 |
| 15. | सार्द्धचतुष्कचार<br>20 × 4॥ = 90 | महाभद्रा | 330 | 20 | 34 | 48 | 62 | 76 | 90 |
| 16. | पादोनपञ्चकचार<br>20 × 4॥। = 95 | इन्द्रा | 345 | 20 | 35 | 50 | 65 | 80 | 95 |

## चक्र 5 सप्तखण्डारेखा

| क्रम सं. | चार की संज्ञा | रेखा की संज्ञा | कुल कला | प्रथमखंड की कला | द्वितीयखंड की कला | तृतीयखंड की कला | चतुर्थखंड की कला | पञ्चमखंड की कला | षट्खंड की कला | सप्तमखंड की कला | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | समचार | पुष्पिता | 168 | 24 | 24 | 24 | 24 | 24 | 24 | 24 | 24 × 1 = 24 |
| 2. | सपादचार | पुष्पिका | 189 | 24 | 25 | 26 | 27 | 28 | 29 | 30 | 24 × 1। = 30 |
| 3. | सार्द्धचार | चम्पा | 210 | 24 | 26 | 28 | 30 | 32 | 34 | 36 | 24 × 1॥ = 36 |
| 4. | पादोनद्वयचार | समहा | 231 | 24 | 27 | 30 | 33 | 36 | 39 | 42 | 24 × 1॥। = 42 |
| 5. | द्विगुणचार | तिलका | 252 | 24 | 28 | 32 | 36 | 40 | 44 | 48 | 24 × 2 = 48 |
| 6. | सपादद्विगुणचार | अद्भुता | 273 | 24 | 29 | 34 | 39 | 44 | 49 | 54 | 24 × 2। = 54 |
| 7. | सार्द्धद्विगुणचार | सिद्धा | 294 | 24 | 30 | 36 | 42 | 48 | 54 | 60 | 24 × 2॥ = 60 |
| 8. | पादोनत्रयचार | सिद्धाङ्गी | 315 | 24 | 31 | 38 | 45 | 52 | 59 | 66 | 24 × 2॥। = 66 |
| 9. | त्रयचार | स्वरूपा | 336 | 24 | 32 | 40 | 48 | 56 | 64 | 72 | 24 × 3 = 72 |
| 10. | पदाधिकत्रयचार | क्रीडामणि | 357 | 24 | 33 | 42 | 51 | 60 | 69 | 78 | 24 × 3। = 78 |
| 11. | सार्द्धत्रयचार | नरनारा | 378 | 24 | 34 | 44 | 54 | 64 | 74 | 84 | 24 × 3॥ = 84 |
| 12. | पादोनचतुष्कचार | नरेश्वरी | 399 | 24 | 35 | 46 | 57 | 68 | 79 | 90 | 24 × 3॥। = 90 |
| 13. | चतुर्गुणचार | विरूपाक्षा | 420 | 24 | 36 | 48 | 60 | 72 | 84 | 96 | 24 × 4 = 96 |
| 14. | सपादचतुष्कचार | महोद्भवा | 441 | 24 | 37 | 50 | 63 | 76 | 89 | 102 | 24 × 4। = 102 |
| 15. | सार्द्धचतुष्कचार | सिद्धसा | 462 | 24 | 38 | 52 | 66 | 80 | 94 | 108 | 24 × 4॥ = 108 |
| 16. | पादोनपञ्चकचार | सर्वमण्डला | 483 | 24 | 39 | 54 | 69 | 84 | 99 | 114 | 24 × 4॥। = 114 |

## चक्र 6 अष्टखण्डारेखा

| क्रम सं. | चार की संज्ञा | रेखा की संज्ञा | कुल कला | प्रथमखंड की कला | द्वितीयखंड की कला | तृतीयखंड की कला | चतुर्थखंड की कला | पञ्चमखंड की कला | षट्खंड की कला | सप्तमखंड की कला | अष्टमखंड की कला | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | समचार | शुभा | | 28 | 28 | 28 | 28 | 28 | 28 | 28 | 28 | 28 × 1 = 28 |
| 2. | सपादचार | शीतला | | 28 | 29 | 30 | 31 | 32 | 33 | 34 | 35 | 28 × 1। = 35 |
| 3. | सार्द्धचार | गन्धा | | 28 | 30 | 32 | 34 | 36 | 38 | 40 | 42 | 28 × 1॥ = 42 |
| 4. | पादोनद्वयचार | मालती | | 28 | 31 | 34 | 37 | 40 | 43 | 46 | 49 | 28 × 1॥। = 49 |
| 5. | द्विगुणचार | हर्म्यसंयुता | | 28 | 32 | 36 | 40 | 44 | 48 | 52 | 56 | 28 × 2 = 56 |
| 6. | सपादद्विगुणचार | मेवा | | 28 | 33 | 38 | 33 | 48 | 53 | 58 | 63 | 28 × 2। = 63 |
| 7. | सार्द्धद्विगुणचार | मेघपदा | | 28 | 34 | 40 | 46 | 52 | 58 | 64 | 70 | 28 × 2॥ = 70 |
| 8. | पादोनत्रयचार | अनुजा | | 28 | 35 | 42 | 49 | 56 | 63 | 70 | 77 | 28 × 2॥। = 77 |
| 9. | त्रयचार | कृष्णा | | 28 | 36 | 44 | 52 | 60 | 68 | 76 | 84 | 28 × 3 = 84 |
| 10. | पदाधिकत्रयचार | निर्मला | | 28 | 37 | 46 | 55 | 64 | 73 | 82 | 91 | 28 × 3। = 91 |
| 11. | सार्द्धत्रयचार | परा | | 28 | 38 | 48 | 58 | 68 | 78 | 88 | 98 | 28 × 3॥ = 98 |
| 12. | पादोनचतुष्कचार | तेजाः | | 28 | 39 | 50 | 61 | 72 | 83 | 94 | 105 | 28 × 3॥। = 105 |
| 13. | चतुर्गुणचार | प्रतापतेजाः | | 28 | 40 | 52 | 64 | 76 | 88 | 100 | 112 | 28 × 4 = 112 |
| 14. | सपादचतुष्कचार | कीर्ति | | 28 | 41 | 54 | 67 | 80 | 93 | 106 | 119 | 28 × 4। = 119 |
| 15. | सार्द्धचतुष्कचार | आनन्दका | | 28 | 42 | 56 | 70 | 84 | 98 | 112 | 126 | 28 × 4॥ = 126 |
| 16. | पादोनपञ्चकचार | सम्मृता | | 28 | 43 | 58 | 73 | 88 | 103 | 118 | 133 | 28 × 4॥। = 133 |

## चक्र 7 नवखण्डारेखा

| क्रम सं. | चार की संज्ञा | रेखा की संज्ञा | कुल कला | प्रथमखंड की कला | द्वितीयखंड की कला | तृतीयखंड की कला | चतुर्थखंड की कला | पञ्चमखंड की कला | षट्खंड की कला | सप्तमखंड की कला | अष्टमखंड की कला | नवमखंड की कला | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | समचार | शान्ता | | 32 | 32 | 32 | 32 | 32 | 32 | 32 | 32 | 32 | 32 × 1 = 32 |
| 2. | सपाद | मुकुला | | 32 | 33 | 34 | 35 | 36 | 37 | 38 | 39 | 40 | 32 × 1। = 40 |
| 3. | सार्द्ध | नन्दा | | 32 | 34 | 36 | 38 | 40 | 42 | 44 | 46 | 48 | 32 × 1॥ = 48 |
| 4. | पादोनद्वय | श्रिया | | 32 | 35 | 38 | 41 | 44 | 47 | 50 | 53 | 56 | 32 × 1॥। = 56 |
| 5. | द्विगुण | भद्रा | | 32 | 36 | 40 | 44 | 48 | 52 | 56 | 60 | 64 | 32 × 2 = 64 |
| 6. | सपादद्विगुण | नन्दना | | 32 | 37 | 42 | 47 | 52 | 57 | 62 | 67 | 72 | 32 × 2। = 72 |
| 7. | सार्द्धद्विगुण | शोभना | | 32 | 38 | 44 | 50 | 54 | 62 | 68 | 74 | 80 | 32 × 2॥ = 80 |
| 8. | पादोनत्रय | सुभद्राख्या | | 32 | 39 | 46 | 53 | 60 | 67 | 74 | 81 | 88 | 32 × 2॥। = 88 |
| 9. | त्रय | सुता | | 32 | 40 | 48 | 56 | 64 | 72 | 80 | 88 | 96 | 32 × 3 = 96 |
| 10. | पदाधिकत्रय | कुलनंदिनी | | 32 | 41 | 50 | 59 | 68 | 77 | 86 | 95 | 104 | 32 × 3। = 104 |
| 11. | सार्द्धत्रय | गंभीरा | | 32 | 42 | 52 | 62 | 72 | 82 | 92 | 102 | 112 | 32 × 3॥ = 112 |
| 12. | पादोनचतुष्क | मधुरा | | 32 | 43 | 54 | 65 | 76 | 87 | 98 | 109 | 120 | 32 × 3॥। = 120 |
| 13. | चतुर्गुण | शेखरा | | 32 | 44 | 56 | 68 | 80 | 92 | 104 | 116 | 128 | 32 × 4 = 128 |
| 14. | सपादचतुष्क | शिखरोन्नता | | 32 | 45 | 58 | 71 | 84 | 97 | 110 | 123 | 136 | 32 × 4। = 136 |
| 15. | सार्द्धचतुष्क | महानीला | | 32 | 46 | 60 | 74 | 88 | 102 | 116 | 130 | 144 | 32 × 4॥ = 144 |
| 16. | पादोनपञ्चक | रत्नाचला | | 32 | 47 | 62 | 77 | 92 | 107 | 122 | 137 | 152 | 32 × 4॥। = 152 |

## चक्र 8 दशखण्डारेखा

| क्रम सं. | चार की संज्ञा | रेखा की संज्ञा | कुल कला | प्रथमखंड की कला | द्वितीयखंड की कला | तृतीयखंड की कला | चतुर्थखंड की कला | पञ्चमखंड की कला | षट्खंड की कला | सप्तमखंड की कला | अष्टमखंड की कला | नवमखंड की कला | दशममखंड की कला | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | समचार | आह्लादा | | 36 | 36 | 36 | 36 | 36 | 36 | 36 | 36 | 36 | 36 | 36 × 1 = 36 |
| 2. | सपाद | श्रिया | | 36 | 37 | 38 | 39 | 40 | 41 | 42 | 43 | 44 | 45 | 36 × 1। = 45 |
| 3. | सार्द्ध | नन्दा | | 36 | 38 | 40 | 42 | 44 | 46 | 48 | 50 | 52 | 54 | 36 × 1॥ = 54 |
| 4. | पादोनद्वय | गोमती | | 36 | 39 | 42 | 45 | 48 | 51 | 54 | 57 | 60 | 63 | 36 × 1॥। = 63 |
| 5. | द्विगुण | नामसुंदरी | | 36 | 40 | 44 | 48 | 52 | 56 | 60 | 64 | 68 | 72 | 36 × 2 = 72 |
| 6. | सपादद्विगुण | सुभद्रा | | 36 | 41 | 46 | 51 | 56 | 61 | 66 | 71 | 76 | 81 | 36 × 2। = 81 |
| 7. | सार्द्धद्विगुण | भद्रिका | | 36 | 42 | 48 | 54 | 60 | 66 | 72 | 78 | 84 | 90 | 36 × 2॥ = 90 |
| 8. | पादोनत्रय | भद्रा | | 36 | 43 | 50 | 57 | 64 | 71 | 78 | 85 | 92 | 99 | 36 × 2॥। = 99 |
| 9. | त्रय | भद्राङ्गा | | 36 | 44 | 52 | 60 | 68 | 76 | 84 | 92 | 100 | 108 | 36 × 3 = 108 |
| 10. | पदाधिकत्रय | भद्रमालिनी | | 36 | 45 | 54 | 63 | 72 | 81 | 90 | 99 | 108 | 117 | 36 × 3। = 117 |
| 11. | सार्द्धत्रय | संभूता | | 36 | 46 | 56 | 66 | 76 | 86 | 96 | 106 | 116 | 126 | 36 × 3॥ = 126 |
| 12. | पादोनचतुष्क | भूतशरदा | | 36 | 47 | 58 | 69 | 80 | 91 | 102 | 113 | 124 | 135 | 36 × 3॥। = 135 |
| 13. | चतुर्गुण | पताका | | 36 | 48 | 60 | 72 | 84 | 96 | 108 | 120 | 132 | 144 | 36 × 4 = 144 |
| 14. | सपादचतुष्क | कीर्तिवर्द्धिनी | | 36 | 49 | 62 | 75 | 88 | 101 | 114 | 127 | 140 | 153 | 36 × 4। = 153 |
| 15. | सार्द्धचतुष्क | माहेंद्री | | 36 | 50 | 64 | 78 | 92 | 106 | 120 | 134 | 148 | 162 | 32 × 4॥ = 162 |
| 16. | पादोनपञ्चक | सुंदरा | | 36 | 51 | 66 | 81 | 96 | 111 | 126 | 141 | 156 | 171 | 32 × 4॥। = 171 |

## चक्र 9 एकादशखण्डारेखा

| क्रम सं. | चार की संज्ञा | रेखा की संज्ञा | कुल कला | प्रथमखंड की कला | द्वितीयखंड की कला | तृतीयखंड की कला | चतुर्थखंड की कला | पञ्चखंड की कला | पट्खंड की कला | सप्तखंड की कला | अष्टखंड की कला | नवखंड की कला | दशखंड की कला | एकादशखंड की कला | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | समचार | कुमुदा | | 40 | 40 | 40 | 40 | 40 | 40 | 40 | 40 | 40 | 40 | 40 | 40 × 1 = 40 |
| 2. | सपाद | भद्रका | | 40 | 41 | 42 | 43 | 44 | 45 | 46 | 47 | 48 | 49 | 50 | 40 × 1 I = 50 |
| 3. | सार्द्ध | ध्वजा | | 40 | 42 | 44 | 46 | 48 | 50 | 52 | 54 | 56 | 58 | 60 | 40 × 1 II = 60 |
| 4. | पादोनद्वय | ध्वजाक्षी | | 40 | 43 | 46 | 49 | 52 | 55 | 58 | 61 | 64 | 67 | 70 | 40 × 1 III = 70 |
| 5. | द्विगुण | मकरध्वजा | | 40 | 44 | 48 | 52 | 56 | 60 | 64 | 68 | 72 | 76 | 80 | 40 × 2 = 80 |
| 6. | सपादद्विगुण | सुपताका | | 40 | 45 | 50 | 55 | 60 | 65 | 70 | 75 | 80 | 85 | 90 | 40 × 2 I = 90 |
| 7. | सार्द्धद्विगुण | वीरभद्रा | | 40 | 46 | 52 | 58 | 64 | 70 | 76 | 82 | 88 | 94 | 100 | 40 × 2 II = 100 |
| 8. | पादोनत्रय | रूपभद्रा | | 40 | 47 | 54 | 61 | 68 | 75 | 82 | 89 | 96 | 103 | 110 | 40 × 2 III = 110 |
| 9. | त्रय | विनायका | | 40 | 48 | 56 | 64 | 72 | 80 | 88 | 96 | 104 | 112 | 120 | 40 × 3 = 120 |
| 10. | पदाधिकत्रय | वीरा | | 40 | 49 | 58 | 67 | 76 | 85 | 94 | 103 | 112 | 121 | 130 | 40 × 3 I = 130 |
| 11. | सार्द्धत्रय | विक्रमी | | 40 | 50 | 60 | 70 | 80 | 90 | 100 | 110 | 120 | 130 | 140 | 40 × 3 II = 140 |
| 12. | पादोनचतुष्क | रम्या | | 40 | 51 | 62 | 73 | 84 | 95 | 106 | 117 | 128 | 139 | 150 | 40 × 3 III = 150 |
| 13. | चतुर्गुण | मन्मथा | | 40 | 52 | 64 | 76 | 88 | 100 | 112 | 124 | 136 | 148 | 160 | 40 × 4 = 160 |
| 14. | सपादचतुष्क | देवसुंदरी | | 40 | 53 | 66 | 79 | 92 | 105 | 118 | 131 | 144 | 157 | 170 | 40 × 4 I = 170 |
| 15. | सार्द्धचतुष्क | उग्रा | | 40 | 54 | 68 | 82 | 96 | 110 | 124 | 138 | 152 | 166 | 180 | 32 × 4 II = 180 |
| 16. | पादोनपञ्चक | कनकेशी | | 40 | 55 | 70 | 85 | 100 | 115 | 130 | 145 | 160 | 175 | 190 | 32 × 4 III = 190 |

## चक्र 10 द्वादशखण्डारेखा

| क्रम सं. | चार की संज्ञा | रेखा की संज्ञा | कुल कला | प्रथमखंड की कला | द्वितीयखंड की कला | तृतीयखंड की कला | चतुर्थखंड की कला | पञ्चखंड की कला | षट्खंड की कला | सप्तखंड की कला | अष्टखंड की कला | नवखंड की कला | दशखंड की कला | एकादशखंड की कला | द्वादशखंड की कला | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | समचार | शाश्वती | | 44 | 44 | 44 | 44 | 44 | 44 | 44 | 44 | 44 | 44 | 44 | 44 | 44 × 1 = 44 |
| 2. | सपाद | वरदा | | 44 | 45 | 46 | 47 | 48 | 49 | 50 | 51 | 52 | 53 | 54 | 55 | 44 × 1। = 55 |
| 3. | सार्द्ध | रम्या | | 44 | 46 | 48 | 50 | 52 | 54 | 56 | 58 | 60 | 62 | 64 | 66 | 44 × 1॥ = 66 |
| 4. | पादोनद्वय | सुंदरा | | 44 | 47 | 50 | 53 | 56 | 59 | 62 | 65 | 68 | 71 | 74 | 77 | 44 × 1।॥ = 77 |
| 5. | द्विगुण | आमोदा | | 44 | 48 | 52 | 56 | 60 | 64 | 68 | 72 | 76 | 80 | 84 | 88 | 44 × 2 = 88 |
| 6. | सपादद्विगुण | आमोदकी | | 44 | 49 | 54 | 59 | 64 | 69 | 74 | 79 | 84 | 89 | 94 | 99 | 44 × 2। = 99 |
| 7. | सार्द्धद्विगुण | शिवा | | 44 | 50 | 56 | 62 | 68 | 74 | 80 | 86 | 92 | 98 | 104 | 110 | 44 × 2॥ = 110 |
| 8. | पादोनत्रय | सर्वलभ्या | | 44 | 51 | 58 | 65 | 72 | 79 | 86 | 93 | 100 | 107 | 114 | 121 | 44 × 2।॥ = 121 |
| 9. | त्रय | विशाला | | 44 | 52 | 60 | 68 | 76 | 84 | 92 | 100 | 109 | 116 | 124 | 132 | 44 × 3 = 132 |
| 10. | पदाधिकत्रय | कुलनायका | | 44 | 53 | 62 | 71 | 80 | 89 | 98 | 107 | 116 | 125 | 134 | 143 | 44 × 3। = 143 |
| 11. | सार्द्धत्रय | शिम्भा | | 44 | 54 | 64 | 74 | 84 | 94 | 104 | 114 | 124 | 134 | 144 | 154 | 44 × 3॥ = 152 |
| 12. | पादोनचतुष्क | शिवतमा | | 44 | 55 | 66 | 77 | 88 | 99 | 110 | 121 | 132 | 143 | 154 | 165 | 44 × 3।॥ = 165 |
| 13. | चतुर्गुण | दिव्या | | 44 | 56 | 68 | 80 | 92 | 104 | 116 | 128 | 140 | 152 | 164 | 176 | 44 × 4 = 176 |
| 14. | सपादचतुष्क | शिवाङ्गना | | 44 | 57 | 70 | 83 | 96 | 109 | 122 | 135 | 148 | 161 | 174 | 187 | 44 × 4। = 187 |
| 15. | सार्द्धचतुष्क | विश्वेश्वरी | | 44 | 58 | 72 | 86 | 100 | 114 | 128 | 142 | 156 | 170 | 184 | 198 | 44 × 4॥ = 198 |
| 16. | पादोनपञ्चक | विश्वरूपा | | 44 | 59 | 74 | 89 | 104 | 119 | 134 | 149 | 164 | 179 | 194 | 209 | 44 × 4।॥ = 209 |

## चक्र 11 त्रयोदशखण्डारेखा

| क्रम सं | चारकी संज्ञा | रेखाकी संज्ञा | कुल कला | प्रथमखंड की कला | द्वितीयखंड की कला | तृतीयखंड की कला | चतुर्थखंड की कला | पञ्चमखंड की कला | षष्ठखंड की कला | सप्तखंड की कला | अष्टखंड की कला | नवखंड की कला | दशखंड की कला | एकादशखंड की कला | द्वादशखंड की कला | त्रयोदशखंड की कला | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | समचार | शांतिकी | | 48 | 48 | 48 | 48 | 48 | 48 | 48 | 48 | 48 | 48 | 48 | 48 | 48 | 48 × 1 = 48 |
| 2. | सपाद | विमला | | 48 | 49 | 50 | 51 | 52 | 53 | 54 | 55 | 56 | 57 | 58 | 59 | 60 | 48 × 1 I = 60 |
| 3. | सार्द्ध | सूर्या | | 48 | 50 | 52 | 54 | 56 | 58 | 60 | 62 | 64 | 66 | 68 | 70 | 72 | 48 × 1 II = 72 |
| 4. | पादोनद्वय | वर्द्धना | | 48 | 51 | 54 | 57 | 60 | 63 | 66 | 69 | 72 | 75 | 78 | 81 | 84 | 48 × 1 III = 84 |
| 5. | द्विगुण | विजया | | 48 | 52 | 56 | 60 | 64 | 68 | 72 | 76 | 80 | 84 | 88 | 92 | 96 | 48 × 2 = 96 |
| 6. | सपादद्विगुण | वांछिता | | 48 | 53 | 58 | 63 | 68 | 73 | 78 | 83 | 88 | 93 | 98 | 103 | 108 | 48 × 2 I = 108 |
| 7. | सार्द्धद्विगुण | वंशोद्भवा | | 48 | 54 | 60 | 66 | 72 | 78 | 84 | 90 | 96 | 102 | 108 | 114 | 120 | 48 × 2 II = 120 |
| 8. | पादोनत्रय | वंशभूता | | 48 | 55 | 62 | 69 | 76 | 83 | 90 | 97 | 104 | 111 | 118 | 125 | 132 | 48 × 2 III = 132 |
| 9. | त्रय | रेखिता | | 48 | 56 | 64 | 72 | 80 | 88 | 96 | 104 | 112 | 120 | 128 | 136 | 144 | 48 × 3 = 144 |
| 10. | पदाधिकत्रय | वंशताश | | 48 | 57 | 66 | 75 | 84 | 93 | 102 | 111 | 120 | 129 | 138 | 147 | 156 | 48 × 3 I = 156 |
| 11. | सार्द्धत्रय | अधिवास्या | | 48 | 58 | 68 | 78 | 88 | 98 | 108 | 118 | 128 | 138 | 148 | 158 | 168 | 48 × 3 II = 168 |
| 12. | पादोनचतुष्क | वश्या | | 48 | 59 | 70 | 81 | 92 | 103 | 114 | 125 | 136 | 147 | 158 | 169 | 180 | 48 × 3 III = 180 |
| 13. | चतुर्गुण | माना | | 48 | 60 | 72 | 84 | 96 | 108 | 120 | 132 | 144 | 156 | 168 | 180 | 192 | 48 × 4 = 192 |
| 14. | सपादचतुष्क | शिखोद्भवा | | 48 | 61 | 74 | 87 | 100 | 113 | 126 | 139 | 152 | 165 | 178 | 191 | 204 | 48 × 4 I = 204 |
| 15. | सार्द्धचतुष्क | वांस्या | | 48 | 62 | 76 | 90 | 104 | 118 | 132 | 146 | 160 | 174 | 188 | 202 | 216 | 48 × 4 II = 216 |
| 16. | पादोनपञ्चक | वसंतोद्भवा | | 48 | 63 | 78 | 93 | 108 | 123 | 138 | 153 | 168 | 183 | 198 | 213 | 228 | 48 × 4 III = 228 |

## चक्र 12 चतुर्दशखण्डारेखा

| क्रम सं. | चार की संज्ञा | रेखा की संज्ञा | प्रथमखंड की कला | द्वितीयखंड की कला | तृतीयखंड की कला | चतुर्थखंड की कला | पञ्चमखंड की कला | षष्ठखंड की कला | सप्तखंड की कला | अष्टखंड की कला | नवखंड की कला | दशखंड की कला | एकादशखंड की कला | द्वादशखंड की कला | त्रयोदशखंड की कला | चतुर्दशखंड की कला | कुल कला |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | समचार | विद्याशेधनिका | 52 | 52 | 52 | 52 | 52 | 52 | 52 | 52 | 52 | 52 | 52 | 52 | 52 | 52 | 52 × 1 = 52 |
| 2. | सपाद | रम्या | 52 | 53 | 54 | 55 | 56 | 57 | 58 | 59 | 60 | 61 | 62 | 63 | 64 | 65 | 52 × 1। = 65 |
| 3. | सार्द्ध | गौरी | 52 | 54 | 56 | 58 | 60 | 62 | 64 | 66 | 68 | 70 | 72 | 74 | 76 | 78 | 52 × 1॥ = 73 |
| 4. | पादोनद्वय | हसी | 52 | 55 | 58 | 61 | 64 | 67 | 70 | 73 | 76 | 79 | 82 | 85 | 88 | 91 | 52 × 1॥। = 91 |
| 5. | द्विगुण | सरस्वती | 52 | 56 | 60 | 64 | 68 | 72 | 76 | 80 | 84 | 88 | 92 | 96 | 100 | 104 | 52 × 2 = 104 |
| 6. | सपादद्विगुण | सारङ्गी | 52 | 57 | 62 | 67 | 72 | 77 | 82 | 87 | 92 | 97 | 102 | 107 | 112 | 117 | 52 × 2। = 117 |
| 7. | सार्द्धद्विगुण | सौरम्या | 52 | 58 | 64 | 70 | 76 | 82 | 88 | 94 | 100 | 106 | 112 | 118 | 124 | 130 | 52 × 2॥ = 130 |
| 8. | पादोनत्रय | शुकाग्रा | 52 | 59 | 66 | 73 | 80 | 87 | 94 | 101 | 108 | 115 | 122 | 129 | 136 | 143 | 52 × 2॥। = 143 |
| 9. | त्रय | अशोका | 52 | 60 | 68 | 76 | 84 | 92 | 100 | 108 | 116 | 124 | 132 | 140 | 148 | 156 | 52 × 3 = 156 |
| 10. | पदाधिकत्रय | शौंचकी | 52 | 61 | 70 | 79 | 88 | 97 | 106 | 115 | 124 | 133 | 142 | 151 | 160 | 169 | 52 × 3। = 169 |
| 11. | सार्द्धत्रय | कनका | 52 | 62 | 72 | 82 | 92 | 102 | 114 | 122 | 132 | 142 | 152 | 162 | 172 | 182 | 52 × 3॥ = 182 |
| 12. | पादोनचतुष्क | कनकावती | 52 | 63 | 74 | 85 | 96 | 107 | 120 | 129 | 140 | 151 | 162 | 173 | 184 | 195 | 52 × 3॥। = 195 |
| 13. | चतुर्गुण | कन्दर्पी | 52 | 64 | 76 | 88 | 100 | 112 | 126 | 136 | 148 | 160 | 172 | 184 | 196 | 208 | 52 × 4 = 208 |
| 14. | सपादचतुष्क | कंदर्पांश्विनी | 52 | 65 | 78 | 91 | 104 | 117 | 132 | 143 | 156 | 169 | 182 | 195 | 208 | 221 | 52 × 4। = 221 |
| 15. | सार्द्धचतुष्क | कमला | 52 | 66 | 80 | 94 | 108 | 122 | 138 | 150 | 164 | 178 | 192 | 206 | 220 | 234 | 52 × 4॥ = 234 |
| 16. | पादोनपञ्चक | कलहंसी | 52 | 67 | 82 | 97 | 112 | 127 | 144 | 157 | 172 | 187 | 202 | 217 | 232 | 247 | 52 × 4॥। = 247 |

## चक्र 13 पञ्चदशखण्डारेखा

| क्रम सं. | चार की संज्ञा | रेखा की संज्ञा | कुल कला | प्रथमखंड की कला | द्वितीयखंड की कला | तृतीयखंड की कला | चतुर्थखंड की कला | पञ्चमखंड की कला | षष्ठखंड की कला | सप्तखंड की कला | अष्टखंड की कला | नवखंड की कला | दशखंड की कला | एकादशखंड की कला | द्वादशखंड की कला | त्रयोदशखंड की कला | चतुर्दशखंड की कला | पञ्चदशखंड की कला | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | समचार | शांतिकी | | 56 | 56 | 56 | 56 | 56 | 56 | 56 | 56 | 56 | 56 | 56 | 56 | 56 | 56 | 56 | 56 × 1 = 56 |
| 2. | सपाद | विमला | | 56 | 57 | 58 | 59 | 60 | 61 | 62 | 63 | 64 | 65 | 66 | 67 | 68 | 69 | 70 | 56 × 1। = 70 |
| 3. | सार्द्ध | सूर्या | | 56 | 58 | 60 | 62 | 64 | 66 | 68 | 70 | 72 | 74 | 76 | 78 | 80 | 82 | 84 | 56 × 1॥ = 84 |
| 4. | पादोनद्वय | वर्द्धना | | 56 | 59 | 62 | 65 | 68 | 71 | 74 | 77 | 80 | 83 | 86 | 89 | 92 | 95 | 98 | 56 × 1।।। = 98 |
| 5. | द्विगुण | विजया | | 56 | 60 | 64 | 68 | 72 | 76 | 80 | 84 | 88 | 92 | 96 | 100 | 104 | 108 | 112 | 56 × 2 = 112 |
| 6. | सपादद्विगुण | वांछिता | | 56 | 61 | 66 | 71 | 76 | 81 | 86 | 91 | 96 | 101 | 106 | 111 | 116 | 121 | 126 | 56 × 2। = 126 |
| 7. | सार्द्धद्विगुण | वंशोद्भवा | | 56 | 62 | 68 | 74 | 80 | 86 | 92 | 98 | 104 | 110 | 116 | 122 | 128 | 134 | 140 | 56 × 2॥ = 140 |
| 8. | पादोनत्रय | वंशभूता | | 56 | 63 | 70 | 77 | 84 | 91 | 98 | 105 | 112 | 119 | 126 | 133 | 140 | 147 | 154 | 56 × 2।।। = 154 |
| 9. | त्रय | रेखिता | | 56 | 64 | 72 | 80 | 88 | 96 | 104 | 112 | 120 | 128 | 136 | 144 | 152 | 160 | 168 | 56 × 3 = 168 |
| 10. | पदाधिकत्रय | वंशतारा | | 56 | 65 | 74 | 83 | 92 | 101 | 110 | 119 | 128 | 137 | 146 | 155 | 164 | 173 | 182 | 56 × 3। = 182 |
| 11. | सार्द्धत्रय | अधिवास्या | | 56 | 66 | 76 | 86 | 96 | 106 | 116 | 126 | 136 | 146 | 156 | 166 | 176 | 186 | 196 | 56 × 3॥ = 196 |
| 12. | पादोनचतुष्क | वश्या | | 56 | 67 | 78 | 89 | 100 | 111 | 122 | 133 | 144 | 155 | 166 | 177 | 188 | 199 | 210 | 56 × 3।।। = 210 |
| 13. | चतुर्गुण | माना | | 56 | 68 | 80 | 92 | 104 | 116 | 128 | 140 | 152 | 164 | 176 | 188 | 200 | 212 | 224 | 56 × 4 = 224 |
| 14. | सपादचतुष्क | शिखोद्भवा | | 56 | 69 | 82 | 95 | 108 | 121 | 134 | 147 | 160 | 173 | 186 | 199 | 212 | 225 | 238 | 56 × 4। = 238 |
| 15. | सार्द्धचतुष्क | वांस्या | | 56 | 70 | 84 | 98 | 112 | 126 | 140 | 154 | 168 | 182 | 196 | 210 | 224 | 238 | 252 | 56 × 4॥ = 252 |
| 16. | पादोनपञ्चक | वसंतोद्भवा | | 56 | 71 | 86 | 101 | 116 | 131 | 146 | 161 | 176 | 191 | 206 | 221 | 236 | 251 | 266 | 56 × 4।।। = 266 |

## चक्र 14 षोडशखण्डारेखा

| क्रम सं. | चार की संज्ञा | रेखा की संज्ञा | कुल कला | प्रथमखंड की कला | द्वितीयखंड | तृतीयखंड | चतुर्थखंड | पञ्चमखंड | सप्तखंड | षष्ठखंड | अष्टखंड | नवखंड | दशखंड | एकादशखंड | द्वादशखंड | त्रयोदशखंड | चतुर्दशखंड | पञ्चदशखंड | षोडशखंड | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | समचार | द्विपिनी | | 60 | 60 | 60 | 60 | 60 | 60 | 60 | 60 | 60 | 60 | 60 | 60 | 60 | 60 | 60 | 60 | 60 × 1 = 60 |
| 2. | सपाद | सिंहिनी | | 60 | 61 | 62 | 63 | 64 | 65 | 66 | 67 | 68 | 69 | 70 | 71 | 72 | 73 | 74 | 75 | 60 × 1। = 75 |
| 3. | सार्द्ध | सिंही | | 60 | 62 | 64 | 66 | 68 | 70 | 72 | 74 | 76 | 78 | 80 | 82 | 84 | 86 | 88 | 90 | 60 × 1॥ = 90 |
| 4. | पादोनद्वय | सिंहरूपा | | 60 | 63 | 66 | 69 | 72 | 75 | 78 | 81 | 84 | 87 | 90 | 93 | 96 | 99 | 102 | 105 | 60 × 1॥। = 105 |
| 5. | द्विगुण | सिंहोन्नता | | 60 | 64 | 68 | 72 | 76 | 80 | 84 | 88 | 92 | 96 | 100 | 104 | 108 | 112 | 116 | 120 | 60 × 2 = 120 |
| 6. | स्पादद्विगुण | सिंहग्रीवा | | 60 | 65 | 70 | 75 | 80 | 85 | 90 | 95 | 100 | 105 | 110 | 115 | 120 | 125 | 130 | 133 | 60 × 2। = 133 |
| 7. | सार्द्धद्विगुण | सिंहा | | 60 | 66 | 72 | 78 | 84 | 90 | 96 | 102 | 108 | 114 | 120 | 126 | 132 | 138 | 144 | 150 | 60 × 2॥ = 150 |
| 8. | पादोनत्रय | सिंहाख्या | | 60 | 67 | 74 | 81 | 88 | 95 | 102 | 109 | 116 | 123 | 130 | 137 | 144 | 151 | 158 | 165 | 60 × 2॥। = 165 |
| 9. | त्रय | सिंहेश्वरी | | 60 | 68 | 76 | 84 | 92 | 100 | 108 | 116 | 124 | 132 | 140 | 148 | 156 | 164 | 172 | 180 | 60 × 3 = 180 |
| 10. | पदाधिकत्रय | महानादा | | 60 | 69 | 78 | 87 | 96 | 105 | 114 | 123 | 132 | 141 | 150 | 159 | 168 | 177 | 186 | 195 | 60 × 3। = 195 |
| 11. | सार्द्धत्रय | नादवती | | 60 | 70 | 80 | 90 | 100 | 110 | 120 | 130 | 140 | 150 | 160 | 170 | 180 | 190 | 200 | 210 | 60 × 3॥ = 210 |
| 12. | पादोनचतुष्क | सिंहनादा | | 60 | 71 | 82 | 93 | 104 | 115 | 126 | 137 | 148 | 159 | 170 | 181 | 192 | 203 | 214 | 225 | 60 × 3॥। = 225 |
| 13. | चतुर्गुण | नादोद्भवा | | 60 | 72 | 84 | 96 | 108 | 120 | 132 | 144 | 156 | 168 | 180 | 192 | 204 | 216 | 228 | 240 | 60 × 4 = 240 |
| 14. | सपादचतुष्क | सिंहाङ्गमा | | 60 | 73 | 86 | 99 | 112 | 125 | 138 | 151 | 164 | 177 | 190 | 203 | 216 | 229 | 242 | 255 | 60 × 4। = 255 |
| 15. | सार्द्धचतुष्क | सिद्धा | | 60 | 74 | 88 | 102 | 116 | 130 | 144 | 158 | 172 | 186 | 200 | 214 | 228 | 242 | 256 | 270 | 60 × 4॥ = 270 |
| 16. | पादोनपञ्चक | सकलेश्वरी | | 60 | 75 | 90 | 105 | 120 | 135 | 150 | 165 | 180 | 195 | 210 | 225 | 240 | 255 | 270 | 285 | 60 × 4॥। = 285 |

## चक्र 15 सप्तदशखण्डारेखा

| क्रम सं. | चार की संज्ञा | रेखा की संज्ञा | कुल कला | प्रथमखंड की कला | द्वितीयखंड | तृतीयखंड | चतुर्थखंड | पञ्चमखंड | सप्तखंड | षष्ठखंड | अष्टखंड | नवखंड | दशखंड | एकादशखंड | द्वादशखंड | त्रयोदशखंड | चतुर्दशखंड | पञ्चदशखंड | षोडशखंड | सप्तदशखंड | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | समचार | सौम्या | | 64 | 64 | 64 | 64 | 64 | 64 | 64 | 64 | 64 | 64 | 64 | 64 | 64 | 64 | 64 | 64 | 64 | 64× 1 = 64 |
| 2. | सपाद | नारायणी | | 64 | 65 | 66 | 67 | 68 | 69 | 70 | 71 | 72 | 73 | 74 | 75 | 76 | 77 | 78 | 79 | 80 | 64 × 1 I = 80 |
| 3. | सार्द्ध | रम्या | | 64 | 66 | 68 | 70 | 72 | 74 | 76 | 78 | 80 | 82 | 84 | 86 | 88 | 90 | 92 | 94 | 96 | 64 × 1 II = 96 |
| 4. | पादोनद्वय | नरा | | 64 | 67 | 70 | 73 | 76 | 79 | 82 | 85 | 88 | 91 | 94 | 97 | 100 | 103 | 106 | 109 | 112 | 64 × 1 III = 112 |
| 5. | द्विगुण | नरोत्तमा | | 64 | 68 | 72 | 76 | 80 | 84 | 88 | 92 | 96 | 100 | 104 | 108 | 112 | 116 | 120 | 124 | 128 | 64 × 2 = 128 |
| 6. | सपादद्विगुण | नरेश्वरी | | 64 | 69 | 74 | 79 | 84 | 89 | 94 | 99 | 104 | 109 | 114 | 119 | 124 | 129 | 134 | 139 | 144 | 64 × 2 I = 144 |
| 7. | सार्द्धद्विगुण | नराज्ञा | | 64 | 70 | 76 | 82 | 88 | 94 | 100 | 106 | 112 | 118 | 124 | 130 | 136 | 142 | 148 | 154 | 160 | 64 × 2 II = 160 |
| 8. | पादोनत्रय | नराङ्गना | | 64 | 71 | 78 | 85 | 92 | 99 | 106 | 113 | 120 | 127 | 134 | 141 | 148 | 155 | 162 | 169 | 176 | 64 × 2 III = 176 |
| 9. | त्रय | नृत्येश्वरी | | 64 | 72 | 80 | 88 | 96 | 104 | 112 | 120 | 128 | 136 | 144 | 152 | 160 | 168 | 176 | 184 | 192 | 64 × 3 = 192 |
| 10. | पदाधिकत्रय | वीरवती | | 64 | 73 | 82 | 91 | 100 | 109 | 118 | 127 | 136 | 145 | 154 | 163 | 172 | 181 | 190 | 199 | 203 | 64 × 3 I = 223 |
| 11. | सार्द्धत्रय | वीराङ्गनी | | 64 | 74 | 84 | 94 | 104 | 114 | 124 | 134 | 144 | 154 | 164 | 174 | 184 | 194 | 204 | 214 | 224 | 64 × 3 II = 224 |
| 12. | पादोनचतुष्क | महावीरा | | 64 | 75 | 86 | 97 | 108 | 119 | 130 | 141 | 152 | 163 | 174 | 185 | 196 | 207 | 218 | 229 | 240 | 60 × 3 III = 240 |
| 13. | चतुर्गुण | वीनायिका | | 64 | 76 | 88 | 100 | 112 | 124 | 136 | 148 | 160 | 172 | 184 | 196 | 208 | 220 | 232 | 244 | 256 | 60 × 4 = 256 |
| 14. | सपादचतुष्क | विभत्सा | | 64 | 77 | 90 | 103 | 116 | 129 | 142 | 155 | 168 | 181 | 194 | 207 | 220 | 233 | 246 | 259 | 272 | 64 × 4 I = 272 |
| 15. | सार्द्धचतुष्क | सती | | 64 | 78 | 92 | 106 | 120 | 134 | 148 | 162 | 176 | 190 | 204 | 218 | 232 | 246 | 260 | 274 | 288 | 64 × 4 II = 288 |
| 16. | पादोनपञ्चक | शांता | | 64 | 79 | 94 | 109 | 124 | 139 | 154 | 169 | 184 | 199 | 214 | 229 | 244 | 259 | 274 | 289 | 304 | 64 × 4 III = 304 |

## चक्र 16 अष्टादशखण्डारेखा

| क्रम सं. | चार की संज्ञा | रेखा की संज्ञा | कुल कला प्रथमखंड की कला | द्वितीयखंड | तृतीयखंड | चतुर्थखंड | पञ्चमखंड | सप्तखंड | षष्ठखंड | अष्टखंड | नवखंड | दशखंड | एकादशखंड | द्वादशखंड | त्रयोदशखंड | चतुर्दशखंड | पञ्चदशखंड | षोडशखंड | सप्तदशखंड | अष्टादशखंड | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | समचार | रम्या | 68 | 68 | 68 | 68 | 68 | 68 | 68 | 68 | 68 | 68 | 68 | 68 | 68 | 68 | 68 | 68 | 68 | 68 | 68 × 1 = 68 |
| 2. | सपाद | रम्मेश्वरी | 68 | 69 | 70 | 71 | 72 | 73 | 74 | 75 | 76 | 77 | 78 | 79 | 80 | 81 | 82 | 83 | 84 | 85 | 68 × 1। = 85 |
| 3. | सार्द्ध | गङ्गा | 68 | 70 | 72 | 74 | 76 | 78 | 80 | 82 | 84 | 86 | 88 | 90 | 92 | 94 | 96 | 98 | 100 | 102 | 68 × 1॥ = 102 |
| 4. | पादोनद्वय | ककुदा | 68 | 71 | 74 | 77 | 80 | 83 | 86 | 89 | 92 | 95 | 98 | 101 | 104 | 107 | 110 | 113 | 116 | 119 | 68 × 1।॥ = 119 |
| 5. | द्विगुण | कुकुदशेखरी | 68 | 72 | 76 | 80 | 84 | 88 | 92 | 96 | 100 | 104 | 108 | 112 | 116 | 120 | 124 | 128 | 132 | 136 | 68 × 2 = 136 |
| 6. | सपादद्विगुण | विभत्सा | 68 | 73 | 78 | 83 | 88 | 93 | 98 | 103 | 108 | 113 | 118 | 123 | 128 | 133 | 138 | 143 | 148 | 153 | 68 × 2। = 153 |
| 7. | सार्द्धद्विगुण | पार्थिवा | 68 | 74 | 80 | 86 | 92 | 98 | 104 | 110 | 116 | 122 | 128 | 134 | 140 | 146 | 152 | 158 | 164 | 170 | 68 × 2॥ = 170 |
| 8. | पादोनत्रय | कांता | 68 | 75 | 82 | 89 | 96 | 103 | 110 | 117 | 124 | 131 | 138 | 145 | 152 | 159 | 166 | 173 | 180 | 187 | 68 × 2।॥ = 187 |
| 9. | त्रय | मनोहरी | 68 | 76 | 84 | 92 | 100 | 108 | 116 | 124 | 132 | 140 | 148 | 156 | 164 | 172 | 180 | 188 | 196 | 204 | 68 × 3 = 204 |
| 10. | पदाधिकत्रय | स्वरूपा | 68 | 77 | 86 | 95 | 104 | 113 | 122 | 131 | 140 | 149 | 158 | 167 | 176 | 185 | 194 | 203 | 212 | 221 | 68 × 3। = 221 |
| 11. | सार्द्धत्रय | विक्रमा | 68 | 78 | 86 | 98 | 108 | 118 | 128 | 138 | 148 | 158 | 168 | 178 | 188 | 198 | 208 | 218 | 228 | 238 | 68 × 3॥ = 238 |
| 12. | पादोनचतुष्क | शांता | 68 | 79 | 90 | 101 | 112 | 123 | 134 | 145 | 156 | 167 | 178 | 189 | 200 | 211 | 222 | 233 | 244 | 255 | 68 × 3।॥ = 255 |
| 13. | चतुर्गुण | मनोज्ञा | 68 | 80 | 92 | 104 | 116 | 128 | 140 | 152 | 164 | 176 | 188 | 200 | 212 | 224 | 236 | 248 | 260 | 272 | 68 × 4 = 272 |
| 14. | सपादचतुष्क | सर्वतोमुखी | 68 | 81 | 94 | 107 | 120 | 133 | 146 | 159 | 172 | 185 | 198 | 211 | 224 | 237 | 250 | 263 | 276 | 289 | 68 × 4। = 289 |
| 15. | सार्द्धचतुष्क | यज्ञभद्रा | 68 | 82 | 96 | 110 | 124 | 138 | 152 | 166 | 180 | 194 | 208 | 222 | 236 | 250 | 264 | 278 | 292 | 306 | 68 × 4॥ = 306 |
| 16. | पादोनपञ्चक | सुखासीना | 68 | 83 | 98 | 113 | 128 | 143 | 158 | 173 | 188 | 203 | 218 | 233 | 248 | 263 | 278 | 293 | 308 | 323 | 68 × 4।॥ = 323 |

श्री गणेशायनमः

सूत्रधारश्रीगोविन्दविरचितम्

M.Katyayana

# ॥ कलानिधौ ॥

## ॥ प्रासादस्योर्ध्वमाननिर्णयो प्रथमप्रकाशः ॥

अथ मङ्गलाचरणम्–

*श्रीगजाननं श्रीकरञ्जेश्वर्यैनमः श्रीभानूराजते*

*ॐ नमो गणेश भारतीभ्यां (नमो नमः) ॥*

**भुवनेश्वर मानस्य ( मान्यस्य ? ) तत्प्रणीताद्यः तन्त्रतः ।**

**विधीयते सुरागारशिखरार्थं कलानिधिः ॥ 1 ॥**

**बहुधा शिखराणिस्युरेकस्था ( स्फेरकस्या! ) पित्तलस्य हि ।**

**प्रासाद जातयो नामान्यतः ऊर्ध्वानुसारतः ॥ 2 ॥**

अपराजिते (विश्वकर्मोवाच)–

**अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रासादस्योर्ध्वलक्षणम् ।**

**तलच्छन्दविभक्त्या तदूर्ध्वमानं विशेषतः ॥ 3 ॥[1]**

**विभक्ते तु तलच्छन्दे उर्ध्वं शिखरमाचरेत् ।**

**शिखरे शुकाग्रसूत्र उच्छ्रयं मण्डपस्य तु ॥ 4 ॥[2]**

प्रासादाग्रे शुकोयद्वन्मण्डपाग्रे चतुष्किका ।
जगत्योत्तानपट्टे च शालाद्याः परितः क्रमे ॥ 5 ॥[3]
जगत्यां लापयेच्छालां शालायामपि मण्डपः ।
मण्डपे नैव प्रासादो ग्रस्तः स्याद्दोपकारकः ॥ 6 ॥[4]
निरन्धारेषु सर्वेषु नागरे मिश्रकेऽपिवा ।
विमाननागरच्छन्दे कुर्याद्विमानपुष्पके ॥ 7 ॥[5]
यन्मानं भित्तिपृथुत्वं तच्छृङ्गक्रममूर्ध्वतः ।
गर्भमध्ये यदारेखा महामर्म क्षयावहा ॥ 8 ॥[6]
एकद्वित्रिक्रमाणिस्यु भित्तिमध्ये यथोत्तरम् ।
अधिकानि न कुर्वीत पीडिते च कुलक्षयः ॥ 9 ॥[7]
एकादिग्रहसङ्ख्यांतोरुशृङ्गाणि क्रमोद्गते ।
अधःस्थले नभवेल्लुप्तमुरुशृङ्गं तु पश्चिमम् ॥ 10 ॥[8]
सप्त-सप्त ह्य( सप्तात्द्य ? )धोलुप्ता ऊर्ध्वस्थांशास्त्रयोदश ।
एकवृद्ध्या घण्टबाह्ये स्कन्धे स्कन्धं तु कारयेत् ॥ 11 ॥
एकैकम् युक्ति सूत्रेण कर्त्तव्यं ( कुर्याद्रै ? ) सर्वकामदम् ।
सूत्रयित्वा क्रमयोगं ( क्रमं योग ? ) मूलसूत्रानुसारतः ॥ 12 ॥
छन्दभेदो न कर्त्तव्यो जातिभेदो न वा पुनः ।
उत्पद्यते ( उद्भवेच्च ? ) महामर्म जातिभेदे कृते सति ॥ 13 ॥
यदा न सहसछन्द आद्ये नाद्ये प्रतिष्ठिते ।
तत्प्रासादफलं न स्यान्मोक्षकारो न विद्यते ॥ 14 ॥[9]
प्रासादे ( प्रासादस्य ? ) पुरतो भागे निर्वाणं उरुशृङ्गकम् ।

तस्मिन्नग्रेशुकोयंद्वकार्यमुरुशृङ्गाद्यनुक्रमात् ॥ 15 ॥[10]

एक$_{1}$ त्रि$_{3}$ पञ्च$_{5}$ ससा$_{7}$ ङ्क$_{9}$ सिंहस्थानानि कल्पयेत् ( कारयेत् ? )।

तस्यां ( तेषां ? ) विभक्तिसूत्रं तु कोलिकायामसूत्रतः ॥ 16 ॥

अञ्चिता$_{1}$ कुञ्चिता शस्या$_{2\ 3}$ त्रिधोक्तासा ( त्रिधोदित ? )क्रमागता।

मध्यस्था$_{4}$ भ्रमा$_{5}$ सभ्रमा$_{6}$ च षटकोल्यः परिकीर्तिताः ॥ 17 ॥

प्रासादे दशधा भक्ते मूलभित्तेर्विधीयते।

अञ्चिता तु द्विभागांशैः$_{2}$ कुञ्चिता त्रिभि$_{3}$ रेव सा ॥ 18 ॥[11]

शस्या प्रोक्ता चतुर्भागा$_{4}$ त्रिधोक्ते यं ( चोक्तं ? ) क्रमागता।

प्रासादपदमध्यस्था$_{4}$ भ्रमा सद्मत्रिभागतः ॥ 19 ॥

अर्धे तु सभ्रमा( संभ्रमा ? )$_{6}$कार्या( कोली ? )प्रासादस्य प्रमाणतः।

अग्रे कोली कपोलं तु शुकनासस्तु नासिका ॥ 20 ॥

सान्धारे मूलरेखा( स्तम्भरेखा तु ? ) च कर्त्तव्या मध्यकोष्ठके।

भ्रमणी बाह्यभित्तौ( त्ति ? ) च क्रमात्( क्रम ? ) सङ्ख्या प्रकल्पयेत् ॥ 21 ॥

शृङ्गोरुशृङ्गप्रत्यङ्ग गणयेदण्डकानिहि ( च ? )।

कर्णं तवाङ्गातिलकं कुर्यात्प्रासादभूषणम् ॥ 22 ॥[12]

कर्णं$_{1}$ रथं$_{2}$ प्रतिरथं$_{3}$ सुभद्रं$_{4}$ प्रतिभद्रकम्$_{5}$।

सलिलान्तरमार्गेण शुद्धान्येङ्गानि निर्दिशेत् ॥ 23 ॥[13]

इहैवाङ्गप्रमाणेन सपादम् शृङ्गमुच्छ्रयेत्।

स्कन्धस्याद्धोंदये घण्टा सर्वकामफलप्रदा ॥ 24 ॥

प्रहारांशं पुनर्दद्यात् पुनः शृङ्गाणि कारयेत्।

शृङ्गे-शृङ्गे च प्रासादं विभक्तमिव कल्पयेत् ॥ 25 ॥

समस्तानामधोभागं कुर्यात्तच्छाद्यं ( वि )भूषितम्।
अधःशृङ्गं पक्षभाङ्गे ऊर्ध्वशृङ्गोद्गमोद्गमम् ॥ 26 ॥
उरुशृङ्गं यदा लुप्तं रेखाकर्ण जलान्तरेः।
तत्र कारयितुः पीडा कर्तुश्चापि महद्भयम् ॥ 27 ॥
मूलशिलात उदये प्रासादे कलशान्तके।
भागे विभक्ते विंशत्या अधऊर्ध्व प्रकल्पयेत् ॥ 28 ॥
अष्टभागोदयो ज्येष्ठः सार्धमष्टौ च मध्यमः।
कन्यसे ( कनिष्ठो ? ) नवभिर्भागैस्त्रिधा मण्डोवरो मतः ॥ 29 ॥
शेषा ये ऊर्ध्वभागास्तैः कर्त्तव्यः शिखरोदयः ॥
इदं मानं समुद्दिष्टं प्रोक्तः( प्रयुक्तैः ? ) वास्तुवेदिभिः ॥ 30 ॥

इति श्रीसूत्रधार गोविन्दविरचितायां श्रीकलानिधौ
प्रासादोर्ध्वमाननिर्णयः प्रकाशः प्रथमः ॥ 1 ॥

## पाठ व विशेष सन्दर्भ

1. अपराजितपृच्छा से 138 प्रासोदस्योर्ध्वमाननिर्णयो नामाष्टत्रिंशदुत्तरशततमं सूत्रं

2. पाठान्तर- विभक्ते तु तलच्छन्दे शिखरोर्ध्वे तु कारयेत्। शिखरे शुकाग्रसूत्रे उच्छ्र्यो मण्डपस्य च ॥ 2 ॥

3. पाठान्तर- प्रासादकाग्रशुवन्मण्डपाग्रे चतुष्किका। जगत्युत्तानपट्टं च शालाद्याः परितः क्रमात् ॥ 3 ॥

4. पाठान्तर- जगत्यां लोपयेच्छालां शालायां मण्डपं तथा। मण्डपे नैव प्रासादो ग्रस्तश्चैद् दोषकारकः ॥ 4 ॥

5. अपराजिते लुप्तपाठः— एवमादिगुणाः प्रोक्ताः सूत्रशास्त्रार्थबोधकैः। विशिष्ट-गुणमाख्यास्ये प्रोक्तं वै वास्तुवेदिभिः ॥ 5

6. पाठान्तर- भित्तेःपृथुत्वे यन्मानं तच्छृङ्गक्रम उर्ध्वतः। गर्भमध्ये यदा रेखा महामर्म क्षयावहा ॥ 7 ॥

7. पाठान्तर- एकद्वित्रिक्रमा उक्ता भित्तिमध्ये यथोत्तरम्। अधिका नैव कर्तव्या पीडिते च कुलक्षयः ॥ 8 ॥

8. पाठान्तर- एकादिग्रहसङ्ख्यान्तमुरःशृङ्गं क्रमोद्गतम्। अधःस्थेन भवेल्लुसमुरः शृङ्गम् तु पश्चिमम् ॥ 9 ॥

9. पाठान्तर- यदि छन्दे नास्ति छन्दो नाऽऽद्यमाद्ये प्रतिष्ठितम्। तत्प्रासादफलं नास्ति ततो मोक्षो न विद्यते ॥ 13 ॥

10. पाठान्तर- प्रासादस्य पुरो भागे निर्वाणम् मूलशृङ्गकम्। तदग्रे शुकवत्कार्यमुरु-शृङ्गाद्यनुक्रमात् ॥ 14 ॥

11. पाठान्तर- प्रासादे दशधा भक्ते भूमिसीमा विचक्षणः। अञ्चिता च द्विभागा स्यात् त्रिभागा कुञ्चिता तथा। 17 ॥

12. पाठान्तरे- शृङ्गोरुशृङ्गप्रत्यङ्ग गणयेदण्डकानि च। सिंहकर्णे तवङ्ग तिलकं प्रासादभूषणम् ॥ 22 ॥

13. पाठान्तर- सलिलान्तरमार्गेण शुद्धान्येवाङ्गसङ्ख्यया।

## ॥ रेखार्णवनिर्णयं द्वितीयप्रकाशः ॥

विश्वकर्मोवाच-

अथ षोडश रेखानि-

अथातः सम्प्रक्ष्यामि रेखाभेदं पृथग्विधम् ( पृथक्विधं ? )।

सर्वाः कलाः समुत्पन्ना रेखाः षोडश कीर्तिताः ॥ 1 ॥

त्रिखण्डादौ खण्डवृद्ध्या खण्डान्यष्टादशावधि।

समा चाराः षोडशैव पृथक् जाता कलोन्मिताः ॥ 2 ॥

एवं रेखाभवन्त्येताः षट्पञ्चाशच्छतद्वयम्$_{256}$ ॥[1]

शशिनी$_{1}$ शांतिनी$_{2}$ चैव लक्ष्मिणी$_{3}$ ( लक्ष्मी )

कामिनी$_{4}$ पुष्पिका$_{5}$ शुभा$_{6}$ ॥ 3 ॥

शान्ता$_{7}$ऽल्हादा$_{8}$ ( हिलादा ? ) कुमुदा$_{9}$

शाश्वता$_{10}$ शांतिकी$_{11}$ तथा।

विद्याशोधनिका$_{12}$ नाहानी$_{13}$

द्वीपिनी$_{14}$ सौम्य$_{15}$ रम्यके$_{16}$ ॥ 4 ॥[2]

एकैकस्याः इह छन्दे षोडशैव समुद्गताः ।[3]

शशिन्या मता रेखा त्रिखण्डाः षोडशोन्मिताः ॥ 5 ॥[4]

शान्तिन्याद्याश्चतुष्खण्डाः षोडशैव प्रकीर्तिताः ।

लक्ष्म्याद्याः पञ्चखण्डान्ताः षटखण्डाः कामिनी मुखाः ॥ 6 ॥[5]

पुष्पिण्याद्याः सप्तखण्डा अष्टखण्डाः शुभादिकाः ।

शान्ताद्या ग्रहखण्डास्ता आल्हा( अहिला ? )दिकादश ॥ 7 ॥[6]

कुमुदाद्या रुद्रखण्डाः$_{11}$ सुखासन्यादिकास्ततः ।[7]

तिथिखण्डा नाहिन्याद्याः$_{15}$ द्वीपिन्याद्याः कलो$_{16}$( न्मिताः ) ॥ 8 ॥[8]

शान्तिक्याद्या( ? ) विश्व$_{13}$खण्डा विद्याशोधिनिकादिकाः ।

सौम्याद्याः सप्तदशभिर्वस्वेकैर$_{18}$ मृतादिकाः ॥ 9 ॥[9]

रेखाः पृथुत्वादुदयः सपाद( ा ? )ः कर्णतोऽपि वा ।

दिग्भक्ते( दशभक्ते ? ) च तलच्छन्दे स्कन्धं कुर्यात्षडंशकम् ॥ 10 ॥

स्कन्धस्थाने कलाचारो रेखानामत्र सिध्यति ।[10]

समः$_{1}$ सपादः$_{\text{1।}}$ सार्द्धश्च$_{\text{1॥}}$ पादोनो द्विगुण$_{\text{1।।।}}$स्तथा ॥ 11 ॥

द्विगुणः$_{2}$श्च सपादौ द्वौ सार्द्धौ$_{\text{2।}}$

सार्द्ध ह्यं$_{\text{2॥}}$ घ्न्यून सगुणाः$_{3}$स्त्रयः( श्रीः ? ) ।[11]

त्रि$_{3}$ गुणोऽथ( गुणेथ ? )सपादोऽ$_{\text{3।}}$ सौ सार्द्धः$_{\text{3॥}}$ पादोनवेदतः$_{\text{3।।।}}$ ॥ 12 ॥

चतुर्गुणः$_{4}$ सपादोऽसौ$_{\text{4।}}$ सार्द्धः$_{\text{4॥}}$ पादोनपञ्च$_{\text{4।।।}}$ भिः( कः ? ) ।

इति षोडशधा चारं त्रिखण्डाद्यासु लक्षयेत् ॥ 13 ॥

अष्टाद्या( दा ? )वष्टषष्ठ्यन्तं$_{68}$ चतुर्वृद्ध्या कलाः क्रमात् ।

न्यसेद्रेखासु ताभ्यस्स्युः षट्पञ्चा( श )च्छतद्वयम् ॥ 14 ॥

त्रिखण्डायां तु रेखायामादिखण्डे( ड ? ) कलाष्टकम्$_{8}$ ।

अष्टद्वितीये तृतीये ( तार्तीये ) अष्टमा सम चारिका ॥ 15 ॥[12]

चतुर्विंशतिभक्ते स्यात् स्कन्धेस्याः समचारिका ।[13]

स्कन्धेधिष्ण्यांशकै$_{27}$र्भक्ते वस्व$_{8}$ङ्क$_{9}$ दश$_{10}$ सम्मिताः ॥ 16 ॥
क्रमात्कलास्त्रिखण्डेषु सपाद$_{11}$चारिका तु सा ।
स्कन्धे तु त्रिंश$_{30}$दंशे च वसु$_{8}$ दिक$_{10}$ द्वादशो$_{12}$न्मिताः ॥ 17 ॥
विषु खण्डेषु$_{1}$ स्यांसा सार्धचाराः$_{1\|}$ प्रकीर्तिताः ।[14]
स्कन्धे कलास्त्रयस्त्रिंश$_{33}$द्यत्र खण्डेष्वपि क्रमात् ॥ 18 ॥
वसु$_{8}$रुद्रे$_{11}$न्द्र$_{14}$सङ्ख्या सा पादोन द्विक( घ्न ? )$_{1\|\|}$चारिकाः ।
स्कन्धे षटत्रिंश$_{36}$ दंशे च वसु$_{8}$ सूर्य$_{12}$ द्विरष्ट$_{16}$भिः ॥ 19 ॥
स्कन्धे तु नवरामांशे$_{39}$ऽष्ट$_{8}$ विश्वा$_{13}$ष्टादशो$_{18}$न्मिताः ।
अधः खण्डे तु पञ्चार ऊर्ध्व खण्डेऽप्यसौ भवेत् ॥ 20 ॥[15]
त्रिखण्डादौ खण्डवृद्ध्याऽष्टादशखण्डका$_{18}$वधिः ।
आदिखण्डे चतुर्वृद्धिरू( ऊ ? )र्ध्वखण्डेषु तद्गुणः( T ? ) ॥ 21 ॥
प्रतिखण्डे षोडशभिः
षट्पञ्चाशच्छतद्वयम्$_{256}$ ।
स्कन्धस्थाने कलाः पञ्च रेखाणां
तु गुणोदिताः( समादिका ? ) ॥ 22 ॥
सिद्धा तुर्या कृता रेखा तदूर्ध्वामलसारिका ।[16]
विषमा भूमिका( : ) कार्या न शस्यन्ते समास्तु ताः ॥ 23 ॥
द्वयोः प्ररथयोर्मध्ये वृत्तमामलसारकम् ।

अथ शिखरभेदात्प्रासादाः–

नागरे$_{1}$ लतिने$_{2}$ कुर्यात्सान्धारे$_{3}$ष्वपि ( चैव ? ) मिश्रके$_{4}$ ॥ 24 ॥
विमाननागरच्छन्दे$_{5}$ कुर्याद्विमान पुष्पके$_{6}$ ।[17]

विमाने$_7$ भूमिजे$_8$ चैव वृत्ते$_9$ चाकर्णिकां$_{10}$ तके$_{11}$ ।। 25 ।।
द्राविडेषुः$_{12}$ प्रयोक्तव्यः स तु रेखानुरूपकः ।[18]
वराटे तु ( विराटेषु ? )भवेद्घण्टा मन्दार कुमुदा$_{13}$ कृतिः ।। 26 ।।[19]
वलभीषु$_{14}$ च सर्वासु गजपृष्ठाकृतिस्तथा ।
सिंहावलोकने कुर्याद्घण्टा मन्दार पुष्पवत् ।। 27 ।।[20]
एवं घण्टोपसङ्ख्यानं प्रयुक्तं वास्तुवेदिभिः ।[21]
नागरे( नागरी ? ) लतिने रेखा सान्धारे मिश्रके तथा ।। 28 ।।
लम्बना ( लछना ? ) सूत्रयोगेन रेखा भवति नागरी ।
कथिता गर्भमाधार्य विमाने भूमिजे तथा ।। 29 ।।
वराटे द्राविडे चैव प्रशस्ता गर्भमार्गतः ।
चतुर्विधा भवेद्रेखा विमाने भूमिजे तथा ।। 30 ।।
वराटे( विराटे ? ) द्राविडे कार्याच्छन्दे विमान नागरे ।
विमानपुष्पके तद्वद्वलभीष्वपि कामदा ।। 31 ।।
लाञ्छना सूत्रयोगेन रेखासूत्र द्वयाङ्किता ।
वेणुकोशोद्भवा रेखा कलाभेदक्रमादपि ।। 32 ।।
नागरे लतिने कार्या सान्धारेऽप्यथ मिश्रके ।
दारुजेषु रथारोहे प्रशस्ता सर्वकामदा( : ? ) ।। 33 ।।
शिखाप्रान्ते भवेद्रेखा घण्टान्ता वाऽप्यथोच्यते ।
स्कन्धान्ता यदि वा( च तथा ? ) प्रोक्ता अन्यथा दोषकारणम् ।। 34 ।।

इति श्रीसूत्रधार गोविन्द विरचितायां श्रीकलानिधौ
रेखार्णव निर्णयप्रकाशोद्वितीयः ।। 2 ।।

## पाठ व विशेष सन्दर्भ

1. पाठान्तर- त्रिखण्डादौ खण्डवृद्ध्या खण्डान्यष्टादशावधि। षोडशैव समा चाराः कलादौ परिकीर्तिताः ॥ अष्टादावष्टषष्ठ्यन्तं चतुर्वृद्धिक्रमेण तु। रेखाश्चैवं प्रयोक्तव्याः षटपञ्चाशच्छतद्वयम्॥ अपराजिते 139, 2-3

2. पाठान्तर- शशिनी शान्तिनी चैव लक्ष्मिणी कामिनी तथा। पुष्पिणी च शुभा शांता आल्हादा कुमुदा तथा॥ सुखासनी शङ्खिनी च विद्याशोधनिका तथा। नाहिनी दीपिनी सोम्या अमृता षोडशी तथा॥ तथैव ॥ 4-5 ॥

3. पाठान्तर- एकैकस्याः स्वच्छन्देषु षोडशैव प्रकीर्तिताः। रेखाश्चैवं प्रयोक्तव्याः षट्पञ्चाशतच्छतद्वयम्॥ तथैव ॥ 6 ॥

4. पाठान्तर- शशिन्याद्यास्त्रिखण्डाश्च रेखा वै षोडशोन्मिताः।

5. पाठान्तर- लक्ष्मिण्याद्या षट्खण्डा रेखाः षोडश कीर्तिताः॥ तथैव ॥ 8 ॥

6. पाठान्तर- पुष्पिणाद्याः सप्तखण्डाः शुभाद्याश्चाष्टखण्डकाः। शान्ताद्या ग्रहखण्डाः आल्हादाद्या दशखण्डकाः॥

7. इत्यमनन्तरे एषां श्लोका- शङ्खिन्याद्या विश्वखण्डा विद्याशोधादिकास्ततः॥ तथैव ॥ 10 ॥

8. पाठान्तर- नाहिन्याद्यास्तिथिखण्डा दीपिन्याद्याः कलोन्मिताः। तथैव ॥ 11 ॥

9. इत्यमनन्तरे एषां श्लोकाधिका- शशिन्याद्या अमृतान्ताः षोडशैव प्रकीर्तिताः। एकैकस्याः स्वच्छन्देषु षोडशैव विनिर्गताः॥ तथैव ॥ 12 ॥

10. पाठान्तर- स्कन्धस्थाने कलाचारो रेखान्तं साधयेत्तथा। तथैव ॥ 15 ॥

11. पाठान्तर- द्विगुणश्च सपादोऽसौ सार्द्धौ पादोनकास्त्रयः।

12. पाठान्तर- द्वितीये च तृतीये च अष्टौ चाराः समा इमे॥ तथैव॥ 19 ॥; इत्यमन्तरे एषा श्लोकाधिकः-षोडशेषु त्रिखण्डासु आदिखण्डे कलाष्टकम्। तथैव ॥ 20 ॥

13. पाठान्तर च इत्यमन्तरे एषां श्लोकाधिकः- चतुर्विंशतिधा स्कन्धे समचार समुच्छ्रितिः ॥ प्रथमाया आदिखण्डे कला अष्ट प्रयोजिताः। द्वितीय वसुसङ्ख्याश्च तृतीयेष्टौ तथैव च॥ चतुर्विंशतिकाश्चैव समा चाराः प्रकीर्तिताः। द्वितीया च भवेद्रेखा सपादचारी

संज्ञिता ॥ तथैव ॥ 20-22 ॥

14. पाठान्तर- भक्ते स्कन्धे च त्रिशद्धा भवेद्रेखा तृतीयका। प्रथमेऽष्ट दिगूर्ध्वे च स्कन्धे द्वादश चोन्मिताः ॥ तथैव ॥ 24 ॥

15. इत्यमनन्तरे एषां पाठाधिकः- समं सा लभते चारं सपादं वा पदाधिकम् ॥ समं सपादं सार्द्धं वा यावत्पादोनपञ्चकम्। तथैव ॥ 27-28 ॥

16. पाठान्तर- सिद्धा तुर्या कृता रेखा ऊर्ध्वे चामलसारिका ॥ तथैव ॥ 30 ॥

17. पाठान्तर- विमाननागरच्छन्दे विमानपुष्पके तथा ॥ तथैव ॥ 32 ॥

18. पाठान्तर- द्राविडे तु तथा चैवं तं तु रेखानुरूपकम् ॥ तथैव ॥ 33 ॥

19. पाठान्तर- विराटेषु भवेद् घण्टा यादृग्मन्दारपुष्पकम्। तथैव ॥ 34 ॥

20. पाठान्तर- नागरघण्टाकृतिकां कुर्यात् सिंहावलोकने। तथैव ॥ 35 ॥

21. पाठान्तर- घण्टा चैवमुपाख्याता प्रयुक्ता वास्तुवेदिभिः ॥ तथैव ॥ 35 ॥

## ॥ अष्टादशखण्डारेखार्णवनिर्णयो तृतीयप्रकाशः ॥

विश्वकर्मोवाच-

त्रिखण्डायां शशिन्याद्याः सञ्ज्ञारेखास्तु या मताः ।[1]
तत्र त्रिखण्डादितोष्टादश खण्डावधि क्रमात् ॥ 1 ॥
कलाष्टका चतुर्वृद्ध्यात्यधः खण्डगता कलाः ।
ततः समः सपादादि पादानेषु$_{4111}$ गुणावधिः ॥ 2 ॥
चारः योगेन जायन्ते षट्पञ्चाशच्छतद्वयम्$_{256}$ ।
कलानां साधना चारं स्कन्धस्थाने स्फुटी भवेत् ॥ 3 ॥
लम्बना( लाञ्छना ? ) सूत्रयोगेन भवेद्रेखा तु नागरी ।
घण्टिकायां क्रमयोगे विमाने भूमिजेऽथवा ॥ 4 ॥
नामानि गुणदोषांश्च रेखाणां कथयाम्यतः ।
शशिनी$_1$ शीतला$_2$ सौम्या$_3$ शान्ता$_4$ चैव मनोरमा$_5$ ॥ 5 ॥
उमा( शुभा ? )$_6$ मनोभवा$_7$ वीरा$_8$ कुमुदा$_9$ पद्मशेखरा$_{10}$ ।
ललिता$_{11}$ लीलावती$_{12}$ चैव
त्रिदशा$_{13}$ पूर्णमण्डला$_{14}$ ॥ 6 ॥
पूर्णभद्रा$_{15}$ च भद्राङ्गी$_{16}$ त्रिखण्डाः
षोडशोदिताः( षोडशैव प्रकीर्तिताः ? ) ।

इति त्रिखण्डाः (16)

शान्तिनी च शुभा शान्ता त्रिदिवा देवदुर्लभा ॥ 7 ॥

वीभत्सा च शिवा सौम्या वीरभद्रा नारायणी।

सुषिरा शेखरा रम्या पूर्णा च पूर्णभद्रिका ॥ 8 ॥

विजया तत्र विज्ञेया चतुःखण्डास्तु-

षोडशः( द्वात्रिंशच्चैव सङ्ख्यया )।

इति चतुष्खण्डाः (16)

लक्ष्मिणी ( लक्ष्मी ? ) श्रीः सम्भवा च

विदूरा ( तद्विद्विप्रभा ? ) पूर्णमण्डला ॥ 9 ॥

सुशीला ( सुगन्धा ? ) मानसी शैला ( नन्दा )

नन्दाक्षी कौतुका ( कौमुदी ? )।

शान्तिर्लाभा च कल्याणी सुभद्रा च भद्रेश्वरी ॥ 10 ॥

( अष्टचत्वारिंशद्रेखा इत्थं चैव प्रकीर्तिताः । )

इति पञ्चखण्डाः (16)

कामिनी कमला पद्मा सम्भ्रमा भ्रमशेखरा।

सुभद्रा ( शुभा च ? ) सारसम्भूता वैदेवी राजशेखरा ॥ 11 ॥

गान्धारी गन्धर्वा वृत्ता तिलकाः त्रैलोक्यसुन्दरी( लोकसुन्दरी ? )।

महाभद्रेंद्र त्रिखण्डाश्चतुःषष्टि स्युरैक्यतः ॥ 12 ॥[2]

इति षट्खण्डाः (16)

पुष्पिता पुष्पिका चम्पा स( ा ? )महा

कान्तिलाद्भुता( तिलकाद्भुता ? )।

सिद्धा सिद्धाङ्गी स( स्व ? )रूपा क्रीडामणि-

रथापरा( स्तथापरा )॥ 13 ॥

( नरनारा नरेश्वरी विरूपाक्षा महोद्भवा।

सिद्धांसा सर्वमण्डला अशीतिः सङ्ख्यया मताः ॥ )

इति सप्तखण्डाः (16)

शुभा च शीतला गन्धा मालती हर्म्यसंयुता।

मेघा ( माह्यामो ? ) च पवन्नाजा( मेघपदाऽनुजा ? ) कृष्णा

च निर्मला परा ॥ 14 ॥

तेजाः प्रतापस्तेज( ा )श्च कीर्त्यानन्दका

( कीर्तिरान्दका ? ) तथा।

सम्भृता च भि ( ताश्च ) विज्ञेया( : ) वसु खण्डास्तु

षोडश ( षण्णवतिश्च सङ्ख्यया ) ॥ 15 ॥

इति अष्टखण्डाः (16)

शान्ता च मुकुला नन्दा श्रिया भद्रा च सम्भवा( नन्दना ? )।

शोभना सुभद्राख्या( रम्या ? ) सुता च कुलनन्दिनी ॥ 16 ॥

गम्भीरा मधुरा ( े ? ) चैव ( विव ? ) ( शेखरा )

शे( शि ? )खरोन्नता।

महानीला रत्नचला इति सूर्योत्तरं शतं ॥ 17 ॥[3]

इति नवखण्डाः (16)

आल्हादा ( अहिलादा ? ) श्रिया नन्दा गोमती नामसुन्दरी।

सुभद्रा भद्रिका भद्रा भद्राङ्गा भद्रमालिनी ॥ 18 ॥

सम्भूता भूतशरदा पताका कीर्तिवर्धिनी।

माहेन्द्री सुन्दराख्याता दशखण्डास्तु

षोडश( अष्टाविंशोत्तरं शतम् ? ) ॥ 19 ॥

इति दशखण्डाः (16)

कुमुदा भद्रका ( ध्वजा ) ध्वजाक्षी मकरध्वजा ।

सुपताका वीरभद्रा रूपभद्रा विनायका( : ? ) ॥ 20 ॥

वीरा च विक्रमा रम्या मन्मथा देवसुन्दरी ।

उमा कनकेश्वरी च रुद्रखण्डास्तु षोडश ॥ 21 ॥[4]

इत्यैकादशखण्डाः (16)

शाश्वता ( ी ? ) वरदा र( म्या ) सुन्दरा

मोदमोदिका( मोदामोदकी ? ) ।

शिवा च सर्वलम्भा च

विशा( वा ? )ला कुलनायका ॥ 22 ॥

शिम्भा ( शान्ता ? ) शिवतमा

दिव्या शिवाङ्गना विश्वेश्वरी ।

विश्वरूपा समाख्याता रेखा द्वादश खण्डिका ॥ 23 ॥[5]

इति द्वादशखण्डाः (16)

शान्तिकी विमला सूर्या वर्धमाना( वर्धना ? ) विजया तथा ।

वाञ्छिता वंशोद्भवा वंशभूतास्तु रेखिता ॥ 24 ॥

वंशताराधिवास्या च वश्या माना शिखोद्भवा ।

वांस्या वसंतोद्भवा( वंशोद्भवा च ? )

षट्सप्तत्युत्तरम् ( रेखाति षट्सप्तोशतरं ? ) शतम् ॥ 25 ॥

इति त्रयोदशखण्डाः (16)

विद्याशोधनिका रम्या गौरी

हंसी( हंस ? ) सरस्वती।

सारङ्गी चैव सौरम्याः शुकाग्रा( : ? )शोक

शौचकी ( मेव च ? ) ॥ 26 ॥

कनका कनकावती( कनकावंती ? )

कन्दर्पी कन्दर्पाश्विनी( कन्दर्पाश्रिता ? )।

कुंभिका गजमालिन्या गजाङ्ग शेखरा ॥ 27 ॥[6]

इति चतुर्दशखण्डाः (16)

मन्दनी रत्नगर्भा च राज्ञी गजेश्वरी तथा।

शान्ता मनोज्ञा नन्दा द्वीपी नान्दी सन्निभा ॥ 28 ॥

उदिता उग्रतेजा च सुभद्रा नन्दिनी।

प्रियवक्त्रा समाख्याता तिथिखण्डासु षोडश ॥ 29 ॥[7]

इति पञ्चदशखण्डाः (16)

द्वीपिनी सिंहनी सिंही सिंहरूपा सिंहोन्नता।

सिंहग्रीवा च सिंहा च ( चैश्च ? ) सिंहाख्या च सिंहेश्वरी ॥ 30 ॥

महानादा नादवती सिंहनादा नादोद्भवा।

सिंहाङ्गना ( सिंहगता ? ) च ( तथा ? ) सिद्धा

षोडशी सकलेश्वरी ॥ 31 ॥[8]

इति षोडशखण्डाः (16)

सौम्या नारायणी चैव रम्या नरा नरोत्तमः।

नरेश्वरी नराज्ञा च नराङ्गा च नृत्येश्वरी ॥ 32 ॥

( वीरवती वीराङ्गी महावीरा वीरनायका ।

विभत्सा च सती शान्ता चत्वारिंशच्छतद्वयम् ॥ 33 ॥ )

इति सप्तदशखण्डाः (16)

रम्या रम्येश्वरी गङ्गा कुमुदा कुमुदशेखरी( ा ? ) ।

वीभत्सा पार्थिवा ज्ञेया कान्ता चैव मनोहरी ॥ 34 ॥

स्वरूपा विक्र( ा ? )मा शान्ता मनोज्ञा सर्वतोमुखी ।

यज्ञभद्रा सुखासीना ( सुखंमीना ? ) प्रासादं शिखरे मता ॥ 35 ॥

चन्द्रकलाः समुत्पन्ना षटपञ्चाशच्छतद्वयम्$_{256}$ ॥

( अष्टादशस्कन्धस्थाने उत्पन्ना हलकादिकाः ।

एकादिकोद्भवा रेखाः प्रासादशिखरे मताः ॥ )

इत्यष्टादशखण्डाः (16)

इति श्रीसूत्रधार गोविन्दविरचितायां श्रीकलानिधौ

अष्टादशखण्डारेखार्णवनिर्णयोप्रकाशोतृतीयः ॥ 3 ॥

### पाठ व विशेष सन्दर्भ

1. अपराजिते प्रकाशित पाठारम्भे एषां पञ्चश्लोकाधिकः– विश्वकर्मोवाच– समः सपादः सार्धश्च पादोनद्वय एव च । द्विगुणश्चारः प्रकर्त्तव्यः सपादः सार्धद्विगुणः ॥ पादोनत्रयश्च तथा त्रयश्चैव पदाधिकः । सार्धत्रय पादोनचतुष्कं च चतुर्गुणम् ॥ सपादं सार्धं चतुष्कंतथा पादोनपञ्चकम् । त्रिखण्डादावष्टादशान्ता चैषां युक्तिर्विधीयते ॥ त्रिखण्डादौ कलाश्चाष्ट आद्यंते चतुर्वर्द्धयेत् । अष्टादश्यामष्टषष्टी प्रथमाधः खण्डयोजिता ॥ समसपादादिक्रमैर्यावत् पादोनपञ्चकम् । स्कन्धस्थाने चारः कलासाधना क्रमयोगतः ॥ अपराजिते चन्द्रकलादि षट्पञ्चाशच्छतद्वयरेखानिर्णयोनाम चत्वारिंशदुत्तरशततमं$_{140}$ सूत्रम् 1–5)

2. पाठान्तर- महाभद्रा तथा चैन्द्रा चतुःषष्टिः स्युरैक्यतः ॥ तथैव ॥ 15 ॥

3. पाठान्तर- महानीला रत्नाचला शतं च द्वादशोत्तरम् ॥ तथैव ॥ 21 ॥

4. पाठान्तर- उग्रा कनकेशी चतुश्चत्वारिंशोत्तरम् शतम् ॥ तथैव ॥ 25 ॥

5. पाठान्तर- विश्वरूपा समाख्याता षष्ठ्युत्तरशतं तथा ॥ तथैव ॥ 27 ॥

6. पाठान्तर- कमला कलहंसी च द्विनवत्युत्तरं शतम् ॥ तथैव ॥ 31 ॥

7. पाठान्तर- नाहिनी हस्तिनी चैव कुम्भिका गजमालिनी। गजी गजाङ्गा शेखरी राज्ञी चैव गजेश्वरी ॥ रत्ना रत्नगर्भा माल्या जया चोग्रतेजास्तथा। प्रियावक्त्रा समाख्याता अष्टोत्तरशतद्वयम् ॥ तथैव ॥ 32–33 ॥

8. इत्यमनन्तरे एषां श्लोकाधिकः- समाख्याताश्चैव चतुर्विंशोत्तरशतद्वयम् ॥ 36 ॥

## ॥ रेखाभेदस्कन्धोदयकलाभेदश्चतुर्थप्रकाशः ॥

विश्कर्मोवाच-

सव्यासं शिखरं कार्यं सकलाः शिखरोदयः ।
व्यासस्य कर्णयोर्मध्ये सङ्ख्यायाः पञ्चविंशति ॥ 1 ॥[1]
नामानि कथयिष्यामि सव्यासादेर्यथाक्रमात् ( क्रमम् ? ) ।
सव्यासा शोभना भद्रा सुरूपा सुमनोरमा ॥ 2 ॥
शुभा चैव ( सुतश्चैव ? ) तथा शान्ता कौबेरी च सरस्वती ।
कौला च करवीरा च कुमुदा पद्मिनी तथा ॥ 3 ॥
कनका विकटा चैव ( रम्या च ) रमणी तथा ।
वसुन्धरा तथा हंसी विशाखा नन्दिनी ( मन्दिनी ? ) तथा ॥ 4 ॥
जया च विजया चैव सुमुखा च प्रियानना ।
इत्येताः ( प्रत्येताः ? ) कीर्तिता रेखाः सङ्ख्या पञ्चविंशति ॥ 5 ॥
उदयभेदोद्भवा रेखाः सपादकर्णमध्यतः ।

इत्युदयभेदोद्भवा रेखाः ।

पञ्चखण्डादौ( दि ? ) खण्डर्द्धयावदेकोनत्रिंशतिः ॥ 6 ॥[2]
खण्डचारे कला ज्ञेया अङ्कवृद्धि क्रमेण तु ( च ? ) ।[3]
पञ्चखण्डे कलाश्चैव सङ्ख्यया दशपञ्च च ॥ 7 ॥

( एकोनत्रिंशे पञ्च त्रिंशदुत्तरं चतुःशतम् ।
चन्द्रकल्पा कलावती कलधौता च रुधिरा । )
नलिनी माला( मालिनी ... ? ) कमला दुन्दुभिर्वनवेल्लिका ॥ 8 ॥
रत्नतूला वृन्दारका त्रिशिखा नन्ददाक्षका: ।
कौमोदिनी नयनं चक्रान्मत्ताक्षा शुचि शालया ॥ 9 ॥[4]
भ्राम्या वलिता मृगाक्षी द्वीपिन्या शशि कौमुदी ।
मञ्जरी पूर्णमाहेन्द्री पताकाक्षा प्रकीर्तिताः ॥ 10 ॥[5]
परात्रैलोक्य मोहिन्या विजया चैव नाम तु ।
पञ्चविंशति ते भेदाः कलारेखा इमे शुभाः ॥ 11 ॥[6]
पूर्वोक्ताः खण्डवृद्ध्या च ज्ञेया रेखामनेकधा ।
नानाभेदाः समाख्याताः सर्वकामफलप्रदाः ॥ 12 ॥

इति कलाभेदोद्भवा रेखाः ।

दशांशे मूल विस्तारे षड्भेदाङ्ग स्कन्धमाचरेत् ।[7]
पञ्चभागोऽथवा स्कन्धो भागो वामे च दक्षिणे ॥ 13 ॥
षड् बाह्ये ( बात्त्ये ? ) दोषदः प्रोक्तः पञ्चमध्ये न शस्यते ।
षट्पञ्चमध्यतः स्कन्धे ऊर्ध्वभागे जिनाङ्किते ॥ 14 ॥
विभक्तिसूत्रक्रमतः स्कन्धाः स्युः पञ्चविंशति ।[8]
समः शान्तः शुभः सौम्यो गन्धर्वः शङ्खवर्धनः ॥ 15 ॥
कीर्तिनन्दो महाभोगः सम्भ्रमो दिशिनायकः ।
रुद्रतेजाः सदाभ्यासो जनानन्दस्तथाद्रकः ॥ 16 ॥
यक्षो दक्षः क्षितिधरः समात्रः संयुतस्तथा ।

शेखरस्य प्रजापूर्णः( र्ण ? ) प्रवर्तश्च ( त्तस्य ? )
प्रघातकः ( प्रधानकः ? ) ॥ 17 ॥
रेखातिभूषणश्चैव( स्तद्वद्धि ? ) विजयानन्द( विंद ? ) इत्यमी।
स्कन्धास्तु नाम्ना( नामतो ? ) विज्ञेया( ज्ञेयाः ? )
सङ्ख्यया( सङ्ख्याताः ? ) पञ्चविंशतिः ॥ 18 ॥

इति श्रीसूत्रधारगोविन्दविरचितायां कलानिधौ
रेखाभेदस्कन्धभेदः प्रकाशश्चतुर्थः ॥ 4 ॥

V.99360

**पाठ व विशेष सन्दर्भ**

1. पाठान्तर– सव्यासं शिखरं कार्यं सकलः शिखरोच्छ्रयः। व्यासस्य कर्णयोर्मध्ये द्विघ्नं चैव त्रिभिर्हताः ॥ अपराजिते 141, 1 इत्यमनन्तरे एषां श्लोकाधिकः– सूत्ररेखोच्छ्रिता रेखा सङ्ख्यायां पञ्चविंशतिः। तथैव ॥ 2 ॥

2. पाठान्तर– पञ्चखण्डादौ खण्डद्ध्र्या एकोनत्रिंशकावधि। तथैव ॥ 7 ॥

3. इत्यमनन्तरे एषां श्लोकाधिकः– एकद्वित्रिचतुःपञ्चषट्सप्ताष्टक्रमोद्गताः। अनेन क्रमयोगेन एकोनत्रिंशकावधि ॥ तथैव ॥ 8 ॥

4. पाठान्तर– रत्नचूला वृन्दारका त्रिशिखा नन्दा कौमुदी। नयना चक्रा चोन्मत्ता विशाला विभ्रमा लता ॥ तथैव ॥ 11 ॥

5. पाठान्तर– मृगाक्षी द्वीपिनी शशी कौमुदी मञ्जरी तथा। पूर्णरम्या च माहेन्द्री कीर्तिपताका तत्परे ॥ तथैव ॥ 12 ॥

6. पाठान्तरे– त्रैलोक्यविजया चैव नामभिः पञ्चविंशतिः। कलारेखाः समाख्याताः सर्वकामफलप्रदाः ॥ तथैव ॥ 13 ॥

7. पाठान्तरे– दशधा मूलपृथुत्वे षडभागः स्कन्ध उच्यते। तथैव ॥ 14 ॥

8. इत्यमनन्तरे एषां श्लोकाधिकः– नामान्यनुक्रमात्तेषां कथये तव साम्प्रतम् ॥ तथैव ॥ 16 ॥

## ॥ रेखाकुण्डल्यानामः पञ्चमप्रकाशः ॥

तथा चमक्ष विवेककल्पलतायाम्-

अथ रेखाः

त्रिखण्डादौः खण्डवृद्ध्या यावत्खण्डान्यष्टादशः ।
समचाराः शशिन्याद्याः रेखाः स्युः षोडशोदिताः ॥ 1 ॥
तास्वष्टाद्यष्ट षष्ट्यन्तं चतुर्वृद्ध्या क्रमात् कलाः ।
शशिनीशान्ति लक्ष्मिणी( लक्ष्मीः ? ) कामिनीपुष्पिता शुभा ॥ 2 ॥
शान्ता आल्हादा( हिर्लादा ? ) कुमुदा शाश्वता शशिनी तथा ।
विद्याशोधनिका नन्दा द्वीपिनी सौम्यकाऽमृताः ॥ 3 ॥
एषां ( आसां ? ) पृथक्-पृथक् भेदाचार छन्देन षोडशः ।
त्रिचतुःपञ्चखण्डाद्याः प्रत्येक मिति षोडश ॥ 4 ॥
सर्वाः सम्भूय रेखास्तु षट्पञ्चाशच्छतद्वय ।
रेखा-रेखा व्यासत्पाद स्यात्कर्णमानेन चोदयः ॥ 5 ॥
रेखामूले तु दिग्भक्ते स्कन्धं कुर्यात्षडंशकम् ।
स्कन्धस्थाने कलाचारे रेखामानान्त साधिते ॥ 6 ॥
सचारः समपादः सार्धांशोनद्विघ्नोद्विसगुणाः ।
सपातपाता चतुर्घ्नः साधाद्विगुणांशो नः सराहतिः ॥ 7 ॥

इति षोडशधार चारशशिन्यांद्यासु लक्षयेत्।
तत्र समचारस्तु चाष्टाद्याः खण्डेषु सदशीकलाः ॥ 8 ॥
त्रिखण्डाद्याः स्कन्धखण्डे कला अष्टादिकास्तुयाः।
ताभ्यः क्रमाद्वित्रिचतुःपञ्चषट्कादि वर्धनात्॥ 10 ॥
आद्यात्सपात्साधादि सम्भवोत्रोर्ध्व खण्डके ॥ 11 ॥

तथा च (तदैव ?) ग्रन्थान्तरे-

त्रिखण्डाद्याः स्कन्धः खण्डेव चारोचोर्ध्व खण्डके।
तस्मात् सपादः सार्धार्धः चारमुक्तं सुलक्षयेत्॥ 12 ॥
आद्योष्टाद्याश्चतुर्वृद्ध्या सपादाद्याः स्युरूर्ध्वकैः।
स्कन्धस्थाने कला सङ्ख्या सपात्सार्धा द्विसंगुणाः ॥ 13 ॥
स्वेषु खण्डेषु यावन्त्यः स्तावत्यः स्कन्धगाः कलाः।
स्कन्धस्थाने भवेद्रेखा लाञ्छमा सूत्रयोगतः ॥ 14 ॥
विषमाभूमिका कार्या रेखाया न शुभाः समाः।
समाध्येवं कृता रेखामलसारस्तदूर्ध्वतः ॥ 15 ॥

अथ उदाहरणम्-

त्रिखण्डायां तु रेखायां स्कन्धे जिनांशभाजिते।
त्रिषुखण्डेषु चाष्टकलाः स्युः समचारिका ॥ 16 ॥
स्कन्धेधिष्ण्यां 27 शकैर्भक्ते त्रिषुखण्डेष्वपि क्रमात्।
अष्टाङ्क दिक् कला यस्यां तासां वा समचारिका ॥ 17 ॥
त्रिंशद्विभक्ते स्कन्धेष्टदश द्वादश च क्रमात्।
स्कन्धेषु त्रिषुयाने वा सार्ध चारा तृतीयके ॥ 18 ॥

त्रयत्रिंशत्कला स्कन्धेष्टरुद्रेन्द्रकला क्रमात्।
त्रिषु खण्डेषु पादोन द्विचान्तराः सा चतुर्थिका ॥ 19 ॥
षट्त्रिभक्तेऽष्टसूर्यद्विरष्टभिः पञ्चमी क्रमात्।
त्रिषुखण्डेषु इत्याघुरुद्रांशेन कलांशकैः ॥ 20 ॥
यद्वाकृति च सा रेखा कलांशा साधयेत्सुधीः।
नामानि तासां ज्ञानीयादपराजितम् तन्त्रतः ॥ 21 ॥

इति षट्पञ्चाशद्विशत रेखा।

व्यासात्पाद शिखरं कर्णमानं हि चोदये।
सपाद कर्णयोर्मध्ये पञ्चविंशति भाजिते ॥ 22 ॥
त्रयोदय ( त्रतोदय ? ) विशेषेण रेखाः स्युः पञ्चविंशतिः।

इत्युदय भेदोद्भवा रेखाः।

पञ्चखण्डादि खण्डर्ध्यायावदेकोनत्रिंशतिः।
पञ्च खण्डादि रेखास्तु कला पञ्चदशादितः ॥ 23 ॥
एकद्वित्रिचतुःपञ्चषट्सप्ताष्टादि वर्धनात्।
क्रमेणाङ्कं द्विखण्डाया पञ्चरामचतुःकलाः ॥ 24 ॥ 435
कलाभेदोद्भवा एवं रेखाः स्युः पञ्चविंशतिः।

इति कलाभेदोद्भवा रेखाः।

अथ शशिन्यादि रेखाणां सुरव्येयायार्थ कुण्डलिका ॥ 25 ॥
त्रिखण्डाद्या सुविस्तारे त्र्याद्यंशाः षोडशायतौ।
मखं कास्तासु चाष्टादिवेदर्ध्याष्ट षडंशकम् ॥ 26 ॥
स्वां स्वानष्टादिकानं कानूर्ध्वोर्ध्वं सदशाः पुरा।

विलिख्याधस्थ पङ्क्तौ च तानेव सदशान् लिखेत् ॥ 27 ॥
क्रमादूर्ध्वोर्ध्व पङ्क्तिभ्यः एकद्वित्रादि वर्धनात् ।
ता सुपङ्क्त्यासुसारेण तिर्यङ्कान् लिखेत्सुधीः ॥ 28 ॥
सर्वास्वादौ विवृध्यांश तत्र खण्ड स्थिति लिखेत् ।
आद्यष्टादशखण्डान्तरेखाना मिति षोडशः ॥ 29 ॥
विंद्यात्समः सपादादि चाराणां कुण्डलीरिमाः ।
चतुरश्रीकृते क्षेत्रे षोडशांश विभाजिते ॥ 30 ॥
लिखेत्पूर्व जिनान्$_{24}$ कोष्टे जिनवृद्ध्या द्वितीयके ।
ऊर्ध्वार्ध्वयदङ्के जिनेभ्योष्टाष्टवर्द्धितैः ॥ 31 ॥
एभ्यस्तिर्यक् कर्तुरामर्तुदिग्भिस्तिथ्या तनु$_{21}$ द्वयैः ।
वसु युग्मैः$_{28}$ रसगुणैः$_{36}$ रंशरावेदे$_{45}$ शरेषुभिः$_{55}$ ॥ 32 ॥
षटषठ्या$_{66}$ हयै$_{78}$ रूपरन्ध्रकै$_{91}$ भूतरवेन्दु$_{105}$ भिः ।
खद्वेकैः$_{120}$ षटत्रिरूचैकश्च$_{136}$ रामभूतेन्दुभिः$_{153}$ क्रमात् ॥ 33 ॥
वृद्ध्याजिनादि कोष्टनां पङ्क्तिरङ्कैः प्रपूरयेत् ।
एवमस्यां प्रपूर्णाया भाग सौम्ये तथा परे ॥ 34 ॥
संवर्ध्यत्रादि खण्डानि लिखेच्चारान्मादिकान् ।
इयं प्रासाद रेखाणां स्कन्ध पार्श्वांश कुण्डली ॥ 35 ॥
जिनेभ्योष्टाष्ट वर्द्धितै रिति यदुक्तम् ( तद्वियति ) ।
जिनादितोष्टाष्टवृद्ध्या द्वात्रिंशत्खण्डयुगं क्रमात् ॥ 36 ॥
वस्वध्वय$_{48}$ षडपञ्चाश$_{66}$ च्चतुषष्टि$_{64}$ द्विसप्तति$_{72}$ ।
अष्टाशीतिः$_{88}$ षण्णवति$_{96}$ सयुगांशशतम्$_{104}$ ॥ 37 ॥

शतं सार्कः$_{112}$ सविंशांशं$_{120}$ साष्टाविंशं$_{128}$ षट्गुणेन्दवः$_{136}$ ।
रामर्तुदिग्भिः इरीसाध्यं कानामुत्त्पत्ति प्रकारमाह ॥ 38 ॥
त्रिभिस्त्रयायुताषट्स्युस्तच्चतुर्भिर्युता ।
दशते पञ्चभिः पञ्चदशते षड्भिश्चैक विंशतिः ॥ 39 ॥
कलान्तमनया रीत्या वृध्याङ्कानां समुद्भवः ।

इति स्कन्धांश कुण्डली ।

चतुरश्री कृते क्षेत्रे सत्पदशांश भाजिते ।
व्यासायोत्यो विहायैकां पङ्क्तिमङ्कान् लिखेत्सुधीः ॥ 40 ॥
अष्टादितोष्ट षष्टयान्तमधः पङ्क्तौ युगर्धितः ।
अष्टभ्यद्वादशभ्यश्च कलानख जिनादिभिः ॥ 41 ॥
द्वित्रिवेदेषु षट्सप्ताष्टादिवृध्योर्ध्वगाः क्रमात् ।
ऊर्ध्वोर्ध्वमध्य च रेखायाः पार्श्वे चारान् समोदयः ॥ 42 ॥
अधस्ता पङ्क्तौ खण्डानि त्रिभ्यस्त्वष्टादशावधिः ।
अस्यां कलाङ्काः खण्डेऽत्येधस्था आद्येन्त्यगाऽपि च ॥ 43 ॥

इत्युर्ध्वखण्ड कलाकुण्डली ।

श्रीः प्रासाद रेखा कुण्डल्यो ( लियो ? )विश्वकर्म मताश्रिताः ।
विवेककल्पलतायां अष्टमे प्रताने रेखा स्तबकः ॥ 44 ॥

इति श्रीसूत्रधारगोविन्दविरचितायां श्रीकलानिधौ
रेखाकुण्डली प्रकाशपञ्चमः ॥ 5 ॥

## ॥ गुणदोषरेखाविभक्तिकोशप्रकारनामषष्ठः प्रकाशः ॥

अथ रेखागुणदोषः

दशधा कथ्यते( कलिते ? ) वास्तौ कृत्वांश स्वर्धभाग दलहीनः ।
स्कन्धं स्यैते व्यासाश्चोत्तम मध्याधमा गर्दिताः ॥ 1 ॥[1]
ध्रुव विधुरांशैरन्तरमे तेषां भाजयेत् पृथग्भूयः ।
स्कन्धोदय रेखाणां ऐक्यं विदधित वास्तुनाम् ॥ 2 ॥
उद्धृत शिवक मनोरथ बाहुक वैचित्र्य गुह्यका भयदः ।
रवकन्त( ? ) विशाल वारण ( : ) पुष्पक दंष्ट्रा काकैलाः ॥ 3 ॥
यक्ष त्रिक् नागत्कौस्तुभ वृषभार्बुद( वृषभांकुर ? )
कमठ क्रुद्धकारितः ।
गोलक पुलक किरीटाः स्कन्धा सञ्ज्ञाभिरिति निगदिताः ॥ 4 ॥[2]
वास्तुकरा तु गर्भाधौ ( ममादौ ? ) क्षेत्रः
खण्डाकसु पञ्चया( पचया ? )भागाः ।
ऊर्ध्वं कलैका( क्य ? ) सङ्ख्याः षडमी
रेखान्वयाः( षट्रेखात्व्या ? ) प्रोक्ताः ॥ 5 ॥
खण्डोत्त्पतिः क्षेत्रात् खण्डादु-
पद्यते( खण्डात्पन्य ? ) कलाभागाः ।

प्रचय कलैका( क्य ? ) भागात् प्रचयादूर्ध्वाः शिशाः( ? )
सकलाम् ( प्रचयादध्र्वांशिगासकला ? ) ॥ 6 ॥[3]

रेखाज्ञानप्रशंसाः -

इयं सुगुरुशास्त्रतः स्फुटमधीत्य( प ? ) रेखार्णवं प्रयोज्ञति।
यः कृति विविधया रेखागणान् श्रियं भजति ॥ 7 ॥
वाञ्छितामखिलं लोकाः पूज्याग्रणी
स वसुधातले स्थपति वृन्दारकः ।
यो विदधाति विदित्वा त्रिदश
निवासे यथोदिता रेखा ॥ 8 ॥
स्थपतिरिहाः त्रिगुणाकोश सदशां शिखरः
चतुर्गुणं कोशेन सपादं शिखरं भवति।
पञ्चगुणेन सत्र्यंशः षट्गुणेन सकर्णं सप्तगुणेन
सार्धं अष्टगुणेन पादोन द्विगुणोदयं शिखरं भवति ॥ 9 ॥
स्व व्यासतः शिखरोदयः अमुपीहितस्य
च विबुधाः प्रसीदन्ति ॥ 9 ॥

फलाफलम्-

विदधा सृष्टममथितयद् इति रेखा प्रयोजितं वास्तु।
नित्यमनिष्टं राष्ट्रे दैवतजं नरपतेर्नगरे ॥ 10 ॥
निःसंज्ञान्वय हीना स्कन्धोदय वर्जितं तथा सप्त।
भग्नकलांशा चिपिटा स्थूला निम्नोन्नता वक्रा ॥ 11 ॥
दौर्गत्यं निर्नामा करोति कुलनाशमन्वय त्यागात्।

भविताम कालमृत्युं सस्कन्धोदय च्युता रेखा ॥ 12 ॥

क्षेत्रमृते दुर्भिक्षं ससा भवतीह भूरिरिपूं जननी ।

भग्न कलांशांनाथः चिपिटा सूचयति नृपभयम् ॥ 13 ॥

स्थानविनाशं स्थूलां करोति निम्नोन्नता महामारिम् ।

वक्राय यस्मिन् राष्ट्रे वक्राचरितास्तु तत्र विषयजनाः ॥ 14 ॥

अथ वेणुकोशादि–

त्रिचतुःपञ्चगुणीकृत्य सूत्रेणा लिख्यतुर्य करातद्यः ।

गूढे नन्दन सुप्रभ धन सञ्ज्ञा वेणुकोशा स्युः ॥ 15 ॥

षट्सप्ताष्टगुणी कृत सूत्रेणा कोशवर्त्तनः प्रोक्तः ।

अन्येषामऽपि नन्दन चन्द्रान न पुण्डरीक कृतिः ॥ 16 ॥

सर्वेषामऽपि शस्ताः प्रासादानां रथादि विन्यासाः ।

रेखामानं तथा च जयमते–

रेखा विस्तार माने तु सपादस्यादिहोदयः ।

त्रिभागसहितो वापि सार्धः कार्यो विचक्षणैः ॥ 17 ॥

रेखास्तिस्त्रः प्रकर्त्तव्या ज्येष्ठ-मध्यम-कन्यसाः ।[4]

षड्भाग स्कन्धः –

चतुर्हस्तादितो धानीयावत्पञ्चाशतः करान् ॥ 18 ॥

चतुर्विंशतिभागेन स्कन्धोवैयोजयेद्बुधः ।

तस्यार्धं नवभागैस्तु कर्त्तव्यं सुविचक्षणैः ॥ 19 ॥[5]

कोणस्तु भागाश्चत्वारि त्रयः प्रतिरथो मतः ।

भद्रार्धं भागयुग्मेन ततः संसाधयेत् कलाम् ॥[6]

वालपञ्जरम्-

रेखाभक्तिरियं चाथगद्यते वालपञ्जरैः ॥ 20 ॥

रेखा विस्तारमाने तु षट्विंशति पदभजेत् ( पदाङ्किते ? )।

कोणस्तु भाग चत्वा( ि)रः कार्य प्रतिरथास्त्रिभिः ॥ 21 ॥

स्याद्वालपञ्जरस्त द्वद्भद्रार्धं तु त्रिभिः पदैः ।

उदये पूर्वमानेन स्कन्ध षोडशभिर्भजेत् ॥ 22 ॥

स्कन्धहीनं च ( न ? ) कर्त्तव्यमधिकं किञ्चिदा ( ना )चरेत् ।[7]

स्कन्धम्-

स्कन्धाद्य( र्धे ? ) रुद्रभागे तु कोणोभाग चतुष्टयम् ॥ 23 ॥

रथास्त्रिभिः सार्धयुग्मं भागिको वालपञ्जरः ।

भद्रार्धं सार्धभागेस्यात्ततः संसाधयेत् कलाम् ॥ 24 ॥[8]

स्कन्धगुणदोष लक्षणम्-

स्कन्ध हीनं कुलोच्छेदं ( कुलर्च्छेदं ? ) मृत्युरोगभयावहम् ।

तस्मात्सर्व प्रयत्नेन स्कन्धाधिक्यं ( न ) प्रकल्पयेत् ॥ 25 ॥[9]

मूलकन्दे प्रविष्टे तु स्कन्धवेध इति स्मृतः ।

शिल्पिनां स्वामिनो घात स्कन्धवेधन संशयः ॥ 26 ॥

निर्गमो हस्त सङ्ख्यैर्वाधाङ्गुलै

( सङ्ख्यावैरङ्गुलै ? ) रूपमादितः ।

क्षोभयेत् स ( क्षोभयेत्तस्य ) पादोना

चापि विश्रुतः( विस्तृतिः ) ॥ 27 ॥[10]

तथा च प्रासादमण्डने-

चतुर्गुणेनसूत्रेण रेखामूलस्य विस्तरात्।
पद्मकोशं समालिख्य सपादः शिखरोदयः ॥ 28 ॥[11]

ग्रीवाऽमलसार च कलशम्-

स्कन्धाकोशान्तरे सप्तभक्ते ग्रीवा तु भागतः।
सार्धेनामलसारेण पद्मछत्रं तु सार्धतः ॥ 29 ॥
त्रिभाग उच्चकलशो द्विभागस्तस्य विस्तरः।
( प्रासादस्याष्टमांशेन पृथुत्वं कलशाण्डकम् ॥ )

अपराजिते( ?) वैराज्याद्यधिकारेप्येवं भोजमते-

अर्धषष्ठांशविस्तारः स्कन्धः कैलाससञ्ज्ञिते। 30 ॥
अस्मिन्नन्तरपत्रे तु ( त् ? ) सूत्रं दत्त्वा सुताडितम्( सुतानितं ? )।
त्रिगुणेन लिखेत् तेन वेणु( मेण ? )कोशं मनोरमम् ॥ 31 ॥[12]
पञ्चव्यासेन सूत्रेण पद्मकोशं समालिखेत्।
ततिनुयोद्भवेद्रेखां ( लतितुयोभवेदेषां ? )
लताभिस्तं प्रकल्पयेत् ॥ 32 ॥

तथा च (स्वस्तिकम्)-

शिखरस्योच्छ्रयो भागैरेकादशभिरिष्यते।
सर्वेषामेव लतिना मात्रिधा ( तीनामस्कन्धा द्वि ? )
द्विगुणो हि सः ॥ 33 ॥
विस्तरं त्रिगुणं सूत्रं स्कन्धाद्यर्धाऽपि षड्गुणः।
सुतानितं समाकृष्य पद्मकोशं समालिखेत् ॥ 34 ॥[13]

तथा चाह-

त्रिगुणेन च सूत्रेण पद्मकोशं समालिखेत्।

स्कन्धकोशान्तरं चास्य भागैः( भागं च ? )प्रविभजेत्त्रिभिः ॥ 35 ॥

भवेद्( भागाद्? ) ग्रीवार्धभागेन भागेनामलसारकम् ।

पद्मशीर्षं च भागार्धं भागेन कलशस्य च ॥ 36 ॥

रुचक तत्रैव ।[14]

केसर्या-

षडभागे( षट्भागं ? ) शिखरं मूले शेषां( शक )समुच्छ्रितम्।

तस्योच्छ्रयं त्रिधा कृत्वा वेणुकोशं समालिखेत्॥ 37 ॥

स्कन्धकोशान्तरं तस्या चतुर्धा विभजेत्ततः।

पद्मशीर्षं तथा ग्रीवां सार्धेनांशेन कारयेत्॥ 38 ॥

कुर्याद् भागेन भागेन कुम्भ चामलसारकम्।

भागार्धेन प्रकुर्वीत तदूर्ध्वे बीजपूरकम्( : ? )॥ 39 ॥

( प्रासादः कैसरी नाम सर्वतः सन्ततिप्रियः। )[15]

तथा च-

विभजेच्छिखरं त्रेधाभागैर्विस्तृतमष्टभिः।

समुच्छ्रितं तु दशभिर्विधेयमऽपि सुन्दरम्॥ 40 ॥

चतुर्गुणेन सूत्रेण वेणुकोशं समालिखेत्।

स्कन्धकोशान्तरम् चास्य त्रिभिर्भागैर्विभाजयेत्॥ 41 ॥

इति नन्दिशालः ।[16]

तथा मेरुः

शिखरं दशविस्तारं भागद्वादशकोच्छ्रितम्( च्छ्रयं ? )।

चतुर्गुणेन् सूत्रेण वेणुकोशं समालिखेत् ॥ 42 ॥
स्कन्धकोशान्तर मिति यन्मानं पूर्वेणापेरुः ।[17]
पृथक् सूत्रस्त्रिगुणितैर्वेणुकोशं समालिखेत् ॥ 43 ॥
स्कन्धकोशान्तरं भागैश्चतुर्भिस्तस्य भाजयेत् ।
ग्रीवार्धभागमुत्सेधो भागेनामलसारिकम् ( का ? ) ॥ 44 ॥
पद्मशीर्ष तथा भागं कलशोभागसंमितः ।
अर्धभाग समुत्सेधं कारयेद् बीजपूरकम् ॥ 45 ॥
सर्वकर्णेषु कर्त्तव्यं क्रियाश्चैवं ( सौवं ? ) विचक्षणैः ।[18]

तथा च-

विस्तरः शिखरस्याष्टौभागाः सार्ध समुच्छ्रयः ॥ 46 ॥
पञ्चव्यासेन सूत्रेण वेणु( त्र ? )कोशं समालिखेत् ।
स्कन्धकोशान्तरं चास्य त्रिभिर्भागैर्विभाजयेत् ॥ 47 ॥[19]
ग्रीवां च पद्मशीर्षं च भागेन स्यादिदं द्वयम् ।
प्रत्येकं भागिकौ कार्यौ कलशामलसारिकौ ॥ 48 ॥

नवात्मकः इत्यादौ ।[20]

इति श्रीसूत्रधारगोविन्दविरचिते कलानिधौ
गुणदोषरेखाविभक्तिकोशप्रकारे प्रकाशः षष्ठः ॥ 6 ॥

### पाठ व विशेष सन्दर्भ

1. जयपृच्छायै ग्रन्थारम्भे- रेखाणामभिदधौ लक्षण मधुना क्रमात् विधिवत्। स्कन्धोदयप्रमाणं कनीयसमध्यमणोत्तमं क्रमशः ॥ वास्तुनि कर्म्मे व्यासात्यद्भिर्युता वर्द्धमान

सस्कन्धं तु। विद्ये मुनि रस पञ्चं भुवोर्ध्वनागर लतिनां वरण्डतः। उभयोरन्तरमनयोर्भागान् विदधीत तुर्यविंशत्या॥ तवमुखप्राणावुध्ये रेखास्थाने तु निखिलेषु। ध्रुवक धनदाख्य कैख(कामुक)विनिक दीपक मूलकः॥ भृङ्गागार वह्निमाचल कौशिक सिंहाङ्कित स्तपनः। पूर्णेन्दु गगनशेखर बन्धुतरलात् पत्र वाराहः॥ पुष्करमृगाङ्कन्तु गोद्रेण श्रीविजयत्रायेकि॥ लतिनागर भूमिजना मधोर्मध्यौर्ध्वतः क्रमात्। एते शिखरोच्छ्रया दिग्वसुमुनि सङ्ख्यया क्रमशः॥ ज्ञात्वा वास्तुमन्युदयं लतिनागरभूमिजं च विधिपूर्वम्। स्थपते भिर्विकलबुद्ध्या योज्यासा युज्यते रेखा॥ ॥ 13, 1-7॥

प्रथम श्लोकपाठान्तर- दशधा कथिते वास्तो रित्यंशास्तुर्थभाग दलहीना। स्कन्धं सौतेस्तथाश्चैवोत्तममध्यमोधमा गर्दितः। तथैव ॥ 8॥

2. पाठान्तर- उद्वत शैवक वारणः पुष्पक वृन्दारकः कौलेय क्षत्रिक नागत्कौस्तुभ वृषभार्बुद कमठ कुटिकस्तुरितः गोलकपुलक किरीटः स्कन्धाः संज्ञादिरिरतिर्गदितः निगूढा नामकृतिखधैः पञ्चशतिधिहस्ता स्युः। साधारणमादौ त्रयोदशतुरयं पञ्चदशय च। भ्रमयुत भ्रमहीनानां वास्तुक्षेत्रं नव कमिदमुभयै। प्रत्येकं खण्डानां प्रकीर्तिगुणं जायते। तथैव ॥ 9-12॥

3. प्रकाशित जयपृच्छायै इयं भ्रष्ट पाठः। इत्यमन्तरे एषां श्लोकः- पृष्ठगस्ते वास्तुनां रेखाकर्णे प्रयोज्कोदार्धो सव्ये विषम कराणामापसव्येसमकरणां च। आयात पक्षपातौ कर्णजारेखावशेन सर्वेषां सङ्गत मुपकर्ण प्रभृतिनां योज्येत्प्राज्ञः। क्वचिदपि (पञ्चा कृष्णे क्रमणी?) प्रमुखा प्रयोगेद्रेखा निजज्ञेत्रानुगता ज्येष्ठ मध्याधमापि वा बाह्ये चन्द्रकलाद्याः सव्यासाध्याश्च मध्यमे शिखरे पञ्चकृति... रन्तर जास्यतो वक्ष्ये रूपमृतदल समे रेखा सङ्ख्या तु द्विकोत्तरबुधया एकोक्तरयाधिकान्तो द्विकहीना युजिपदे भवति। पृष्ठ ॥ 130॥

4. पाठान्तर- रेखा विस्तार मानेन सपादेन ततोच्छ्रयम्॥ तृतीयांशेन कर्तव्या चार्द्ध कृत्वा विचक्षणः। रेखात्रयं तु कर्तव्य ज्येष्ठ मध्य कनिष्ठका॥ (जयपृच्छा 12, 10-11)

5. जयपृच्छायै प्रकाशित पाठे पाठान्तरे च विशेषः- स्कन्ध षडभागिकै ज्ञेय भागचतुर्विंशति-र्युतम्॥ चतुर्हस्ताद्युतिः कृत्वा शावत पञ्चांश हस्तकम्। चतुर्विंशति चोत्सेधं स्कन्ध वै योज्येत्बुधः॥ तस्यार्द्ध नवभागैस्तु कर्तव्यं च विचक्षणैः। ॥ 12, 18-20॥

6. पाठान्तर- कोणकं भाग चत्वारि प्रतिरथे त्रय कारयेत्॥ भद्रार्ध द्विभागान्त ततोस्तु साधयेत् क्रमात्। तथैव ॥ 12, 20-21॥

अन्यच्च- आदि कोणं द्विधा कृत्वा प्रथम वेद भाजितम्॥ द्वितीयं तु कर्मणै एवं स

प्रकटाभवेत्। उदय चातृभिणै कृत्वा रेखा समालिखेत्॥ एवं पञ्च साध्यते रेखा भद्रे कोणेषु चानुगे। तथैव ॥ 12, 21-23॥

7. प्रकाशित पाठे विशेषः- रेखामान मयाख्यात बालपञ्जरऽथशृणु॥ रेखा विस्तार यन्मानं षड्विंशति पदभजेत्। कोणं च भाग चत्वारि प्रतिरथ त्रिणिमेव च॥ द्विद्विभाग उपरथं भद्रभागाष्टकम्। बालञ्जरश्च कार्यं चोभयश्च विभिर्भाजितः। चोदयं पूर्वमानेन कर्तव्यं शिल्पिनात्वय॥ रेखात्रयं तु कर्तव्यं पूर्वमानेन च सदाबुधै॥ स्कंधहीनं च कर्तव्यं किंचिदधिकं न कारयेत्। तथैव ॥ 12, 23-27॥

8. प्रकाशित पाठे विशेषः च किञ्चितभेदः- स्कन्धाद्य दशभागेन कर्तव्यं शास्त्र-पारगै॥ कोणं तु भागचत्वारिः प्रतिरथं त्रिणि कारयेत्। सार्द्ध द्विभागिकं ज्ञेयं बालपञ्जरं शोभनम्॥ शृङ्गार्ध सार्ध भागेस्तु सूत्रेः साधयेतु कलाः। स सस्ययो सुरभाग ? मध्ये द्विधा च त्रिभिदिताः॥ सूत्रेरेश्चितारेखा सङ्ख्यया पञ्चविंशति। निर्गमे हस्त सङ्ख्याभिरङ्गुलैस्य-पादितै॥ क्षोभयेत् सपादानां च पादनं चापि विश्रुतम्। साधयेत् तत्समं ज्ञेयं शिल्पिनो निपुणेन तु॥ विषमा भूमिका ज्ञेया पञ्चसप्तनवस्तथा। दशमेकाधिका कार्या आधारैश्चे-पलज्यिता। एवं तु सिद्धन्ति रेखा कर्तव्याशास्त्र पारगै॥ ॥ 12, 27-33॥

9. पाठान्तरे- स्कन्ध हीनं न कर्त्तव्यं स्कन्धाधिक भयावहम्। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शास्त्र दृष्ट्वा च कारयेत्॥ स्कन्धहीने कुलोच्छेदं मृत्युरोगभयानि च। अज्ञान कुरुते रस्तु शिल्पिदोषवाप्नुयात्॥ तथैव ॥ 12, 38-39॥

10. एषां श्लोकः क्षीरार्णवयांः- मूलकन्द प्रविष्टे तु स्कन्धवेधे इति स्मृतः॥ शिल्पी स्वामिनो हन्यते स्कन्धवेधेन संशयः। निर्गमे हस्त संख्यैर्वाधांगुलैरुपमादितः॥ (क्षीरा. 15, 23-24)

11. प्रासादमण्डने प्रकाशित पाठे - रेखामूलस्य विस्तारात् पद्मकोशं समालिखेत्। चतुर्गुणेन सूत्रेण सपादः शिखरोदयः॥ ॥ 4, 23॥

12. समराङ्गणसूत्रधारे मेर्वादिषोडशप्रासादादिलक्षणं ॥ 55, 19-20॥

इत्यमनन्तर एषां श्लोकाधिकः- अष्टभूम्युच्छ्रयः श्रीमान् मञ्जर्या च विराजितः। उच्छ्रयश्चास्य कर्तव्यो द्विगुणः श्रियमिच्छता॥ कार्यं षड्भूमिकं चास्य भद्रं भागार्धनिर्गतम्। पाकः सिंहकर्णस्युः समासिर्नायकेन च॥ कैलास एष कथितो विशेषेण हरप्रियः॥ तथैव ॥ 55, 21-23॥

13. पाठान्तर- विस्ताराद् द्विगुणं सूत्रं स्कन्धाद्य चापि षड्गुणम्॥ सुतानितं

समाकृष्य पद्मकोशं समालिखेत्। (समराङ्गणे 55, 58-59)

इत्यमनन्तरे एषां पाठाधिकः - स पञ्चविंशतिर्हस्ता ज्येष्ठः षोडश मध्यमः ॥ कनीयान् द्वादशकरच्छस्यो विजानता। ज्येष्ठस्य भागसङ्ख्येयमेतदर्धेन मध्यमः ॥ मध्यमस्य तथार्धेन कनीयान् भागसङ्ख्यया। भागषट्कमिता जङ्घा ज्येष्ठस्य परिकीर्तिता ॥ सप्तभागोच्छ्रिता सा स्यान्मध्यमे कनीयसि। सर्वेषां लतिनामेष क्षेत्रेण विधिरीरितः ॥ स्वरितकोऽयं समाख्यातः स्वतिश्रेयस्करो नृणाम् ॥ तथैव ॥ 55, 59-63 ॥

14. समराङ्गणसूत्रधारे रुचकादिचतुष्षष्टिप्रासादकः 56, 48-50, पाठान्तर च भ्रष्टपाठः- पद्मशीर्षञ्च च भागार्धाद् भागेन ..लसी ? स्मृतः। इत्युक्तो रुचकाख्योऽयं...। तथैव ॥ 50 ॥

15. तथैव ॥ 56, 120-123 ॥

16. पाठान्तर च विशेषः- विन्यसेच्छिखरं तत्र भागैर्विस्तृतमष्टभिः ॥ चतुर्गुणेन सूत्रेण वेणुकोशं समालिखेत्। स्कन्धकोशान्तरं चास्य त्रिभिभागैर्विभाजयेत् ॥ ग्रीवार्ध भागिकोत्सेधा भागेनामलसारकः। पद्मशीर्षं तथार्धेन भागेन कलशः स्मृतः ॥ त्रिपादा रथिकास्तिस्त्र उच्छ्रायेण प्रकीर्तिताः। सर्वतोभद्रकाकारो नन्दिशालः प्रकीर्तितः ॥ तथैव ॥56, 156-155 ॥

17. तथैव ॥ 56, 252-253 ॥

18. तथैव ॥ 56, 275-278 ॥

19. तथैव ॥ 56, 222-223 ॥

20. तथैव ॥ 56, 288-289 ॥

## ॥ प्रासादपुरुषनिवेशनामसप्तमप्रकाशः ॥

अथ प्रासाद पुरुषनिवेशः अपराजिते-

विश्वकर्मोवाच-

अथातः सम्प्रक्ष्यामि पुरुषस्य प्रवेशनम्।

न्यसेद् (न्यस्ते ?) देवालयेष्वेव (यत्र ?)

जीवस्थान(ने ?)फलं भवेत्॥ 1 ॥

छादनोपप्रवेशेषु (प्रदेशे तु ?) शृङ्गमध्येऽथवोपरि।

शुकनासावसानेषु (च ?) वेद्यूर्ध्वे (वेद्यग्रर्धे ?) भूमिकान्तरे॥ 2 ॥

मध्यगर्भे विधातव्यो हृदावरणको विधिः।

हंसतुलीं (तूल्यां ?) ततो (तु तं ?) कुर्यात्ताम्रपर्यङ्कसंस्थितम्॥ 3 ॥

शयनं (शयितं) चापि निद्दिष्टं (निद्रंवा ?)

पद्मं वै (तं ?) दक्षिणे करे।

त्रिपताकं करं वामं कारयेद्धृदि संस्थितम्॥ 4 ॥

प्रमाणं तस्य प्रासादे हस्तमानोर्ध मात्रकः।

अर्धार्धाङ्गुलयावृद्ध्या (वृध्या ?) यावद्च्छतार्धकम्॥ 5 ॥[1]

(वृद्धिरर्धाङ्गुलाद्धस्ते यावन्मेरुं प्रकल्पयेत्।)

एवं विधं (पुरुषस्य ?) प्रकर्त्तव्यं सर्वकामफलप्रदम्।

हेमजं( जे ? ) तारजं( जे ? ) वापि ताम्रजं( जे ? )वापि भागशः ॥ 6 ॥

कलशे आज्यपूर्णे तु सौवर्णं पुरुषं न्यसेत्।

पर्यङ्क पादगा ( द्रिश्चत्वारस्युः )कुम्भाश्चत्वारस्यु सकाञ्चनाः ॥ 7 ॥[2]

मुण्डित स्थापयेद्देवं प्रासाद पुरुषं तुयः।

दुःखं न संभवेत्तस्य यावदाभूत संप्लवम्॥ 8 ॥

अथ हृदयप्रतिष्ठा-

सार्वदैविक्यां हृत्प्रतिष्ठा देशिको मूर्तियैः सार्धवास्तु पूजा विधाय दिक्पाल-ग्रह-देवताः सम्पूज्यमूलमन्त्रेण सहस्त्रं हुत्वा कुम्भमादाय सर्षि-दधि-मधु-क्षीर-पायसैः पूरयित्वा पञ्चरत्नानिक्षिप्याङ्गुष्ठमात्रं सौवर्ण पुरुषं पञ्चकषायोदकेन पञ्चपल्लवोदकेन सर्वोषध्युदकेन स्नापयित्वा कुम्भमध्येतं मूल मन्त्रेण प्रक्षिपेत्। कुम्भमामलसारिकाया अधोवेदिको परिस्थापेयत्। तत्पार्श्वे सतूलकगेन्दुकां खड्वा क्षिपेत्। पश्चाद्दत्विग्भिः साधर्माचार्य पूजयेच्छिल्पिन च इति हृदय प्रतिष्ठा।

इति श्रीसूत्रधारगोविन्दविरचिते कलानिधौ

प्रासादपुरुषनिवेशप्रकाशः सप्तम्॥ 7 ॥

**पाठ व विशेष सन्दर्भ**

1. पाठान्तर- प्रमाणम् तस्य वक्ष्यामि प्रासादादौ समस्तकम्। यावच्छतार्धं हस्तादेः कल्पयेच्च यथाक्रमम्॥ ( अराजिते शिलाकूर्मपुरुषप्रमाणम् सूत्रम् 153, 25)

2. पाठान्तर- कलशे चाम्बुपूर्णे तु सौवर्णं पुरुषं न्यसेत्॥ पर्य्यङ्कस्य चतुःपत्सु कुम्भाश्चत्वार एव च। हिरण्यनिधिसंयुक्ता आत्ममुद्राभिरङ्किताः ॥ एवमारोपयेद् देवं यथोक्तं वास्तुशासने। तस्य नैव भवेद् दुःखं यावदाभूतसंप्लवम्॥ तथैव ॥ 153, 27-29 ॥

॥ प्रासादघण्टामलसारिकानिर्णयोनामष्टम प्रकाशः ॥

अथामलसारलक्षणम्-

द्वयोप्ररथयोर्मध्ये वृत्तमामलसारकः ।

व्यासार्धेन तदुत्सेधविभक्ते तु ( वि ? ) युगांशके ॥ 1 ॥[1]

( उदये तु तदूर्ध्वे च विभक्ते चतुरंशतः । )

ग्रीवा पादोनभाग स्यात् सपादांश तथाण्डकम् ( मण्डकं ? ) ।

चन्द्रिका चैकभागेन भागा चामलसारिका ॥ 2 ॥

प्रासादस्याऽष्टमांशेन पृथुत्वं कलशाण्डके ।

युग्मप्रतिरथे कुर्यात् ( कार्ये ? ) सुरतारं ( मुरवरू ? )

शिखरोद्भवे ॥ 3 ॥

चन्द्रस्य तु ( च ) संस्थाने कुर्यादामलसारिकाम् ।

द्वितीयां पूर्वसंस्थानेहृर्ध भागं तु शोषयेत् ॥ 4 ॥[2]

प्रासादानुसारे चामलके-

नागरे-लतिने कुर्यात्सांधारे चैव ( चापि ? ) मिश्रके ।

वासोर्ध्वे ( व्यासार्धमु ? ) चोदयं कृत्वा विभजेत्

पञ्चभागिकैः( च भागकम् ? ) ॥ 5 ॥

कण्ठोग्रीवाकुण्डलम् ( कपोलं ? ) च पद्मच्छत्रोपच्छत्रकम् ।

विमानेभूमिजेकुर्याद्विमान नागर पुष्पके ॥ 6 ॥[3]

इत्थमामलसारः सप्रयुक्तो वास्तुवेदिभिः ।[4]

द्विरष्टभागविस्तारे उच्छ्रयो दशभागिके ( तः ? ) ॥ 7 ॥

भागमन्तरपत्रं स्यादर्ध भागेन पट्टिका ।[5]

कर्णस्तु सार्धभागश्च ( स्यात् ? ) तदूर्ध्वे ( तदूर्ध्वतः ? ) पद्मपत्रिका ॥ 8 ॥

स्कन्धः षड्भागिकः कार्यो निर्गमे पञ्चभागिकः ।[6]

द्राविडी च( द्राविडा तु ? ) भवेद्घण्टा नासिकोपाङ्गशोभिता ॥ 9 ॥

पृथुत्वे ( तु ) द्वादशांशमुच्छ्रये( द्वादशांशेस्याद्च्छ्रये ? ) नवभागिके ।

कर्णस्तथा चैकभागः ( भागैन ? ) स्कन्धाद्यं चाष्टभागिकम्( : ? ) ॥ 10 ॥

अष्टाश्रो च द्विरष्टास्त्रा कार्या द्वित्रिंशदश्रका ।

मन्दारपुष्पसाकार वराटीघण्टीका मता ॥ 11 ॥[7]

वलभीनां प्रवक्ष्यामि आमलयौ वामदक्षिणौ ।

उच्छ्रयो रसभागौ च विस्तरश्चाष्टभागिकः ॥ 12 ॥[8]

अधो भागे भवेत्कंठो( टो ? ) वृत्तं चैव तु भागिकम् ( वृत्तोवैयुग भागिकः ? ) ।

कपोल( कपाली ? ) भागपादं ( पादेन तु ) त्रिपादं कीर्तितं मुखम् ॥ 13 ॥

त्रिभागोच्छ्रिता शाखा विस्तरे चाङ्कितोष्टभिः ।

विषमा मुकुटा कुर्यात्पङ्क्ति ( कार्यातापांक्ति ? )
विषमा स्मृता ॥ 14 ॥[9]

उभयामलमध्ये तु ( आलयोरुभयोर्मध्ये ? )
गजपृष्ठाकृतिस्तथा ( तथैव ? )।

कलशाश्च( नां ? ) त्रयः( त्रयं ? ) कार्या( कार्यं ? )
आयते च शुभप्रदाः( आयतेषु शुभप्रदम् ) ॥ 15 ॥

सिंहावलोकने कुर्याद्घण्टां मन्दारपुष्पकम् ( वत् ? )।
अर्कपुष्पोद्भवाः( पमा ? ) शस्ता दारुजे( T ? )
पुष्पकादयः ( पुष्पकादिषु ? ) ॥ 16 ॥

भेदाः (ज्ञान)रत्नकोशे–

स्कन्धे षडंशके सप्तभाग आमलसारकाः।
अष्टविंशति भक्तेतूर्ध्वोदयः स्यात्तदर्धतः ॥ 17 ॥

ग्रीवाभागत्रयं कार्या ( कार्यं ? ) अण्डकं च पञ्चभागिकम्।
त्रिभागा चन्द्रिका कार्यामलसारी तथैव च ॥ 18 ॥

निर्गमे सार्धषड्भागम् कुर्यादामलसारिकाम्।
चन्द्रिका च द्विसार्धांशां अण्डकं पञ्चभागिकम् ॥ 19 ॥[10]

इति श्रीसूत्रधारगोविन्दविरचिते कलानिधौ
प्रसादघण्टामलसारिकानिर्णयप्रकाशाष्टकः ॥ 8 ॥

### पाठ व विशेष सन्दर्भ

1. पाठान्तर–अपराजिते प्रासादघण्टामलसारकनिर्णयो संज्ञक द्वाचत्वारिंशदुत्तरशततं

सूत्रे- प्रतिरथावुभौ मध्ये वृत्ते चामलसारके। तत्तद्विभक्तिभागं च कथये यस्य यादृशम्॥ 142, 1॥

2. पाठान्तर- द्वितीया पूर्वसंस्थाने शोषयेच्चार्धभागातः। तथैव ॥ 142, 4॥

3. पाठान्तर- विमाने पुष्पकै भौमे कुर्याद्विमाननागरे। तथैव ॥ 142, 7॥

4. पाठान्तर- इत्युक्तं चामलसारं प्रयुक्तं वास्तुवेदिभिः॥ तथैव ॥ 142, 7॥

5. पाठान्तर- अन्तःपत्रं भवेद्भागं भागार्धे चैव पट्टिका॥ तथैव ॥ 142, 8॥

6. एषामशुद्धपाठः। साधुपाठः- स्कन्धः षड्भागिको ज्ञेयोच्छ्रये भागसङ्ख्यया॥ षड्भागश्च भवेत्स्कन्धो निर्गमः पञ्चभागिकः। तथैव ॥ 142, 9-10॥

7. पाठान्तर- अष्टास्रोर्ध्व षोडशाश्रा ततो द्वित्रिंशदश्रका। मन्दारपुष्पकारा कार्या वराटघण्टिका॥ तथैव ॥ 142, 12॥

8. पाठान्तर- वलभीः संप्रक्ष्यामि आमलैर्वामदक्षिणेः। उदयश्चैव षडभागो विस्तारश्चाष्टभागकः॥ तथैव ॥ 142, 13॥

9. पाठान्तर- द्विभागोच्छ्रिता शाखा च विस्तरे अष्ट अन्तिका। विषमा मुकुटा कार्या पङ्क्तिश्च विषमा स्मृता॥ तथैव ॥ 142, 15॥

10. क्षीरार्णवे- षड्भागैस्कन्ध विस्तारं सप्तभिः आमलसारकम्। अर्धोदयं कर्तव्यं तदूर्ध्वे कलशोत्तमा॥ तथामलसारि च विस्तारं च अतःशृणु। सप्तभागमध्ये च चतुषष्टि विभाजितम्॥ द्वात्रिंशोदयं कार्य ग्रीवाभागं षडमवेत्। अण्डकम् भास्करं विद्यात् अष्ट चन्द्रा विलोकित॥ (15, 34-36)

## ॥ कलशप्रमाणलक्षणञ्च नवमप्रकाशः ॥

अथ कलशलक्षणः

(विश्वकर्मोवाच अपराजिते-)

**अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कलशोत्पत्तिलक्षणम्।**

**भद्रं तु (च) सर्वकल्याणं कलशं स्थापयेद्यथा ॥ 1 ॥**

**क्षीरोदार्णवके (क्षीरार्णवे ?) पूर्वं (पुरा ?) मथ्यमाने**

**(व्यस्तैर्मथ्यमाने ?) सुरासुरैः।**

**तत्रोत्पन्न (उत्पन्नः ?) सुतिलकम् (सुमहातेजाः ?) कलशः**

**कामरूपिणम् (कामरूपवान् ?) ॥ 2 ॥**

**प्रतिष्ठादिषु सर्वेषु सर्वपुण्य (पुष्य ?) महोत्सवे।[1]**

**(संस्थाप्य पुण्यकलशं सर्वविघ्नोपशामकम् ॥ 3 ॥**

**अभिषिक्तो दिव्यघटैः फलपल्लवसंयुतैः।**

---

1. मातृकात्रयं इतःपरं न लभ्यते

(मूल ग्रन्थ-पाठ यहीं तक मिला किन्तु उदयपुर के पण्डित नाथूलाल व्यास द्वारा खोजी गई एक प्राचीन मातृका जिसका काल संवत् 1681 है, में अन्तिम अध्याय ध्वजारोहणप्रासादमाहात्म्य संज्ञक उपलब्ध बताया गया है। *(सम्मेलनपत्रिका- कलाअंक, पृष्ठ 294)* इसी आधार पर गोविन्द के मुख्य उपस्कारक ग्रन्थ अपराजितपृच्छा, प्रासादमण्डन् में ये विषय मिलते हैं और इसी नाम से उपलब्ध हैं। चूँकि कलशलक्षणम् के श्लोक भी वहीं से लिए गए हैं, इसीलिए उसी के आधार पर शेष अध्यायों को कोष्ठकाङ्कित रूप में दिया जा रहा है, अन्य किसी विद्वान को इसकी अन्य सम्पूर्ण मातृका की सूचना हो तो अवगत कराने का कष्ट करें।

सर्वपापविनिमुक्तः श्रियं प्राप्नोति मानवः ॥ 4 ॥
क्षीरार्णवे समुत्पन्नं प्रासादस्याग्रजातकम्।

कलशप्रतिष्ठास्थलम्-

प्रासादो देवतानां च नरेन्द्राणां च हर्म्यकम्॥ 5 ॥
देवागारेषु सर्वेषु नृपाणां भवने तथा।
संस्थाप्यं दिव्यकलशं विश्वकर्मवचो यथा ॥ 6 ॥
उत्पत्तिः कथिता चैवं लक्षणं शृणु साम्प्रताम्।
विभक्तिभागसङ्ख्यानां प्रमाणं सूत्रमानतः ॥ 7 ॥

प्रासादानुसारे निर्देशः

शैलजे शैलजं कुर्याद् दारुजे दारुजं तथा।
धातुजे धातुजं चैव ऐष्टिके चैष्टिकं शुभम्॥ 8 ॥
चित्रे चित्रं विधातव्यं हेमजं सर्वकामदम्।
श्रेष्ठं सर्वत्र श्रेष्ठानां सुवर्णकलशध्वजम्॥ 9 ॥
प्रासादस्याष्टमांशेन पृथुत्वं कलशाण्डके।
षोडशांशैर्युतं श्रेष्ठं मध्यं द्वात्रिंशदंशतः ॥ 10 ॥
मूलरेखा पञ्चमांशे पृथुत्वं तस्य कारयेत्।
घण्टा विस्तारपादेन तत्पादेन युता पुनः ॥ 11 ॥
इत्थं कलशविस्तारमुच्छ्रयस्तस्य सार्द्धतः।
नागरे लतिने शस्तं सान्धारे मिश्रके तथा ॥ 12 ॥
विमाननागरे छन्दे विमानपुष्पके तथा।
धातुजे रत्नजे चैव रथारोहे च दारुजे ॥ 13 ॥

शैलजे च चतुर्थांशमैष्टिकादौ समस्तके।
इत्युक्तं कलशं चैव सर्वकामफलप्रदम्॥ 14॥
वराटे द्राविडे चैव भूमिजे च विमानके।
प्रासादस्य तु षष्ठांशे समस्त वलभीषु च॥ 15॥
तत्षडंशयुतं श्रेष्ठं कनिष्ठं तद्विहीनकम्।
इत्थं मानं समुद्दिष्टं कर्त्तव्यं सर्वकामदम्॥ 16॥
धर्मार्थकाममोक्षांश्च ईप्सितान् लभते ध्रुवम्।
युक्तालङ्कारयुक् स्थाप्यं कलशं कामरूपकम्॥ 17॥
उच्छ्रयो नवभागः स्यात् षडभागा विस्तृतिस्तथा।
अण्डकं चैकपादं स्यात् त्रिपदा पद्मपत्रिका॥ 18॥
ग्रीवा पादोनभागा च सपादं द्वे च कर्णिके।
मातुलिङ्ग त्रिभिभागैः कर्त्तव्यं सर्वकामदम्॥ 19॥
उच्छ्रयः कथितश्चैवं विस्तरं शृणु साम्प्रताम्।
पद्मपत्रं त्रिभिर्भागैस्तत्कन्दे च द्विभागकम्॥ 20॥
अण्डकम् च घटाकारं कुर्यात् षडभागविस्तृतम्।
ग्रीवा मध्ये द्विभागाभ्यां चतुर्भिः कर्णिकान्तरम्॥ 21॥
सार्धं द्व्यंशं बीजपूरमग्रे निम्नं सुलक्षणम्।
प्रमाणं तत्र चाख्यातं कलशे सर्वकामदम्॥ 22॥

इति नागरप्रासादकलशः।

अतः ऊर्ध्वं पुनश्चाऽन्यं प्रवक्ष्येऽहमनुक्रमम्।
पूर्ववच्च समुत्सेधो विस्तरः पूर्वकल्पितः॥ 23॥

पद्मपत्रनिभाकारा त्रिपदा पद्मपत्रिका।
कर्णिका पदमेकं तु सपादः पद्मसम्भवः ॥ 24 ॥
द्विभागं चाण्डकं कुर्याद् वृत्ताकारं सुलक्षणम्।
ग्रीवा पादोनभागा स्याद् भागार्धं चार्कपट्टिका ॥ 25 ॥
लतिने च प्रकर्त्तव्या अर्धं वै पद्मपत्रिका।
त्रिभागं बीजपूरं च अधिकंस्य पद्माकृतिः ॥ 26 ॥
उच्छ्रयः कथितश्चेत्थं विस्तरं शृणु साम्प्रताम्।
पद्मपत्रं त्रिभिर्भागैर्द्विभागा कर्णिका वृता ॥ 27 ॥
पद्माग्रे पत्रिका चैव चतुर्भागा च विस्तरे।
षड्भागमण्डकं चैव ग्रीवा मध्ये द्विभागिका ॥ 28 ॥
अर्कपट्टी चतुर्भागा सार्धत्र्यंशा च पत्रिका।
सार्धद्वयं बीजपूरं निम्नाग्रे पद्मकाकृति ॥ 29 ॥
पद्मनिबन्धतिलकं मुक्तरत्नं सुवृत्तकम्।
अर्केऽर्कपट्टिकां कुर्यात् पद्मपत्राग्र उन्नता ॥ 30 ॥ )

इति श्रीसूत्रधारगोविन्द विरचिते कलानिधौ
कलशप्रमाणलक्षणञ्च नवमप्रकाशः ॥ 9 ॥

## ॥ प्रासाददण्डध्वजप्रमाणनामदशम प्रकाशः ॥

विश्वकर्मोवाच अपराजिते-

ध्वजदण्डलक्षणम्-

( अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रासादध्वजलक्षणम्।
दण्डोच्छ्रयप्रमाणं च पताकामण्डकीं तथा ॥ 1 ॥
जया च विजया चैव वेणुकं घण्टचामरम्।
कलशोर्ध्वे समाख्यातं कर्त्तव्यं सर्वकामदम् ॥ 2 ॥
ध्वजाधरस्तम्भिका च कलशैश्च विभूषितम्।
वंशाधारो वज्रबन्धो वंशाना वेष्टनादिकम् ॥ 3 ॥
आदिशिलोद्भवं मानं ऊर्ध्वे च कलशान्तिके।
तृतीयांशे प्रकर्त्तव्यो ध्वजादण्डः प्रमाणतः ॥ 4 ॥
अष्टमांशे ततो हीने मध्यमं शुभलक्षणम्।
कनिष्ठं तद्भवेद् दण्डं ज्येष्ठतः पादवर्जितम् ॥ 5 ॥
प्रासादपृथुमानेन ध्वजादण्डं तु कारयेत्।
मध्यमं दशमांशोन कनिष्ठं चोनपञ्चमम् ॥ 6 ॥
मूलरेखाप्रमाणेन ज्येष्ठः स्याद् दण्डसम्भवः।
मध्यमं द्वादशांशोन षडंशोनं कनिष्ठकम् ॥ 7 ॥

एकहस्ते तु प्रासादे दण्डं पादोनमङ्गुलम्।
अर्धाङ्गुला भवेद्वृद्धिः पञ्चाशद्धस्तकावधि ॥ 8 ॥
पृथुत्वं च प्रकर्त्तव्यं सुवृत्तं पर्वकान्वितम्।
एकादिपर्वतः कार्यः पञ्चविंशतिकावधि ॥ 9 ॥
विषमपर्वोद्गमाश्च शस्ताः स्वस्वाभिधानतः।
त्रयोदश स्युर्दण्डा वै पर्वभेदैस्तथोत्तमाः ॥ 10 ॥

पर्वानुसारनामः

जयन्तः शत्रुमर्दनः पिङ्गलो नाम सम्भवः।
श्रीमुखश्च तथानन्दस्त्रिदेवो दिव्यशेखरः ॥ 11 ॥
कालदण्डो महाकूटः सूर्याख्यः कमलोद्भवः।
विश्वकर्मा समाख्याताः कर्त्तव्याः सर्वकामदाः ॥ 12 ॥
जयन्तस्त्वेकपर्वश्च त्रिपर्वः शत्रुमर्दनः।
पिङ्गलः पञ्चपर्वश्च सप्तपर्वश्च सम्भवः ॥ 13 ॥
श्रीमुखो नवपर्वश्च आनन्दो रुद्रपर्वकः।
त्रिदेवो विश्वपर्वश्च तिभिर्दिव्यशेखरः ॥ 14 ॥
मुनीन्दुभिः कालदण्डो महोत्कटो नवेन्दुतः।
सूर्याख्यस्त्वेकविंशत्या कमलो वह्निनेत्रतः ॥ 15 ॥
तत्त्पर्वो विश्वकर्मा दण्डनामानि पर्वतः।
शस्ताशस्तत्वमेतेषामभिधानगुणोद्भवम् ॥ 16 ॥

अथ मण्डकीम्–

मण्डकी तस्य कर्त्तव्या अर्धचन्द्राकृतिस्तथा।

पृथुदण्डसप्तगुणा हस्तादि पञ्चकावधि ॥ 17 ॥
षड्गुणा च द्वादशान्तं शेषाः पञ्चगुणास्तथा ।
तथा त्रिभागविस्ताराः कर्त्तव्याः सर्वकामदाः ॥ 18 ॥
अर्धचन्द्राकृति चैव पक्षे कुर्याद् गगारकम् ।
वंशोर्ध्वे कलशं चैव पक्षे घण्टाप्रलम्बनम् ॥ 19 ॥
चामरैर्भूषितं कुर्याद् घण्टा पक्षे विचक्षणः ।
पताका पापहारी च शत्रुपक्षक्षयङ्करी ॥ 20 ॥

वंशलक्षणम्–

वंशमयस्तु कर्त्तव्यः सारदारुसमन्वितः ।
निर्व्रणः सुदृढः कार्यो ज्वालादोषविवर्जितः ॥ 21 ॥
समग्रन्थिर्विधातव्यो विषमपर्वसमन्वितः ।

ध्वजादण्डालङ्कार–

ध्वजादण्डप्रमाणेन पताकां च प्रलम्बयेत् ॥ 22 ॥
पृथुत्वमष्टमांशेन त्रिशाखाग्रविभूषितम् ।
शिखाः पञ्च कर्त्तव्या ध्वाजाग्रे च विचक्षणैः ॥ 23 ॥
दिव्यवस्त्रपताका च अर्धचन्द्रैश्च किङ्किणीः ।
... ... ... ... ... ... घुर्घुरान्वितम् ॥ 24 ॥
रखाध त्रिभागोर्ध्वं सूत्रांशे पादवर्जितम् ।
ध्वजोन्नतिस्तु कर्त्तव्या ईशाने नैर्ऋतेऽथवा ॥ 25 ॥
प्रासादपृष्ठदेशे तु प्रतिरथे च दक्षिणे ।
स्तम्भवेधस्तु कर्त्तव्यो भित्तेरष्टमांशके ॥ 26 ॥

वाहनायुधोपयोगः

निलयो यस्य देवस्य तस्य देवस्य वाहनम्।
ध्वजा तु कारयेच्चैव मुखबिम्बप्रमाणतः ॥ 27 ॥
यस्य यस्य हि देवस्य प्रासाद आलयो हि सः।
आयुधं तस्य देवस्य मुखबिम्बप्रमाणतः ॥ 28 ॥
ध्वजच्छन्देषु पीठेषु अग्रस्थानेषु दर्शयेत्।
त्रीणि वाहनस्थानानि कलशाग्रेषु चाऽयुधम् ॥ 29 ॥
शैलजे चैव प्रासादे कलशस्य पदानुगम्।
खादिरमिन्द्रकीलं तु प्रवेश्य कलशान्तिके ॥ 30 ॥
चतुरश्रमष्टाश्रं वा वृत्तं वाऽग्राग्रवर्तुलम्।
सुदृढं निर्व्रणं कुर्याद्गर्भशुद्धम् प्रमाणतः ॥ 31 ॥
ध्वजावती स्तम्भिका च चतुरश्रा चाष्टांशका।
... ... ... ... ... वृत्तोर्ध्वे चतुरश्रिका ॥ 32 ॥
तदूर्ध्वे कलशं कुर्यात् सुरूपं लक्षणान्वितम्।
विकुञ्चनचालिके द्वे वंशाधारस्य बाह्यतः ॥ 33 ॥
वंशबन्धाश्च कर्त्तव्या हस्ते हस्ते तथा पुनः।
हस्ते सपादे सार्धे वा द्विहस्ते वाऽप्यथोच्यते ॥ 34 ॥)

इति श्रीसूत्रधारगोविन्द विरचिते कलानिधौ
प्रासादध्वजदण्डलक्षणं दशमप्रकाशः ॥ 10 ॥

## ॥ ध्वजारोहणप्रासादमाहात्म्यनामैकादश प्रकाशः ॥

अथ ध्वजारोहणमाहात्म्यम्-

विश्वकर्मोवाच अपराजिते-

( पातालभूधरा लोकास्तथा वै द्वीपसागराः ।
यत्र निवासात्मकानां धर्मस्थामनोद्भवः ॥ 1 ॥
त्रीणि कुर्यादूर्ध्वतश्च अधस्तात् त्रीणी एवं च ।
स्वर्गारिततडागानि यशो देवकुलं कुलम् ॥ 2 ॥
यत्र देवकुलाग्रे च ध्वजावंशश्च वंशकृत् ।

पताकापुण्यम्-

पताका पापहारी च शत्रुपक्षक्षयङ्करी ॥ 3 ॥
पञ्चात्मपञ्चभूतानि पञ्चतत्त्वेन्द्रियाणि च ।
पञ्चैव लोकपालाः स्युः पताकाग्रे शिखास्तथा ॥ 4 ॥
पञ्चभिः पञ्चभिः पाल्यं धर्मो यत्र कुले भवेत् ।
पञ्चैः स्यात् हम्यमानैः धर्मारितत्कालारिजम् ? ॥ 5 ॥
पवनैर्दोल्मानाश्च क्रीडयन्ति दिशो दश ।
फलन्ति फलकाले च हेन्यपापं पुण्योद्भवाः ? ॥ 6 ॥
मण्डुकी मण्डुकाकारा कीर्तिस्योर्द्धमहोद्भवाः ? ।

मण्डपं दिव्यमाख्यातं जन्मजन्मनि कुलवासनम् ? ॥ 7 ॥
जयविजयपताका गङ्गार्कतनयाभवा ।
सुरनिलयोत्तराख्या या यस्ये पृथिव्यातकै ? ॥ 8 ॥
कीर्ति घण्टा त्रिलोकेषु जन्म वा कुल उत्तमे ।
ध्वजा भूष्या चामरैश्च व्यञ्जकैः सवराटकैः ॥ 9 ॥
वंशपताकोत्तरस्थां तत्त्वंक्षे कुलसम्भवा ।
सहृदये हृदयात्मा च ब्रह्मज्ञान सउन्मीलता ? ॥ 10 ॥
तदूर्ध्वे कलशं स्थाप्यं घोरसंसारतारकम् ।
महात्मानः पुरं यान्ति शुभं रत्नमयं तथा ॥ 11 ॥
ध्वजोदये तु तुष्यन्ति देवाश्च पितरस्तथा ।
सदा सा कुलसन्तानसुपुष्ट्यायुष्करी भवेत् ॥ 12 ॥
ध्वजारोपे कृतं पुण्यं दशाश्वमेधिकं भवेत् ।
सर्वपृथ्वीतीर्थपुण्यं ते व्रजन्ति शिवालयम् ॥ 13 ॥
पूर्वान्परांश्च पञ्चाशदात्मानं च तथाधिकम् ।
कुलमेकोत्तरशतं नरकात्तारयन्ति च ॥ 14 ॥
आचार्यशिल्पिभिश्चैव यजमानो गृहानुगैः ।
स याति परमं स्थानं यत्र देवो महेश्वरः ॥ 15 ॥
काञ्चनेन विमानेन घण्टावितानशोभिना ।
स याति देवनिलयं सेव्यते चाऽप्सरोगणैः ॥ 16 ॥
शिल्प्याचार्ययजमाना विष्णुलोकगतास्तथा ।
आत्मवंशं भूमितले तारयन्ति भवार्णवात् ॥ 17 ॥

बलीवर्दकर्मकराः सर्वे यान्ति शिवालयम्।
मर्त्यलोके वृक्षशिलास्तिष्ठेयुश्च शिवानुगाः ॥ 18 ॥
बलीवर्द्दधराः सर्वा स्वेच्छया चैव सर्वतः।
गच्छन्ति दिव्यरूपेण त्रिषु लोकेषु मध्यतः ॥ 19 ॥
लभन्ते चेप्सितं राज्यं स्वर्गं वा भूमिशासनम्।
अमितां लभते लक्ष्मीं यष्टा सुरैर्निष्कण्टकम् ॥ 20 ॥
यजमानशिल्प्याचार्याः शिवसान्निध्यगाः सदा।
अधस्ताच्च पुरे रम्ये कैलाससदृशे तथा ॥ 21 ॥
दिव्यरत्नमये चैव प्राकारैः काञ्चनैर्युते।
सप्तकोटिगणैर्युक्ताश्चन्द्रार्कतारकावधि ॥ 22 ॥
सूत्रकारापवरका यजमानहितैषिणः।
सुधया रचनालेपे यान्ति ते परमा गतिम् ॥ 23 ॥

प्रासादादिफलम्–

ग्रन्थान्तरे (यम 1)–

कृत्वा देवकुलं शुभ्रं प्रतिष्ठाप्य च देवताम्।
विधाय विविधं चित्रं तल्लोकं विदन्ति ध्रुवम् ॥ 24 ॥
सर्वयज्ञतपोदानतीर्थवेदेषु यत्फलम्।
तत्फलं कोटिगुणितं लभेद्वेधःप्रतिष्ठया ॥ 25 ॥
कजजं स्थाप्येद्यस्तु कृत्वा शाला मनोरमाम्।
सर्वाङ्गोपचितां पुण्यां पुण्यं कोटिगुणं भवेत् ॥ 26 ॥

प्रासादमण्डने–

स्वशक्त्या काष्ठमृदिष्टकाशैलधातुरत्नजम्।
देवतायतनं कुर्याद् धर्मार्थकाममोक्षदम्॥ 27॥
कोटिघ्नं तृणजे पुण्यं मृन्मये दशसङ्गुणम्।
ऐष्टके शतकोटिघ्नं शैलेऽनन्तं फलं स्मृतम्॥ 28॥

अन्यच्च– (आदित्यपुराणे)

लेपनाच्छादनं चैव यः करोति पुनर्नवम्।
देवस्यायतने कृत्वा न भवेत्कीटजं भयम्॥ 29॥)

ग्रन्थकर्त्तुनिवेदम्–

सूत्रधारः सदाचारः कलाधारः कलानिधिः।
दण्डाधारः सुरागारः श्रिये गोविन्दमादिशत्( गोविन्दव्य ? )
राज्ञाश्रीरायमल्लेन प्रीतस्याभिः ( प्रीराखा ? ) मनोहरेः।
प्रणम्यमाने प्रासादे गोविन्दः सव्यधादिदम्( सव्यधादमुं ? )॥

इति श्रीसूत्रधारगोविन्दविरचिते कलानिधौ
ध्वजारोहणप्रासादमाहात्म्यनामोदशम् प्रकाशः॥ 11॥

इति शुभं भुयात्।

## परिशिष्टम् - 1

# ध्वजारोहणविधिः

तत्रदेवीपुराणे-

ध्वजदण्डः शुभः कार्य आयामपरिणाहतः।
दण्डस्तु ध्वजः कार्यो भूमेरूर्ध्वा च लम्बितः॥ 1॥
हेमकिङ्किणिशोभाढ्यो लाञ्छितो वाहनादिभिः।
प्रतिष्ठाविधिमाश्रित्य होमदानं च कारयेत्॥ 2॥
देवीसम्पूजनम् कार्यं मन्त्रविद्याविशारदैः।
चतुःषष्टौ तु विद्यानामुद्धारं यस्तु विन्दति॥ 3॥
स गुरुः स्थापकश्रेष्ठो विद्येशपददायकः।
पदमालादिकैर्मन्त्रैः सर्वं कार्यं यथाविधि॥ 4॥
देवीनां हवनं पूजा नाऽन्यैः कार्यं कदाचन।
विफलं तद्भवेच्छक कर्तृराष्ट्रभयावहम्॥ 5॥
तस्मात्सुविधिमाश्रित्य निवेशे ध्वजरोहणम्।
कृतं सफलतां याति कर्तृराष्ट्रभयादिषु॥ 6॥
रक्षार्थं तु भवेदेको द्वितीयो ध्वजरोहणे।
धर्मध्वजस्तृतीयस्तु चतुर्थः कामिको ध्वजः॥ 7॥
यात्रायां पञ्चमः ख्यातो बहुधा परिकीर्तितः।
अन्ये च बहवो भेदा एते यान्ति निवेशने॥ 8॥

तथा-

देव्यो कः कलशं सिंहं ध्वजाङ्कं दापयेच्छुभम्।
प्रतिष्ठा द्विगुणं सर्वं कल्पनीयं पुरा कृतम्॥ 9॥
यस्मात्सफलं तु निष्पतौ जायते विधिपूर्वकम्।
तस्माद्ध्वजे शिलारोहे महादानं प्रदापयेत्॥ 10॥

सङ्कर्णं तु प्रतिनादे रक्षार्थं स्थापयेद्ध्वजम्।
स्वलिङ्गकलशे वाऽथ विभग्रे भयदा खगाः ॥ 11 ॥
कपोताः कौशिकास्तत्र महाभयकरा नृणाम्।
मदवृष्टिदा वत्स ततः कर्तव्यो जयनोरिह ॥ 12 ॥
रक्षाचिह्नं तदा यजमानोप रक्षतिं गतदा शुभम्।
स्ववाहनां कृतं कृत्वा पर्वादिषु निवेशयेत् ॥ 13 ॥
क्षेमारोग्यकरं वत्स नृपे राष्ट्रभयम् समेत्।
सुभिक्षं क्षेममारोग्यं नृपस्य च जनस्य च ॥ 14 ॥
वाहनाङ्कध्वजो देयो विचित्रः किङ्किणीयुतः।
दर्पणं चामरं घण्टां छत्रं दद्यात्तदूर्ध्वगम् ॥ 15 ॥
अस्त्राभिमन्त्रितो देयो ध्वजो दण्डान्मही मतः।
गन्धैः फलादिरत्नैश्च कलशान्स्थापयेत्पुरा ॥ 16 ॥
ततो ध्वजः प्रदातव्यो ध्यात्वा कालं शिवाविधिम्।
शिवेऽप्येवं ध्वजो देयो विष्णौ विष्णुपदं न्यसेत् ॥ 17 ॥
चित्रादिरक्षकान् कृत्वा वासुदेवं सपञ्चकम्।
ध्वजं खड्गाङ्कितं दद्याद्विष्णुलोकफलप्रदम् ॥ 18 ॥
चक्रं चाऽनेन विधिना रोपणीयं शुभावहम्।
इहायुः पुत्रधनदं देहान्ते भवनम् स्वकम् ॥ 19 ॥
पञ्चरङ्गं ध्वजं पुष्पं यो दद्यात्परमेश्वरि।
रङ्गतन्तुसमं कालं देवलोके भवेत्सुखी ॥ 20 ॥

तथा–

आनन्दनृपालोकानां कृत्वा पूजां महाफलाम्।
न ध्वजः प्रदातव्यो जयार्थं सुखसिद्धिदः ॥ 21 ॥
रेखादिखण्डकः कार्यो यात्राकाले स्वदिङ्मुखः।
महादेवीगणं तत्र गृहाष्टकसमन्वितम् ॥ 22 ॥
कृत्वा तु लभते वत्स कामकं द्विजसत्तम्।

गोभूहिरण्यम श्रेकं देयं दानं सुखार्थिभिः ॥ 23 ॥
प्रतिष्ठगर्तसा ... ध्वजान्ता सर्वकामदा ।
ध्वजाः कार्यास्तु सर्वेऽपि न्यूनमन्यकृतं पुनः ॥ 24 ॥

तथा-

शक्र उवाच-

देव्या ध्वज प्रमाणं च दण्डस्य विधिलाञ्छनम् ।
दीयते च यथा तात तथा सर्वं ब्रवीहि नः ॥ 25 ॥

ईश्वर उवाच-

अण्डजो मण्डजश्चापि ध्वजः केशविवर्जितः ।
नवः समश्च श्लक्ष्णश्च प्रासाददण्डमर्चितम् ॥ 26 ॥
समं सूक्ष्मभृतं शुभ्रं शैलं वा धातुजं तथा ।
तस्मिन्पट्टे लिखेत्सिंहं सर्वलक्षणलक्षितम् ॥ 27 ॥
सचन्द्रया रोचनया लेखन्या दूर्वया लिखेत् ।
प्रासादोद्दोलमानं क्षितिविस्तारतः करम् ॥ 28 ॥
ध्वजपट्टे तु कर्तव्या दश या दिक्षु देवताः ।
सर्ववाहनसंस्थाभ्यां लक्षिताः सहजेन च ॥ 29 ॥
किङ्किणी चामरोपेता घण्टादर्पणशोभिताः ।
हुतं होमो महाप्राज्ञः सहकारदलान्वितम् ॥ 30 ॥
महामङ्गलशब्देन देव्याः कुर्यात्प्रपूजनम् ।
सुगन्धिपुष्पनैवेद्यैर्यथा विभवविस्तरम् ॥ 31 ॥
कन्यकाः ब्राह्मणाः भोज्याः शर्करादधिपायसैः ।
भूतानां तु बलिं दत्वा तथा तमुपरोहयेत् ॥ 32 ॥
सर्वकाममवाप्नोति विद्याधरपतिर्भवेत् ।
मोदते विविधैर्भोगैः सर्वविद्यार्थपारगैः ॥ 33 ॥
अथवा हैमं रौप्यं वा वार्क्षं पार्थिवशैलजम् ।
कारयेन्मृगराजं तु महाकारि मदापहम् ॥ 34 ॥

महागजनखोत्खातमुक्ताफलकदम्बकम्।
एवंविधं नरः कृत्वा नवम्यां पूजयेच्छिवाम्॥ 35 ॥
सोपवासः शुचिर्दक्षः सर्वसङ्गविवर्जितः।
कन्यकाः पूजयित्वा तु विप्रान्वेदविदस्तथा। 36 ॥
देवीभक्ताः सदाचारास्त्रिकालं हवने रताः।
ते यथाशक्तितस्तोष्या ध्वजारोहणकर्मणि॥ 37 ॥
कन्या देवी स्वयं प्रोक्ता कन्यारूपा त्रिशूलिनी।
यावत्साऽक्षतयोनिः स्यात्तावद्देवी सुरारिहन्॥ 38 ॥
द्विजो ब्रह्मा शिवो विष्णुः स्वकीयव्रतपालकाः।
पूजितैस्तैः सदैवात्र सर्वदेवास्तु पूजिताः॥ 39 ॥
दीनान्धकृपणादीनामन्नं देयं स्वशक्तितः।
यथा सर्वगतां देवीं तदुद्दिश्याक्षयं भवेत्॥ 40 ॥
नानाभक्ष्यक्षतदधिदूर्वा उत्कारिकान्वितम्।
बलिं तु सर्वभूतेभ्यो दत्वा दिक्षु निवेदयेत्॥ 41 ॥
वज्रघोणं तथा जप्त्वा अष्टविंशाक्षराऽपि वा।
सिंहस्तम्भे समारोप्य सर्वमङ्गलसंयुतम्॥ 42 ॥
वेदध्वनिमहामन्त्रकालिका चर्चिकापदम्।
यस्य सिंहपरध्याने देयं पूर्वोपकल्पितम्॥ 43 ॥
एवं संवस्त्रसंवीतं सर्वाभरणभूषितम्।
देव्या महाध्वजं न्यस्य शेषाणामनुविन्यसेत्॥ 44 ॥
ब्रह्मविष्णिवन्द्ररुद्राणां सोमसूर्यदिवौकसाम्।
ध्वजदानं महादानं सर्वदानोत्तमोत्तमम्॥ 45 ॥
यावन्न दीयते शक्र ध्वजः प्रासादमूर्धनि।
तावन्न भवति श्रेयः प्रासादे यदवाप्यते॥ 46 ॥
ध्वजशून्येषु भूतानि नागगन्धर्वराक्षसाः।
विद्रवन्ति महात्मानो नानाबाधाः प्रकुर्वते॥ 47 ॥

तस्माद् देवगृहद्वारे पुर-पर्वत-पत्तने।
उच्छ्रितां शान्तिकर्माय ध्वजाः शुक्रसमाहिताः ॥ 48 ॥
न हि चाऽन्यध्वजादानादुत्तमं दृश्यते क्वचित्।
दानमिष्टं च पूर्तं च देव्यां दीपस्तथैव च ॥ 49 ॥
अनेन विधिना यस्तु ध्वजं शक्र निवेशयेत्।
सर्वान् कामानवाप्नोति स नरः शिवतां व्रजेत् ॥ 50 ॥
तस्य दर्शनसंलापादपि पापरताः नराः।
विमुक्ताः सर्वपापेभ्यो दिवं यान्ति न संशयः ॥ 51 ॥
राजा चाऽनेन विधिना देवी लाञ्छनलाञ्छितः।
शङ्ख-चक्र-वृष-तार्क्ष्य-हंस-बर्हिणवारणैः ॥ 52 ॥
सादरो भक्तिमास्थाय ध्वजयष्टिं समुच्छ्रयेत्।
न तस्य संगरे शक्र व्याधयो न च वैरिणः ॥ 53 ॥
न च शस्त्रकृता पीडा भवेद्ध्वजसमुच्छ्रयात्।

तथा–

आसील्लुब्धो निराचारः कैवर्तो मत्स्यघातकः ॥ 54 ॥
नेपाले पत्तने शुक्र प्रयग्नौ मत्स्यबन्धने।
स च विन्ध्याटवीमध्ये देवीगेहमपश्यत ॥ 55 ॥
तस्य जालं प्रभूतेन शीर्णं कालेन भार्गवः।
देव्या गृहाग्रतो वृक्षे तस्मिंस्तत्समलम्बयत् ॥ 56 ॥
ततो गृहं स्वकं वत्स पुनस्तत्रैव कालतः।
आगत्य कर्पटखण्डं ( सहमानो मूर्ध्वमूर्ध्वः ) ॥ 57 ॥
दत्वागतः पुनः कालान्मृतो भूत्खड्गाधिपः।
विद्याधरपतिश्चित्रः सर्वविद्यार्थपारगः ॥ 58 ॥
तथा स्वभवने देव्या पूर्वभक्तिसमन्वितः।
ददौ ध्वजान्सदा शुभ्रान् किङ्किणीरवकान्वितान् ॥ 59 ॥
तेनाऽसौ कर्मणा पूर्वस्मरणाद्भृगुसत्तम।
कर्मयोगं समास्थाय खड्गराजस्त्वसावभूत् ॥ 60 ॥

अनिवारितशक्तिश्च सर्वविद्याधरेश्वरः।

तत्र भविष्यपुराणे- (ब्राह्मपर्व 138, 1-77)

नारद उवाच-

हन्त ते कथयिष्यामि ध्वजारोपणमुत्तमम्।
यदुक्तं ब्रह्मणां पुण्यं त्रिदशाधिपतेः पुरा ॥ 1 ॥
पुरा देवासुरे युद्धे योध्दुं देवैर्जयेप्सुभिः।
कृतान्युपरि चिह्नानि वाहनानि ध्वजानि तु ॥ 2 ॥
लक्ष्मचिह्नध्वजं केतुरिति पर्यायनामभिः।
कीर्तितः स च तस्येह प्रमाणं गदतः श्रुणु ॥ 3 ॥
ध्वजो वंशस्य कर्तव्यो विशुद्धो ऋजुरव्रणः।
प्रासादायामतुल्यस्तु ध्वजवंशः प्रमाणतः ॥ 4 ॥
देवागारः या प्रोक्ता मञ्जरी कलशादयः।
अथ वा तत्प्रमाणस्तु ध्वजदण्डः प्रकीर्तितः ॥ 5 ॥
अन्तर्गृहस्य या देवी सूत्रतः परिकल्पिता।
तस्य व्यासो भवेद्वंशः प्रासादस्य यदूत्तम् ॥ 6 ॥
अथवा मूल सूत्रेण व्यासस्तस्य गृहस्य च।
प्रासाद व्यास इत्युक्त इह वै स न संशयः ॥ 7 ॥
केतुदण्डो भवेद्वंशो न भिन्नो नाऽनृजुस्तथा।
धनुर्ध्वजो युगं चैव नाविका पुरुषस्तथा ॥ 8 ॥
चतुर्हस्ता भवन्येते प्रशस्ताः कृष्णनन्दन।
अष्टहस्तप्रमाणस्तु विंशार्द्धस्य प्रमाणतः ॥ 9 ॥
सामान्यो ध्वजदण्डस्तु सर्वसाधारणो मतः।
उत्तमस्तु ध्वजो दण्डः स्मृतो हस्तांस्तु षोडश ॥ 10 ॥
विंशद्धस्तात्परं दण्डं शक्रकेतोर्न कारयेत्।
युग्महस्तस्तु कर्तव्यो ध्वजदण्डो मनीषिभिः ॥ 11 ॥
चतुरङ्गुलविस्तीर्णः सुव्रतो ( ह्यङ्गुलोपरि )।
नातिसूक्ष्मो न च स्थूलः न कार्योन्नतपर्व च ॥ 12 ॥

समपर्वस्तु कर्तव्यः सुदृढः श्लक्ष्ण एव हि।
वक्रः पुत्र विनाशाय सव्रणोऽर्थविनाशकः ॥ 13 ॥
रोगदोऽयुग्महस्तस्तु भिन्ने दुःखमनन्तकम्।
करोति हानिं धर्मस्य हीनो वास्तुप्रमाणतः ॥ 14 ॥
वैषम्य समपर्वा वै दद्याच्छत्रुमधोन्नतः।
जयो जयन्तो जैतेश्च शत्रुहन्ता जयावहः ॥ 15 ॥
नन्दोपनन्दनश्चैव इन्द्रोपेन्द्रस्तथैव च।
दशैते कीर्तिता भेदा ध्वजस्यानन्दसम्मिताः ॥ 16 ॥
द्विहस्तस्तु जयो दण्डो जयन्तो द्विगुणो मतः।
द्वादशोर्द्धस्तदा जैत्रः शत्रुहन्ताष्ट एव च ॥ 17 ॥
जयावहास्तु विंशार्द्धो नन्द आदित्यसम्मितः।
चतुर्दशोपनन्दस्तु इन्द्रः षोडश उच्यते ॥ 18 ॥
उपेन्द्रोऽष्टादश प्रोक्तो आनन्दो विंशतिःस्मृतः।
भिन्नोः वै चक्रसन्धिश्च न कार्यो दण्ड एव हि ॥ 19 ॥
मूल सूत्रेण कर्तव्यो व्यासतोऽन्तर्गृहस्य तु।
ध्वजदण्डो महाबाहु अथवा वास्तुमानतः ॥ 20 ॥
मञ्जरीमानतो वाऽपि तद्वद्धनं तथा विभो।
पताका च भवेत्कार्या ध्वजवंशावलम्बिनी ॥ 21 ॥
देवागारस्य शिखरा त्रिभागपरिमार्जनी।
सा चोक्ता दशधा वीरमानतो नामतस्तथा ॥ 22 ॥
अङ्कुरः पल्लवश्चैव स्कन्धः शाखा तथैव च।
पताका कदली वीर केतुर्लक्ष्मो जयस्तथा ॥ 23 ॥
ध्वजश्च दशमः प्रोक्तः सर्वदेवमयो नृप।
अङ्कुरे ध्वजङ्गुलः प्रोक्तः पल्लवश्चतुरङ्गुलः ॥ 24 ॥
स्कन्धः षडङ्गुलः प्रोक्त शाखा चाष्टाङ्गुला मता।
एकादशपताका तु कदली तु चतुर्दश ॥ 25 ॥
केतुस्तु षोडशः प्रोक्तो लक्ष्माष्टादश उच्यते।

जयो विंशति वै प्रोक्तो विस्तारादङ्गुलानि च ॥ 26 ॥
चतुर्विंशो ध्वजः प्रोक्तः पताका द्व्यङ्गुलानि तु।
देवागारस्य कुर्यात् प्रथमांशप्रमार्जनम् ॥ 27 ॥
अङ्कुरेति पताका सा विज्ञेया यदुनन्दन।
पल्लवेति द्वितीयस्य मार्जनी परिकीर्तिता ॥ 28 ॥
त्रिभागमार्जनी स्कन्धः शाखा वै पञ्चमस्य तु।
षष्ठस्योक्ता पताका तु कदली सप्तमस्य तु ॥ 29 ॥
अष्टमस्य तथा केतुर्लक्ष्मो वै नवमस्य तु।
ततश्च दशमस्योक्तो जयन्तो यदुनन्दन ॥ 30 ॥
वृषस्थाना च मार्जी च ध्वजस्तु परिकीर्तितः।
गजो मेषोऽथ महिषः कबन्धस्तु ऋषस्तथा ॥ 31 ॥
हरिणोऽथ नरश्चैव शरश्च नरसत्तम्।
स्थानान्येतानि चाष्टौ तु प्रयुक्तस्य ध्वजस्य तु ॥ 32 ॥
दिशां भागात्तु वै पूर्वाक्रमेण परिकल्पयेत्।
एवं दशाविधाः प्रोक्ताः पताकास्तत्वदर्शिभिः ॥ 33 ॥
कर्तव्यास्ता यथा पूर्वं तच्छ्रुणुश्च नराधिप।
शुक्लवस्त्रमयी चित्रा सुघण्टा सुमनोरमा ॥ 34 ॥
नाना बुद्बुद सम्पन्ना किङ्किणी जालमण्डिता।
ध्वजाग्राश्चैव कर्तव्या देवतालिङ्गसूचकाः ॥ 35 ॥
काञ्चनो वाऽथ रौप्यो वा मणिरत्नमयोऽथवा।
रङ्गकैर्लिखितो वाऽथ तद्वाहनसमाकृति ॥ 36 ॥
ध्वजदण्डाग्रविन्यस्तः कर्तव्यो यदुनन्दन।
गरुत्माँस्तु ध्वजो विष्णोरीश्वरस्य ध्वजो वृषः ॥ 37 ॥
ब्रह्मणः पङ्कजं कार्यं रवेः धर्मः स्मृतो ध्वजः।
कुञ्जरो देवराजस्य यमस्य महिषो ध्वजः ॥ 38 ॥
हंसो जलाधिपस्योक्तः कुबेरस्य नरो ध्वजः।
बलदेवस्य तालस्तु कामस्य मकरो ध्वजः ॥ 39 ॥

सिंहोध्वस्तु दुर्गायाः कीर्तितो यदुनन्दन।
गोधा ध्वज उमादेव्या रेवन्तस्य हयः स्मृतः ॥ 40 ॥
कच्छपो वरुणोस्योक्तो वातस्य हरिणो मतः।
पावकस्य तथा मेष आखुर्गणपतेः स्मृतः ॥ 41 ॥
ब्रह्मर्षीणां कुशः प्रोक्त इत्येषा ध्वजकल्पना।
यस्य यो वाहनः प्रोक्तः स तस्य ध्वज उच्यते ॥ 42 ॥
विष्णोर्ध्वजस्य सौवर्णो दण्डः कार्य विचक्षणैः।
पताका चाऽपि पीता स्याद्गरुडस्य समीपगा ॥ 43 ॥
ईश्वरस्य ध्वजो दण्डो राजतो यदुनन्दन।
पताका चाऽपि शुक्ला स्याद्वृषभस्य समीपगा ॥ 44 ॥
पितामहध्वजो दण्डः स्मृतस्ताम्रमयो बुधैः।
पद्मवर्णा पताका स्यात्पङ्कजस्य समीपगा ॥ 45 ॥
आदित्यस्य च सौवर्णा ध्वजदण्डः प्रकीर्तितः।
पञ्चवर्णपताका स्याद्धर्मस्याधोग्रतः स्थिता ॥ 46 ॥
किङ्किणीजालसम्पन्ना नानाबुद्बुदसम्मिता।
पुष्पमालोपसम्पन्ना नानाराजीवसंवृता ॥ 47 ॥
इन्द्रध्वजस्य दण्डोऽथ काञ्चनो यदुनन्दन।
पताका बहुवर्णा स्यात् कुञ्जरस्य समीपगा ॥ 48 ॥
आयसश्चापि दण्डोक्तो यमचिह्नो विचक्षणैः।
पताका वर्णतः कृष्णा महिषस्य समीपगा ॥ 49 ॥
जलाधिपध्वजो दण्डो राजतः परिकीर्तितः।
पताकाः सर्वतः श्वेता विचित्रा सा कथ्यते ॥ 50 ॥
ध्वजे चापि कुबेरस्य दण्डो मणिमयः स्मृतः।
पताका चापि रक्ता स्यान्नरपादसमीपगा ॥ 51 ॥
बलदेव ध्वजा दण्डो राजतो यदुनन्दन।
पताका वर्णतः शुक्ला तालस्याधोगता स्मृता ॥ 52 ॥
कामध्वजे त्रिलोहः स्याद्दण्डो यदुकुलोद्वह।

पताका रोहिणी तत्र मकरस्य समीपगा ॥ 53 ॥
मयूरं कार्तिकेयस्य चिह्नं लोकेषु गीयते ।
त्रिलोहदण्डमारूढं बहुरत्नविभूषितम् ॥ 54 ॥
बहुवर्णकचित्रा तु पताका कथिता बुधैः ।
हस्ति ( दन्तभवं ) दण्डं तथा कुर्यात् गणपतेर्नृप ॥ 55
ताम्रदण्डसमारूढं सुशुद्धं सुप्रतिष्ठितम् ।
शुक्ला पताका कर्तव्या सुप्रमाणा महीपते ॥ 56 ॥
मातृणां चापि कर्तव्यो नैकरूपो ध्वजो बुधैः ।
पताकाभिरनेकाभिर्बहुवर्णाभिरन्वितः ॥ 57 ॥
रेवन्तस्यापि कर्तव्यो ध्वजे वाजि नराधिप ।
रक्ता पताका तत्रापि कर्तव्या यदुनन्दन ॥ 58 ॥
चामुण्डा मन्दिरे कार्यः शिरोमालाध्वजस्तथा ।
नीला पताका कर्तव्या दण्डो लोहमयस्तथा ॥ 59 ॥
रीतीमयश्च मातृणा रेवन्तस्याऽपि कारयेत् ।
गोध्वजस्ताम्रमयः पताका गोपसन्निभा ॥ 60 ॥
स्वर्णदण्डस्तुवीरस्य ध्वजो मेष समन्वितः ।
पताकाबहुवर्णाद्या कर्तव्या यदुनन्दन ॥ 61 ॥
अश्मसारमयो दण्डो ध्वजो वातस्य उच्यते ।
पताका कृष्णवर्णा तु हरिणस्य समीपगा ॥ 62 ॥
भगवत्यध्वजे दण्डः सर्वरत्नमयः स्मृतः ।
पताका च त्रिवर्णा स्यात्सिंहस्याधोगता नृप ॥ 63 ॥
एवंविधमिदं कृत्वा ध्वजं लक्षणलक्षितम् ।

अथाधिवासनम्–

अधिवास्य ततो राजन् तत आरोपयेद्बुधः ॥ 64 ॥
ततः सर्वौषधीभिस्तु स्नापयित्वा प्रयत्नतः ।
समालभ्य च बध्नीयान्मध्ये प्रतिसरं नृपः ॥ 65 ॥
कल्पयित्वा शुभां वेदीं कलशैरुपशोभिताम् ।

तस्यां वेद्यां समारोप्य तां रात्रीमधिवासयेत् ॥ 66 ॥
नानाकुसुमचित्रां तु स्त्रजं तस्यावलम्बयेत्।
अभ्यर्च्य च प्रयत्नेन धूपमस्य निवेदयेत् ॥ 67 ॥
बलिकर्म ततः कुर्यात्कृशरामोदिकादिभिः।
पललोल्लापिकाभिश्च दधिपासयसूपकैः ॥ 68 ॥
उद्दिश्य लोकपालेभ्यो बलिं दत्त्वा च पायसैः।
ब्राह्मणान् स्वस्ति वाच्याऽथ कृत्वा पुण्याहमङ्गलम् ॥ 69 ॥
वादित्रकृतनिर्घोषं वेष्टितं नववाससा।
शुभे लग्ने दिने ॠक्षे ध्वजमारोपयेद्बुधः ॥ 70 ॥
विन्यस्य स्वर्णकलशं शुभ्रं राजं ध्वजस्य तु।
एवमारोपयेद्यस्तु ध्वजं देवालयोपरि ॥ 71 ॥
श्रियमातनुते नित्यं प्राप्नोति परमां गतिम्।
असुरा वस्तुमिच्छन्ति ध्वजहीने सुरालये ॥ 72 ॥
तस्माद्देवालयं प्राज्ञो ध्वजहीनं न कारयेत्।
मन्त्रश्च स्थापने प्रोक्तो विधानज्ञैर्ध्वजस्य तु ॥ 73 ॥
एह्येहि भगवन् देव देववाहन वै खग ( खेचर ? )।
श्रीकरः श्रीनिवाश्च जय जैत्रोपशोभितम् ॥ 74 ॥
व्योमरूप महारूप धर्मात्मन् नमोस्तु ते।
सान्निध्यं कुरु दण्डेस्मिन् साक्षी च ध्रुवतां व्रज ॥ 75 ॥
कुरु वृद्धिं सदा कर्तुः प्रासादस्यार्कवल्लभः।
'ॐ एह्येहि भगवन्नीश्वरविनिर्मित उपरिचरवायु-
मार्गानुसारिञ्छ्रनिवास रिपुध्वंस यक्षनिलय सर्वदेवप्रियं कुरु
सान्निध्यं शान्तिं स्वस्त्ययनं च मे। भयं सर्वविघ्ना व्यपसरन्तु ॥'
मन्त्रेणानेन राजेंद्र श्वभ्रे दण्डं निवेशयेत्।
पताकां पूर्वमन्त्रेण स्थित्वा पूर्वमुखो नृप ॥ 76 ॥
क्षिपेदूर्ध्वमथाकाशं प्रासादशिखराद्विभो।
पताकां तु ततः पश्येत्यतन्तीं यदुनन्दन ॥ 77 ॥

प्रासादपुरतो वीर पताका पतते यदि।
इन्द्रलोकं तदा कर्तुरादिशेद्यदुनन्दन॥ 78॥
आग्नेयामग्निलोकं तु याम्या यमसदो भवेत्।
नैर्ऋत्यां नैरितां लोकं वारुणे वारुणं व्रजेत्॥ 79॥
यस्य देवस्य यद्वेश्म कृतं यदुकुलोद्वह।
तस्य लोकमवाप्नोति वृषःस्थानं गतो यदि॥ 80॥
वायव्ये वायुमाप्नोति सौम्यां च सोममाप्नुते।
ऐशान्यामीशमाप्नोति कर्ता वै देववेश्मनि॥ 81॥
य एतत्कारेद्भक्त्या ध्वजस्यारोपणं रवेः।
सहभुक्तानान् परान् भागान् सूर्यलोके महीयते॥ 82॥
तेजसाण्डजसंकाशः कीर्त्या चाम्बुजसन्निभः।
द्विजाङ्कतुल्यः प्रभयाः विक्रमेण च गोपतेः॥ 83॥
इति।

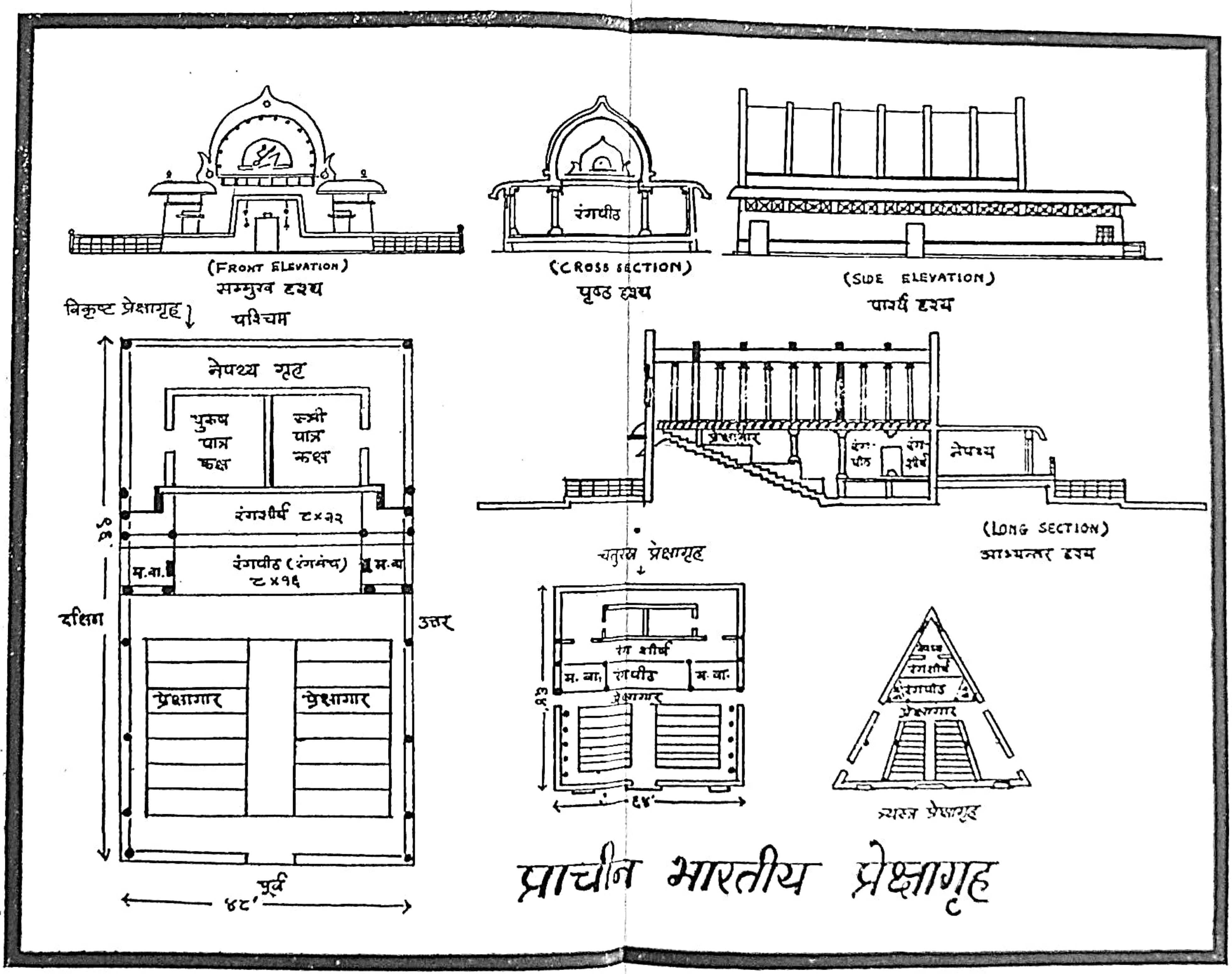


# प्राचीन भारतीय प्रेक्षागृह

# अथ परिशिष्टम् - 2

# वशिष्ठोक्त वास्तुपूजाविधि

मण्डनादि वास्तुकारों, स्थपतियों ने वास्तुपूजन पर पर्याप्त विचार किया है। प्रासादमण्डनम् में कहा गया है कि देवालय के निर्माणारम्भ से लेकर निर्माणोपरान्त देवप्रतिष्ठा तक सात कर्म होते हैं जिन्हें यथा विधि-निर्देश पूरा करना चाहिए। ये कर्म हैं- 1. कूर्म स्थापना, 2. द्वार स्थापना, 3. पद्मशिला स्थापना, 4. प्रासादपुरुष की स्थापना, 5. कलश, 6. ध्वजारोहण तथा 7. देवप्रतिष्ठा। इन सभी अवसरों पर वास्तुपूजन आवश्यक है। इससे कार्य निर्विघ्न, निरापद सम्पन्न होता है— कूर्म्मसंस्थापने द्वारे पद्माख्यायां तु पौरुषे। घटे ध्वजे प्रतिष्ठायामेवं पुण्याहसप्तकम्॥ (प्रासादमण्डनं 1, 36)

इसी प्रकार अपराजितपृच्छा के 'मिश्रकप्रासादसप्तपुण्याहमाहात्म्यसूत्र' में भी इस सम्बन्ध में निर्देश किया गया है। कहा गया है कि खातकर्म की पूर्णता पर कूर्म प्रतिष्ठा की जानी चाहिए। इससे समस्त जन्मों में भूमिलोक तथा राज्य की प्राप्ति होती है। प्रतिष्ठा शिला के इस प्रकार के फलों को दैवज्ञों ने कहा है कि इससे जन्म-जन्म में इच्छित स्थान, स्वर्गलोक, राज्यादि की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार अन्य फलों की उपलब्धि होती है— कृते कूर्मप्रतिष्ठाया: खाते पूर्णे च संस्थितौ। भूमिलोके तथा राज्यं सर्वजन्मसु शाश्वतम्॥ प्रतिष्ठायां शिलायास्तु दैवज्ञैस्सत्यमुच्यते। इच्छास्थाने स्वर्गलोके राज्यं जन्मनि जन्मनि॥ द्वारे प्रतिष्ठामाने तु स्तम्भोच्छ्रयसमन्विते। महापुरं च लभते काञ्चनं शतयोजनम्॥ पद्मशिला प्रतिष्ठायां शिवालये भूमस्तके। एकच्छत्रं महाराज्यं जनलोके च प्राप्नुयात्॥ पुरुषे स्थाप्य मानेत्वागमोक्तमन्त्रतस्तथा। तपालोके ब्रह्मलोके क्रीडति त्रिदशैः सह॥ प्रस्थाप्यमाने कलशे क्षीरार्णवसमुद्भवे। काञ्चने पुष्पविमाने सत्यलोके स गच्छति॥ कृते महाध्वजारोपे पताकाध्वजचामरैः। स गच्छेद् ज्ञानलोके तु यत्र शम्भुश्च देवता। बलीवर्दाः कर्मकरा अपराश्च शिवालये। ते यान्ति परमं लोकं यत्र देव उमापतिः॥ मृत्काष्ठलोहशैला वा ये लग्नाश्च शिवालये। दिव्यमूर्तिधराः सर्वे शिवलोक व्रजन्ति ते॥ (अपराजितपृच्छा 114, 11-19)

इस उपलक्ष्य में पूर्व दिवस वास्तु पूजा, भूतबलि आदि कर्म सम्यक् रूप से

सम्पन्न करने चाहिए। वृद्धवशिष्ठ का भी यही मत है- *अथ प्रवेशो नवसद्मनश्च सौम्यायने जीवसिते बलाढ्ये। सिते च पक्षे शुभवासरे च वास्त्वर्चनं भूतबलिं च कृत्वा॥*

वास्तुपूजन की कई विधियां हमारे यहां प्रचलित रही है। देववास्तु से लेकर मानववास्तु के सन्दर्भ में नाना मतों को ग्राह्य किया जाता रहा है। यहां वृद्धवशिष्ठ के मतानुसार सर्वप्रयोजनीय 'वास्त्वध्याय' को वशिष्ठसंहिता नामक ग्रन्थ से उद्धृत किया जा रहा है, इसी अध्याय को नारदपुराणकार ने भी उद्धृत किया है-

तत्र तावत्प्रवेशलक्षणम्-

**निर्माणे मन्दिराणां च प्रवेशे त्रिविधेऽपि वा॥ 1॥**

**वास्तुपूजा तु कर्त्तव्या यस्मात्तां कथयाम्यथः।**

गृह के निर्माण के अनन्तर उसमें सविधि प्रवेश करना चाहिए। प्रवेश तीन प्रकार का कहा गया है- अपूर्वसंज्ञक, सपूर्व संज्ञक प्रवेश तथा द्वन्द्व संज्ञक प्रवेश। नूतन गृह में प्रवेश के समय वास्तुपूजा की जानी चाहिए, यहाँ मैं इस पूजा की समग्र विधि को कह रहा हूँ।

एकाशीतिकोष्ठकम्-

**गृहमध्ये हस्तमात्रं समन्तात्तण्डुलोपरि॥ 2॥**

**एकाशीतिपदं कार्य्यं तिलैस्तुल्यं सुशोभनम्।**

वास्तुपूजन के लिए गृह के मध्यभाग में चावल पर पूर्व से पश्चिम की ओर एक-एक हाथ लम्बी दस रेखाएँ खींचे। फिर उत्तर से दक्षिण की ओर भी उतनी ही लम्बी-चौड़ी दस रेखाओं की रचना करें। इस प्रकार उनमें बराबर-बराबर 81 सुन्दर पद या कोष्ठक हो जाते हैं।

**एकद्वित्रिपदाः पञ्चचत्वारिंशत्सुरोर्चिताः॥ 3॥**

**द्वात्रिंशद्बाह्यतो वक्ष्यमाणाश्चान्तस्त्रयोदश।**

**तेषां स्थानानि नामानि वक्ष्यामीश्वरकोणतः॥ 4॥**

उक्त कोष्ठकों में एक, दो एवं तीन पदों वाले 45 देवताओं की यथोक्त स्थानानुसार पूजा के लिए नामोल्लेख करना चाहिए। इनमें से 32 देवताओं को बाहरी प्रान्त के

कोष्ठकों और 13 देवताओं को आन्तरिक कोष्ठकों में विराजित करना चाहिए। उक्त 45 देवताओं के स्थानों और नामों का कोणानुसार आगे वर्णन किया जा रहा है।

तत्र देवतास्थानानि-

तत्राग्निशम्भुकोणस्थस्त्वसौ चैव पदेश्वरः।
तस्माद्द्वितीयः पर्जन्यश्चासावेकपदेश्वरः ॥ 5 ॥
जयन्त्येन्द्रार्कसत्याख्या भृशाश्च द्विपदेश्वराः।
आकाशवायूपरतः क्रमादेवपदेश्वराः ॥ 6 ॥
एवं प्राच्यां नव ज्ञात्वा नवमे वान्यदिक्षु च।
आद्याश्चान्तावेकपादा द्विपादाः पञ्च मध्यमाः ॥ 7 ॥
अष्टौ पितृगणाधीशा यमान्ताः पश्चिमे सुराः।
आद्यंतौ द्वौ चैकपदौ द्विपदाः पञ्च मध्यगाः ॥ 8 ॥
रोगादिरित्यन्त्सुराः सप्त सौम्यदिशि क्रमात्।
तदधस्थश्चतुष्कोणेष्वीशानादिषु च क्रमात् ॥ 9 ॥
आपः सावित्रविजय-रुद्राश्चैकपदेश्वराः।
मध्ये नवपदो ब्रह्मा तस्येशानादिकोणगाः ॥ 10 ॥
आपवत्सोऽथ सविता विबुधाधिपसंज्ञकाः।
राजयक्ष्मा च चत्वारः सुराश्चैकपदेश्वराः ॥ 11 ॥
ब्रह्मणः पूर्वतो दिक्षु त्रिपदाश्चामरा अमी।
अर्यमा च विवस्वांश्च मित्रः पृथ्वीधरः क्रमात् ॥ 12 ॥
स्वस्वस्थानेषु देवेषु स्थापितेष्वीदृशं भवेत्।
कोणेषु पञ्च पञ्चैव चतुर्ष्वैकपदाः सुराः ॥ 13 ॥

**प्रागादिदिक्षु द्विपदाः पञ्च पञ्च यथाक्रमात्।**
**ब्रह्मणः पूर्वतो दिक्षु द्विपदाः स्युः समीपगाः ॥ 14 ॥**
**हिरण्यरेताः पर्जन्यो जयन्तः पाकशासनः।**
**सूर्यसत्यौ भृशाकाशौ वायुः पूषा च वै तथा ॥ 15 ॥**
**गृहर्क्षतः पितृपतिर्गन्धर्वो भृङ्गराजकः।**
**मृगः पितृगणाधीश स्थाप्यो दौवारिकाह्वयः ॥ 16 ॥**
**सुग्रीवः पुष्पदन्तश्च जलाधीशो निशाचरः।**
**शोषः पापश्च रोगो हि मुखो भल्लाट एव च ॥ 17 ॥**
**सोमसर्पौ दित्यदिती द्वात्रिंशदमराः स्मृताः।**
**आपश्चैवापवत्सश्च जयो रन्ध्रस्तथैव च ॥ 18 ॥**
**मध्ये नवपदो ब्रह्मा तस्थौ तस्य समीपगः।**
**प्रागाद्यन्तरिता देवाः परितो ब्रह्मणः स्मृताः ॥ 19 ॥**
**अर्यमा सविता चैव विवस्वान्विबुधाधिपः।**
**मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधरः क्रमात् ॥ 20 ॥**
**आपवत्सोऽष्टमः पञ्चचत्वारिंशत् सुरोत्तमाः।**
**ज्ञात्वैवं स्थाननामानि ब्रह्मणा सहितान्यसेत् ॥ 21 ॥**

किनारे के बत्तीस कोष्ठों में ईशान कोण से आरंभ करते हुए क्रमशः बत्तीस देवता पूजनीय है। उनके नाम इस प्रकार हैं- अग्नि$_1$ पर्जन्य$_2$ जयन्त$_3$ इन्द्र$_4$ सूर्य$_5$ सत्य$_6$ भृश$_7$ आकाश$_8$ वायु$_9$ पूषा$_{10}$ अनृत या वितथ$_{11}$ गृहक्षत$_{12}$ यम$_{13}$ गन्धर्व$_{14}$ भृङ्गराज$_{15}$ मृग$_{16}$ पितर$_{17}$ दौवारिक$_{18}$ सुग्रीव$_{19}$ पुष्पदन्त$_{20}$ वरुण$_{21}$ असुर$_{22}$ शेष$_{23}$ राजयक्ष्मा$_{24}$ रोग$_{25}$ अहि$_{26}$ मुख्य$_{27}$ भल्लाटक$_{28}$ सोम$_{29}$ सर्प$_{30}$ अदिति$_{21}$ दिति$_{32}$- ये चारों ही किनारों के देवता कहे गए हैं। ईशान, अग्नि, नैर्ऋत्य एवं वायु कोण के देवों के समीप क्रमशः आप$_{33}$ सावित्र$_{34}$

जय$_{35}$ तथा रुद्र$_{36}$ के पद होते हैं।

ब्रह्मा के चारों ओर पूर्व आदि आठों दिशाओं में क्रमशः अर्यमा$_{37}$ सविता$_{38}$ विवस्वान$_{39}$ विबुधाधिप$_{40}$ मित्र$_{41}$ राजयक्ष्मा$_{42}$ पृथ्वीधर$_{43}$ आपवत्स$_{44}$ हैं और मध्य के नवपदों में ब्रह्मा$_{45}$ को स्थापित किया जाना चाहिए। इस प्रकार सभी पदों में उक्त पैंतालीस देवताओं को स्थापित कर पूजना चाहिए। जैसे कि ईशान कोण में आप, आपवत्स, पर्जन्य, अग्नि और दिति ये पाँच देव एक पद होते हैं, उसी प्रकार अन्य कोणों के पाँच-पाँच देवता भी एक पद के भागी होते हैं।

अन्य जो बाह्य पङ्क्ति के (जयन्त, इन्द्रादि) 20 देवता हैं, वे सब द्विपद दो-दो पदों के भागी होते हैं तथा ब्रह्मा से पूर्व, दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर दिशा में अर्यमा, विवस्वान, मित्र एवं पृथ्वीधर ये चार देवता हैं, वे त्रिपद या तीन-तीन पदों के भागी होते हैं। इनकी तदनुसार ही स्थापना कर पूजा करनी चाहिए।

**वास्तुज्ञो वास्तुमन्त्रेण गन्धपुष्पाक्षतादिभिः।**

**प्रणवेनार्चयेद्वापि अथवा स्वस्वनामभिः॥ 22॥**

वास्तुविधि के ज्ञाता जनों को चाहिए कि वे ब्रह्मादि सहित एक पद, द्विपद तथा त्रिपद देवताओं का वास्तुमन्त्रों के साथ ही गन्ध, पुष्प, अक्षतादि के साथ प्रणव या ॐ के साथ उन-उन देवताओं के नामानुसार पूजा निवेदित करें।

**शुक्लवस्त्रयुगं दद्याद् धूपदीपफलैः सह।**

**अपूपैर्भूरि नैवेद्यैर्वाद्यैः सह समर्पयेत्॥ 23॥**

देवताओं के आवाहनादि सहित धूप, दीप, फल के साथ-साथ दो शुक्लवस्त्रों को समर्पित करें। उन्हें अपूप या पूआ का नैवेद्य प्रदान करें और इस अवसर पर वाद्यों का वादन करें।

**ताम्बूलं च ततो दद्याद्देवेभ्य पृथक्पृथक्।**

**दत्त्वा पुष्पाञ्जलिं कर्ता प्रार्थयेद्वास्तुपूरुषम्॥ 24॥**

**विप्रेभ्यो भोजनं दत्त्वा स्वयं भुञ्जीत बन्धुभिः।**

देवताओं को पृथक्-पृथक् रूप से अन्त में ताम्बूल, पान सोपारी प्रदान करें और

पुष्पाञ्जलि के साथ वास्तुपुरुष की प्रार्थना करें। गृहस्वामी को चाहिए कि वह इस अवसर पर ब्राह्मणों को भोजन करवाने के उपरांत स्वयं भी बंधुजनों के साथ भोजन ग्रहण करें।

अथ प्रार्थनाः

**नमस्ते वास्तुपुरुष भूशय्यानिरत प्रभो॥ 25॥**

**मद्गृहे धनधान्यादिसमृद्धिं कुरु सर्वदा।**

वास्तुपुरुष की प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिए- 'भूमि शय्या पर शयन करने वाले वास्तुपुरुष! आपको मेरा नमस्कार है। प्रभो! आप मेरे आवास को धन-धान्यादि से सम्पन्नता प्रदान कीजिए।'

**इति प्राર्थ्य ततो दद्याद्दक्षिणामर्चकाय च॥ 26॥**

**एवं यः कुरुते सम्यग्वास्तुपूजां प्रयत्नतः।**

**आरोग्यं पुत्रपौत्रादि धनधान्यं लभेन्नरः॥ 27॥**

इस प्रकार प्रार्थनादि कृत्यों के उपरान्त देवता के समक्ष पूजादि करवाने वाले पुरोहित को दक्षिणा देकर उसका बहुमानादि करना चाहिए। जो कोई इस प्रकार सम्यक् रूप से, प्रयत्नपूर्वक वास्तुपूजा करता है, वह आरोग्य, पुत्र, पौत्र, धन-धान्य प्राप्त करता हुआ सुखी होता है।

**वास्तुपूजामकृत्वा यः प्रविशेन्नवमन्दिरे।**

**रोगान्नानाविधान् क्लेशानश्नुते सर्वसङ्कटान्॥ 28॥**

जो व्यक्ति वास्तुपूजा नहीं कर नए गृह में प्रवेश करता है, वह नाना तरह के रोग, क्लेश और सभी प्रकार के सङ्कटों को झेलता है। इसलिए सुख, आरोग्यादि के लिए वास्तुपूजन अवश्य करना चाहिए।

इति वसिष्ठसंहितायां वास्त्वध्यायान्तर्गते वास्तुपूजाप्रकारः॥[1]

---

1. वशिष्ठसंहिता 39, 196-223 एवं नारदपुराण पूर्वभाग द्वितीयपाद 600-618

# उपस्कारक ग्रन्थ

## संस्कृत पुराण एवं प्रकृतग्रन्थादि

**अग्निपुराण :** वेदव्यास, सम्पादक-अनुवादक- तारिणीश झा एवं घनश्याम त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 1998 ई.

**अपराजितपृच्छा :** भुवनदेवाचार्य, सम्पादक पोपटभाई अम्बाशङ्कर मन्कड, बड़ौदा ऑरियण्टल इंस्टीट्यूट, बडोदरा, 1950 ई. तथा इस पर डॉ. एल. मिश्र कृत आलोचनात्मक अध्ययन, लक्ष्मी प्रकाशन, इलाहाबाद 1994 ई.

**ईशानशिवगुरुदेवपद्धति :** ईशानशिवगुरुदेव मिश्र, सम्पादक- टी. गणपति शास्त्री, अनन्तशयन ग्रन्थमाला, राजकीय मुद्रणालय, त्रिवेन्द्रम, 1920-25 ई.

**काश्यपशिल्पम् :** काश्यप मुनि विरचित, सम्पादक- श्रीकृष्ण शर्मा, आनन्द आश्रम संस्कृत सीरीज, पूना, 1926 ई. तमिल अनुवाद : सरस्वती महल पुस्तकालय, तञ्जावुर, संस्करण 2005 ई. मराठी अनुवाद : डॉ. आरपी कुलकर्णी, मुम्बई एवं पुनर्संशोधन सहित हिन्दी अनुवाद - डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', प्रकाशनाधीन.

**कृत्यकल्पतरु** (प्रतिष्ठाकाण्ड)- भट्टश्रीलक्ष्मीधर, सम्पादक - डॉ. के. वी. रङ्गास्वामी अयङ्गार, बड़ौदा, पुनर्मुद्रण 1990 ई.

**गरुडपुराण** (संक्षिप्त अनुवाद)- वेदव्यास, गीताप्रेस गोरखपुर से कल्याण के विशेषाङ्क के रूप में प्रकाशित वर्ष 2000 ई.

**ज्ञानप्रकाशदीपार्णव** (गुजराती अनुवाद)- सम्पादक- प्रभाशङ्कर ओघड़भाई सोमपुरा, पालीताणा 1963 ई.

**क्षीरार्णव :** विश्वकर्माकृत, सम्पादक- प्रभाशङ्कर ओघड़भाई सोमपुरा, गोरावाड़ी पालीताणा, 1967 ई.

**तन्त्रसमुच्चय ( सव्याख्या ) :** नारायणनम्बूदिरीपाद प्रणीतः शङ्करप्रणीत तथा विमर्शिन्याख्याया व्याख्या समेतः, संशोधक-सम्पादक टी. गणपति शास्त्री, राजकीय मुद्रणालय, त्रिवेन्द्रम्, 1919 ई. प्रो. उन्नी के सम्पादन में पुनर्प्रकाशन- नाग पब्लिकेशंस,

दिल्ली 1999 ई. तथा इसी के तृतीय शिल्पभाग का मलयालम अनुवाद, पञ्चाङ्गम् प्रेस एण्ड बुक सेलर, कुन्नामकुलम्, त्रिचूर, केरल, 2002 ई.

**देवतामूर्तिप्रकरणम् :** सूत्रधार मण्डन, सम्पादक- डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन, चन्द्रावल दिल्ली, 2003 ई. परिशिष्ट में रूपमण्डनम्.

**देवीभागवत** (संक्षिप्त अनुवाद)- वेदव्यास, गीताप्रेस गोरखपुर से कल्याण के विशेषाङ्क के रूप में प्रकाशित 1960 ई.

**देवीपुराण :** वेदव्यास, सम्पादक - राधेश्याम खेमका, गीताप्रेस गोरखपुर से कल्याण के विशेषाङ्क के रूप में प्रकाशित 2004 ई.

**नरसिंहपुराण** (सानुवाद)- वेदव्यास, गीताप्रेस गोरखपुर, संस्करण 2000 ई.

**ज्योतिषरत्नमाला :** श्रीपतिभट्टाचार्य प्रणीत, सम्पादक-व्याख्याकार - डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', परिमल पब्लिकेशंस, शक्तिनगर, दिल्ली 2004 ई.

**प्रमाणमञ्जरी :** सूत्रधार मल्ल कृत, सम्पादक- प्रियबाला शाह, बड़ौदा आरियण्टल सीरिज, बड़ौदा, 1958ई. अनुवाद - डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', प्रकाशनाधीन.

**प्रासादमण्डनम्** - सूत्रधार मण्डन, सम्पादक-अनुवादक - डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली 2005 ई.

**बृहत्संहिता :** वराहमिहिर- भट्टोत्पलीयविवृत्ति सम्पादक- सुधाकर द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, बनारस, 1996 ई., हिन्दी अनुवाद अच्युतानन्द झा, चौखम्बा प्रकाशन, बनारस, 1997 ई. एवं **वाराहीसंहिता** नाम से पं. सुखानन्द मिश्र एवं पं. बलदेव मिश्र कृत अनुवाद, खेमराज श्रीकृष्णदास, मुम्बई, संस्करण 2000 ई.

**ब्रह्मवैवर्तपुराण** - वेद व्यास, गीताप्रेस गोरखपुर संस्करण पुनर्मुद्रण 1998 ई., मूलपाठ एवं टीका बाबूराम उपाध्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन 2003 ई.

**भविष्यपुराण :** (अर्थमात्र) अनुवाद-संयोजक- महाप्रभुलाल गोस्वामी, गीताप्रेस गोरखपुर के कल्याण के 66वें वर्ष का विशेषाङ्क 1992 ई. मूलपाठ एवं टीका बाबूराम उपाध्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन 1995-2003 ई.

**मत्स्यपुराण :** वेदव्यास विरचित, गीताप्रेस गोरखपुर, कल्याण का विशेषाङ्क 1985 ई. पुनर्प्रकाशन 2005 ई.

**मयमतम् :** मयमुनि विरचित सम्पादक - टी. गणपतिशास्त्री, अनन्तशयन

ग्रन्थावली, तिरुवनन्तपुरम् 1919 ई. भाषाटीका : डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', प्रकाशनाधीन.

**मानसार :** मानमुनि विरचित, तृतीय भाग: सम्पादक – प्रसन्नकुमार आचार्य, ऑक्सफोर्ड यूनिवरर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1936 ई. पुनर्मुद्रण– मुंशीराम मनोहरलाल, दिल्ली, 1997ई. तथा लॉ प्राईस पब्लिकेशंस, दिल्ली 2002 ई.

**मानसोल्लास अपरनाम अभिलषितार्थचिन्तामणि ( द्वितीयभाग ) :** भूलोकमल्ल सोमेश्वर विरचित, सम्पादक– जी. के. श्रीगोण्डेकर, बड़ौदा ऑरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा 1939 ई.

**वायुपुराण** – अनुवादक – तारिणीश झा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 1990 ई.

**राजवल्लभवास्तुशास्त्रम् :** सूत्रधारमण्डन कृत, सम्पादन व व्याख्या– डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली 2005 ई. *वास्तुराजराजवल्लभ* नाम से रामयत्न ओझा द्वारा सम्पादित, मास्टर खेलाड़ीलाल सङ्कटाप्रसाद, बनारस, 2000 ई.

**वास्तुनिघण्टु** – सम्पादक – प्रभाशङ्कर ओघडभाई सोमपुरा (गुजराती), अहमदाबाद 1977 ई.

**वास्तुमञ्जरी :** क्षेत्रार्कसूनु सूत्रधार नाथा भारद्वाज विरचित, सम्पादक एवं अनुवादक–डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, बनारस, 2006 ई.

**वास्तुसारमण्डनम् :** सूत्रधार मण्डन, सम्पादक – प्रभाशङ्कर ओघड़भाई सोमपुरा, पथिक सोसायटी, अहमदाबाद, 1977 ई. आयतत्त्वसहित समीक्षात्मक पाठ एवं अनुवादक– डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन, दिल्ली, 2005 ई.

**वास्तुसूत्रोपनिषद् :** सम्पादक – एलिस बोनर, सदाशिवरथ शर्मा एवं बेट्टिना बोमर, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 2000 ई.

**विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम् :** विश्वकर्माभाषित, सम्पादक– के. वासुदेव शास्त्री, सरस्वती महल पुस्तकालय, तञ्जावुर, संस्करण 1999 ई.

**विश्वकर्माप्रकाश :** विश्वकर्माकृत, अनुवाद मिहिरचन्द्र, खेमराज कृष्णदास, मुम्बई, संस्करण 1998 ई. तथा गणेशदत्त पाठक कृत अनुवाद, ठाकुर प्रसाद एण्ड संस, वाराणसी, 2001 ई.

**विष्णुधर्मोत्तरमहापुराण :** कृष्णद्वैपायनव्यासभाषित, सम्पादक मधुसूदन माधवप्रसाद शर्मा, खेमराजकृष्णदास, वैंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई 1911 ई. पुनर्संपादन–

नागशरणसिंह, नाग पब्लिकेशन, जवाहरनगर, दिल्ली, 1998 ई., तृतीयखण्ड : सम्पादक प्रियबाला शाह, बड़ौदा ऑरियण्टल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा 1958 ई.

**शतपथब्राह्मण** – वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, मुम्बई, 1910 ई.

**शिल्पदीपक** : सूत्रधार गङ्गाधर प्रणीत, सम्पादक – डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, बनारस, 2005 ई.

**शिल्परत्नम्** : श्रीकुमार विरचित (पूर्वार्द्ध) सम्पादक– टी. गणपति शास्त्री, अनन्तशयन संस्कृत ग्रन्थमाला, क्रमाङ्क 75, राजकीय मुद्रणालय, त्रिवेन्द्रम्, 1922 ई.; (उत्तरार्द्ध) सम्पादक के. साम्बशिव शास्त्री, अनन्तशयन संस्कृत ग्रन्थमाला, क्रमाङ्क 98, राजकीय मुद्रणालय, त्रिवेन्द्रम्, 1929 ई.

**शिल्परत्नाकर** : नर्मदाशङ्कर सोमपुरा लिखित एवं प्रकाशित, हलवद दरवाजा के पास, खारी में, ध्रांगध्रा–काठियावाड़, 1939 ई.

**शिल्पशास्त्रम्** : सम्पादक एवं हिन्दी अनुवाद : डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी 2006 ई.

**शिल्पप्रकाश** : रामचन्द्र कौलाचार, सम्पादक– एलिस बोर्नर व एस.आर शर्मा, लियेडेन, 1963 ई. मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली से पुनर्प्रकाशित 2005 ई.

**शुल्बसूत्रम्** : कात्यायन, कर्क, महीधर भाष्य, जयकृष्णदास हरिदास गुप्त, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी 1958 ई.

**समराङ्गणसूत्रधार** : धाराधिपभोजदेवविरचितम् – सम्पादक टी. गणपति शास्त्री, गायकवाड संस्कृत ग्रन्थमाला, क्रमाङ्क–25, केन्द्रीय पुस्तकालय वडोदरा, 1929 ई. हिन्दी अनुवाद डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' शीघ्र प्रकाशनाधीन।

**ज्ञानरत्नकोश** – विश्वकर्मा (पाण्डुलिपि) बड़ौदा ऑरियण्टल इंस्टीट्यूट, बडोदरा

## हिन्दी शोधग्रन्थ

गोपीनाथ शर्मा – **राजस्थान के इतिहास के स्रोत**, जयपुर

गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा – **उदयपुर राज्य का इतिहास**, जोधपुर

जॉन फेथफुल फ्लीट – **भारतीय अभिलेख संग्रह** (हिन्दी अनुवाद) जयपुर

डीआर भण्डारकर - राजस्थान में संस्कृत ग्रन्थों की खोज रिपोर्ट (अनुवादक- ब्रह्मदत्त त्रिवेदी) राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

श्यामलदास दधिवाड़िया - वीरविनोद, सज्जन यन्त्रालय, उदयपुर

सच्चिदानन्द सहाय - मन्दिर स्थापत्य का इतिहास, पटना

## अंग्रेजी ग्रन्थ

Acharya PK- An Encyclopaedia of Hindu Architecture, Delhi. 2004.

Baumer Bettina & Das Rajendraprasad (Edited.)- Shilpratnakosa of Niranjan Mahapatra, Delhi. 2005.

Kramrisch Stella- Hindu Temple, Delhi. 1980.

Ram Raz- Essay on the architeture of the Hindu, Delhi. 1971.

Sarada HV- Maharana Kumbha, Ajmer.1926.

Sukla DN- Vastushastra ( vol-1), Delhi. 1998.

## शिलालेख संग्रह, सूचीपत्रादि

भावनगर इन्सक्रिप्शंस, भावनगर

केटलॉग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मैन्यूस्क्रिप्ट्स, भाग 12, प्राच्यविद्या पतिष्ठान, उदयपुर संग्रह, जोधपुर

## पत्रिकाएं

शोध पत्रिका : राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर

जरनल ऑफ बम्बई ब्राञ्च रॉयल एशियाटिक सोसायटी : मुम्बई

सम्मेलन पत्रिका : कलाङ्क, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

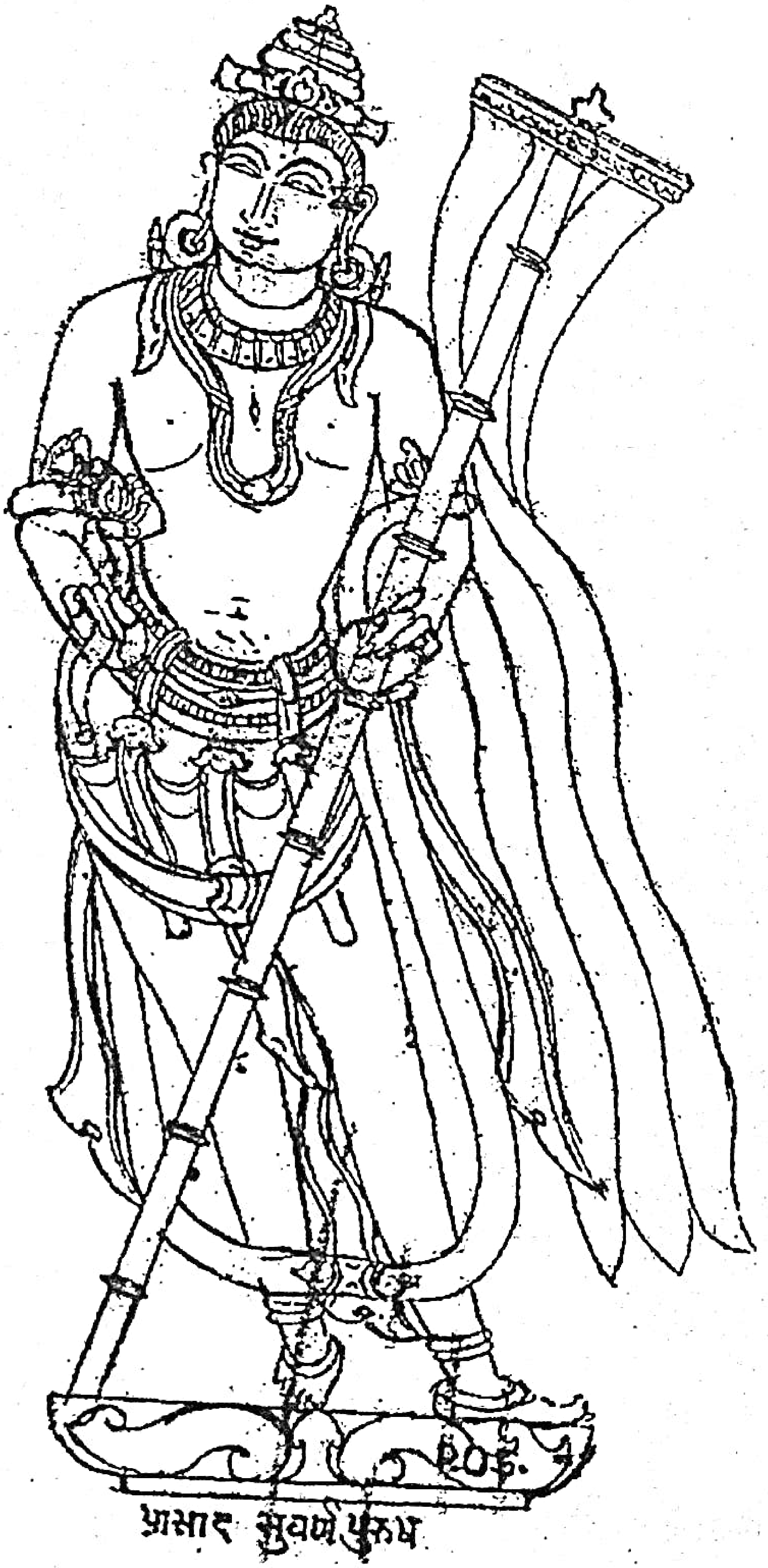


शिखर पर स्थापनीय स्वर्णपुरुष का स्वरूप

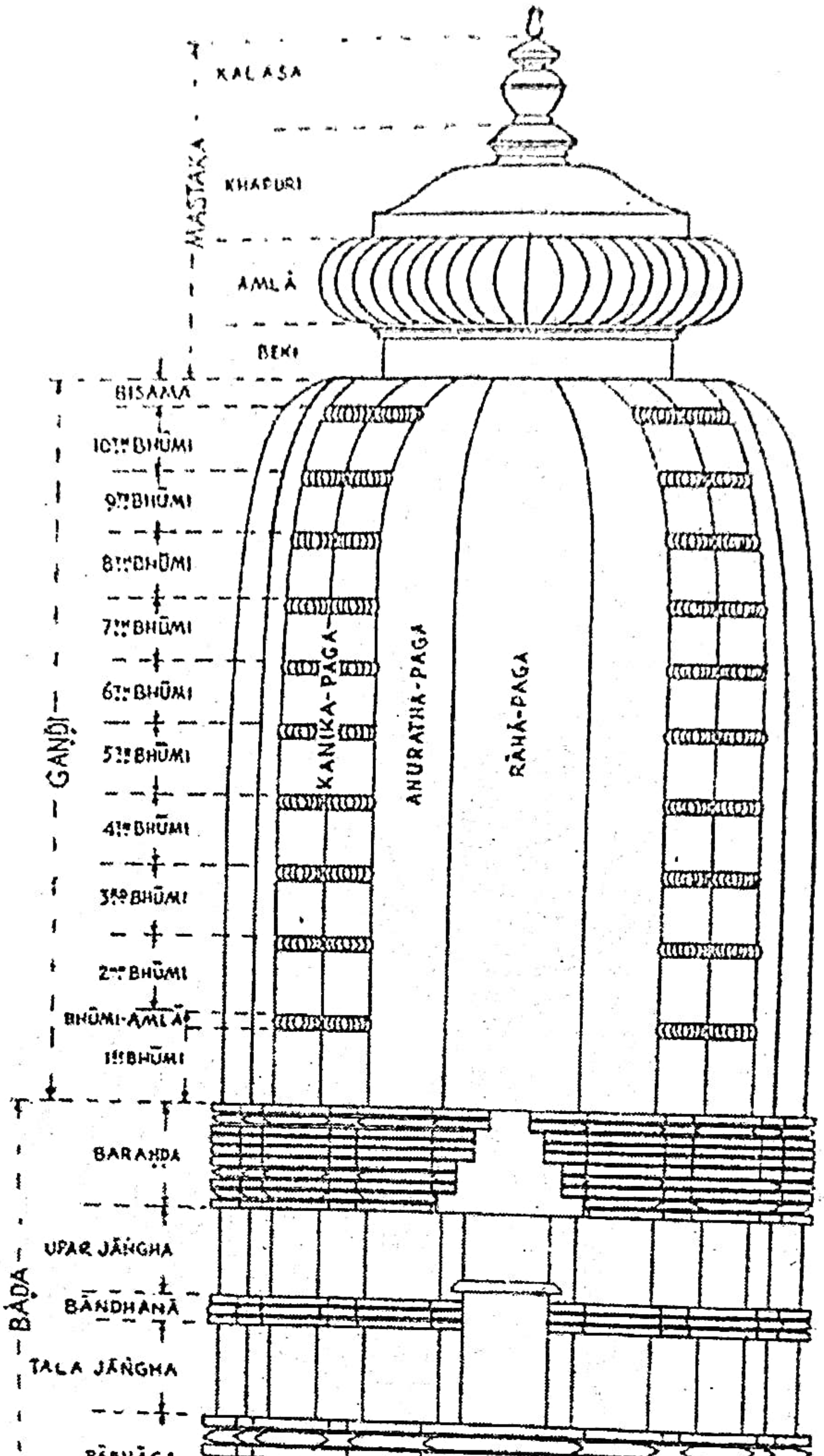


भुवनेश्वर के लिंगराज मन्दिर का आधार से शिखर तक का स्वरूप। इसमें रेखाओं के सैद्धान्तिक तत्त्वों का दर्शाया गया है। प्रधानतः नीचे से शिखर तक क्रमशः प्रभाग, ताल जंघा, ऊपरी जंघा, बरण्डा, एक से दशावधि तक भूमिकाओं का विभाजन, बिस्मा, बेकी, आमलक, खपूर्ज, कलशादि का विन्यास दर्शाया गया है।

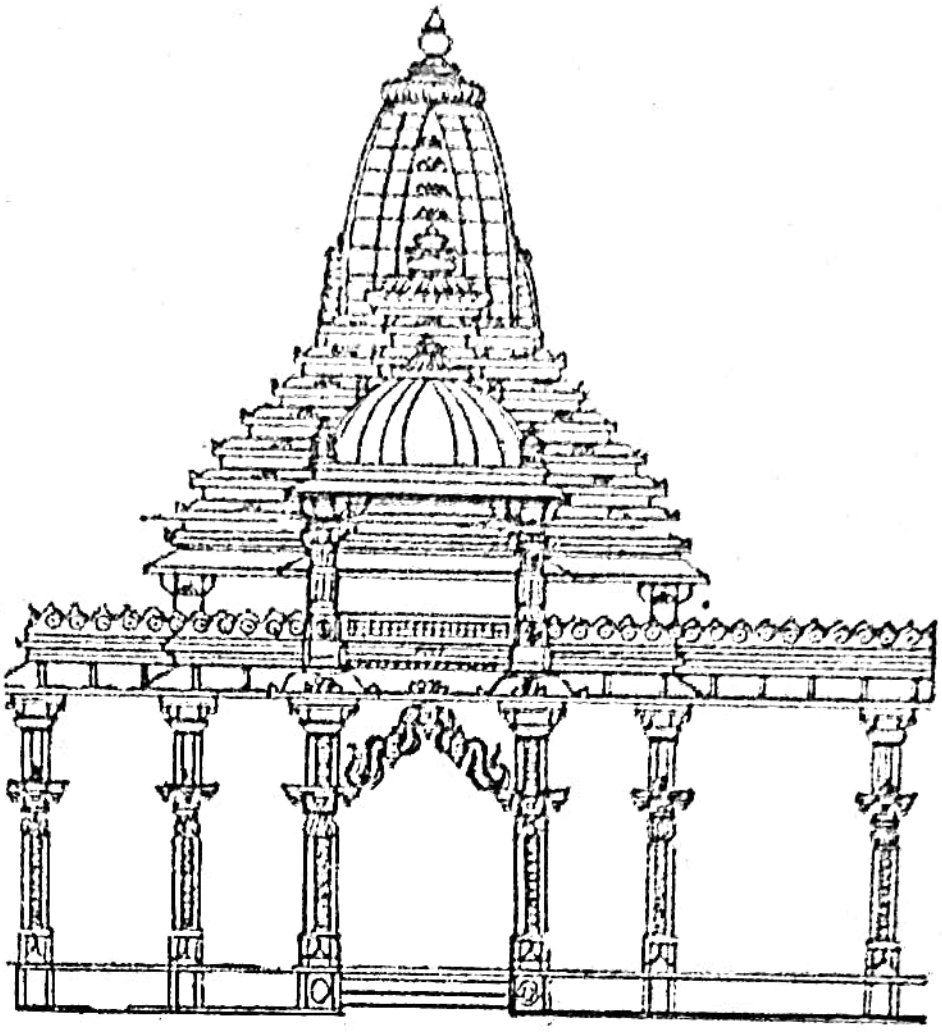

एक सामान्य मन्दिर का रेखांकन और शिखर का स्वरूप

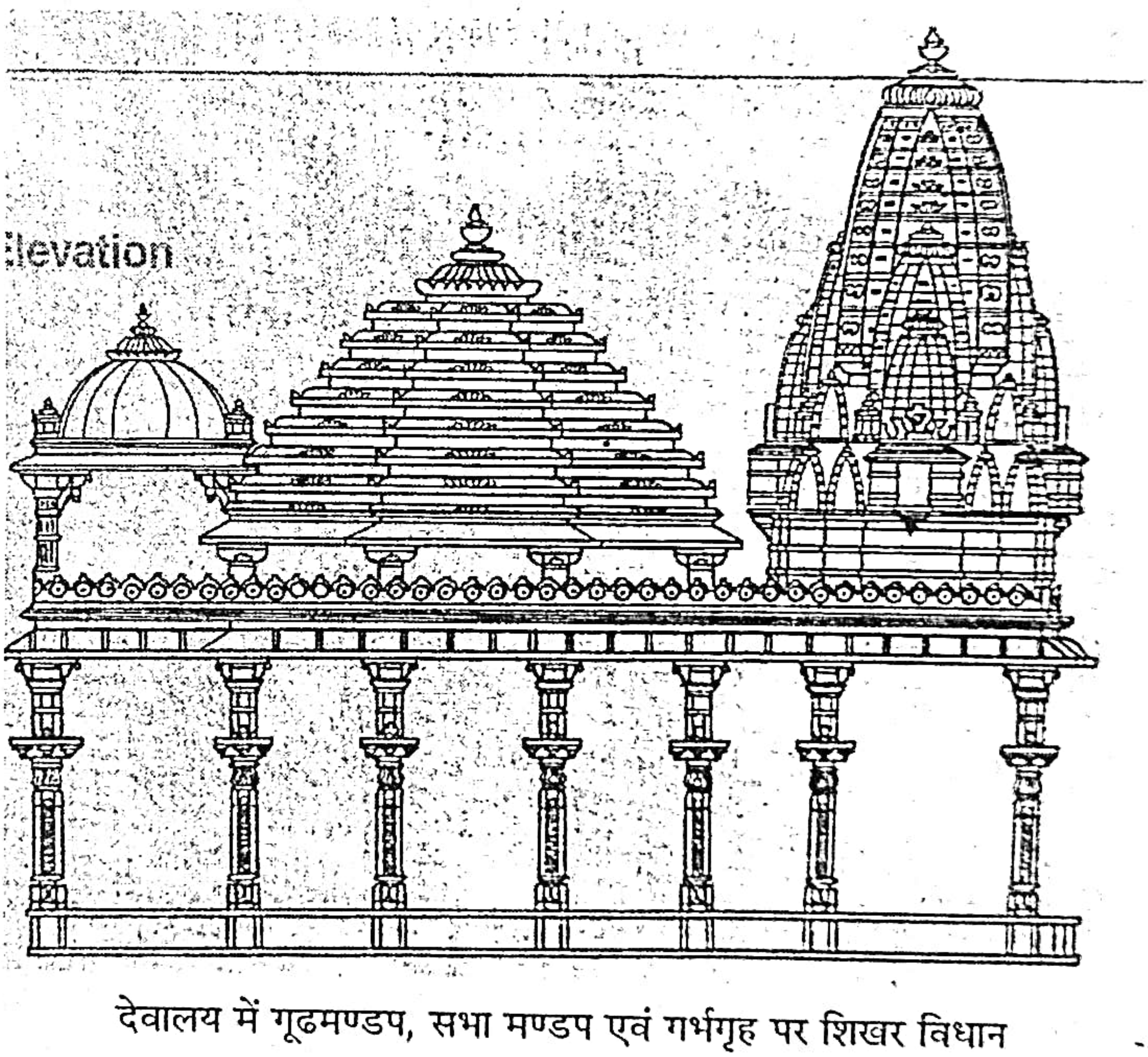


देवालय में गूढमण्डप, सभा मण्डप एवं गर्भगृह पर शिखर विधान

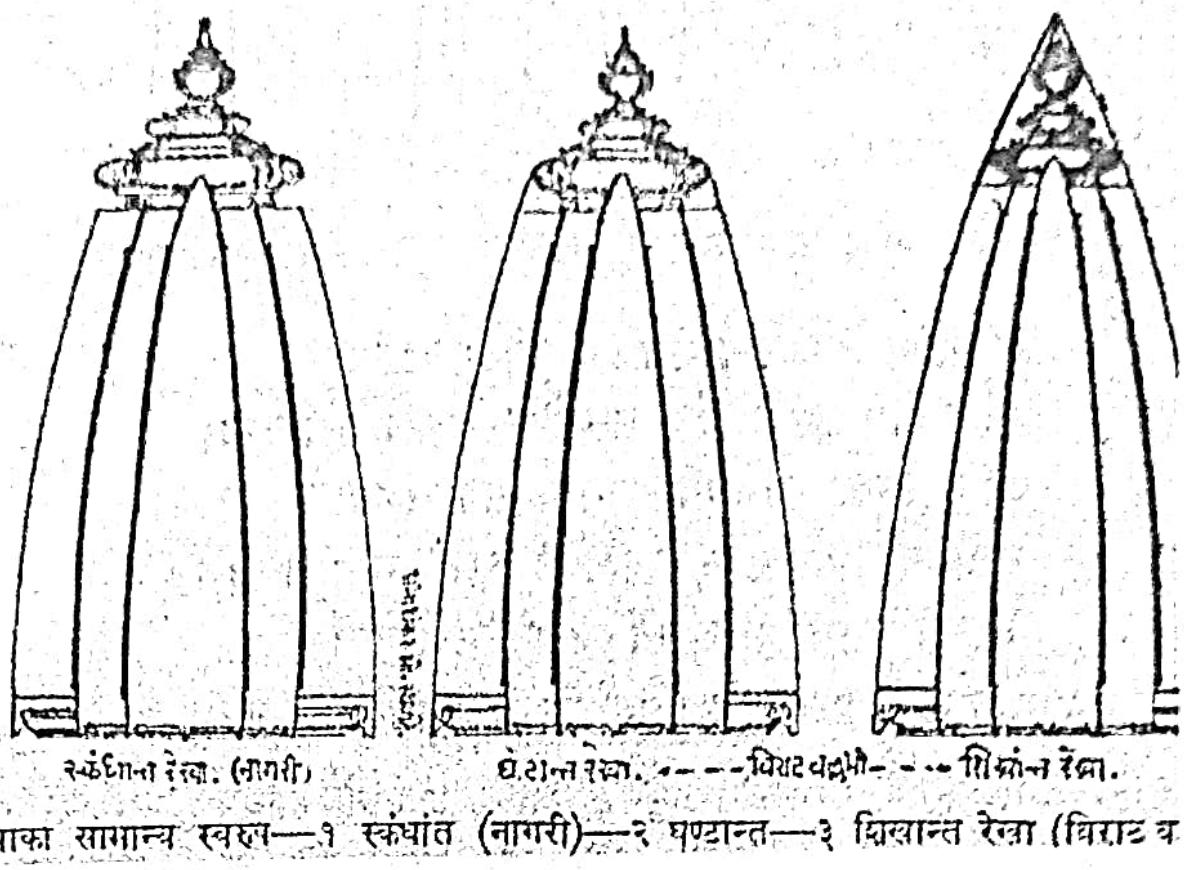


शिखर के लिए क्रमशः स्कन्धान्त (नागरी), घण्टान्त एवं शिखान्त रेखाओं का स्वरूप।

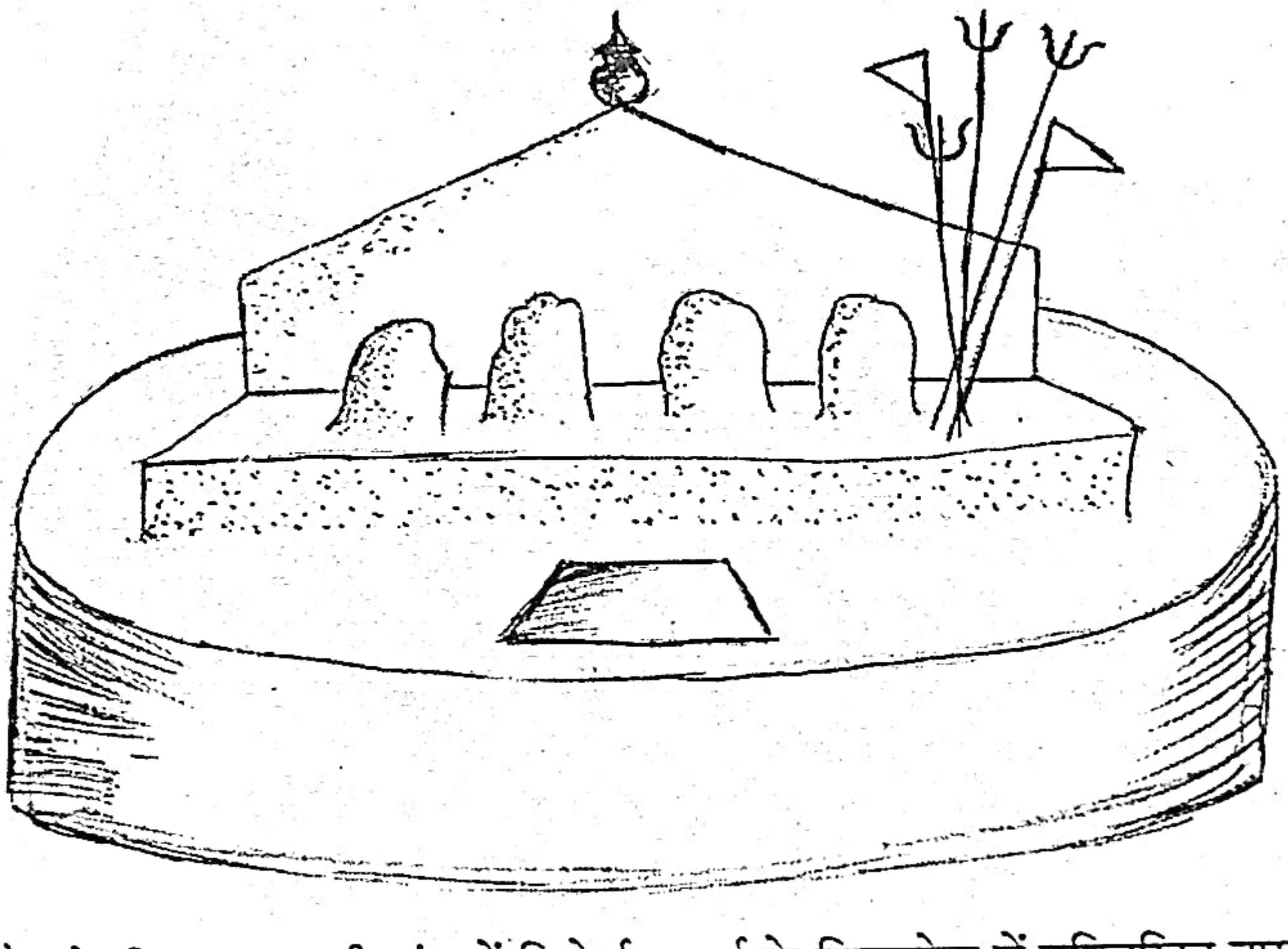

चित्तौड़ के निकटस्थ नगरी गांव में मिले ईसा पूर्व के शिलालेख में उल्लिखित नारायण वाटिका का कल्पित रेखांकन। इसमें शिखर के नाम पर केवल त्रिकोणीय रचना पर कलश है। मेवाड़ में इस प्रकार के देवरे (देवालयों) की परम्परा आज तक विद्यमान हैं।

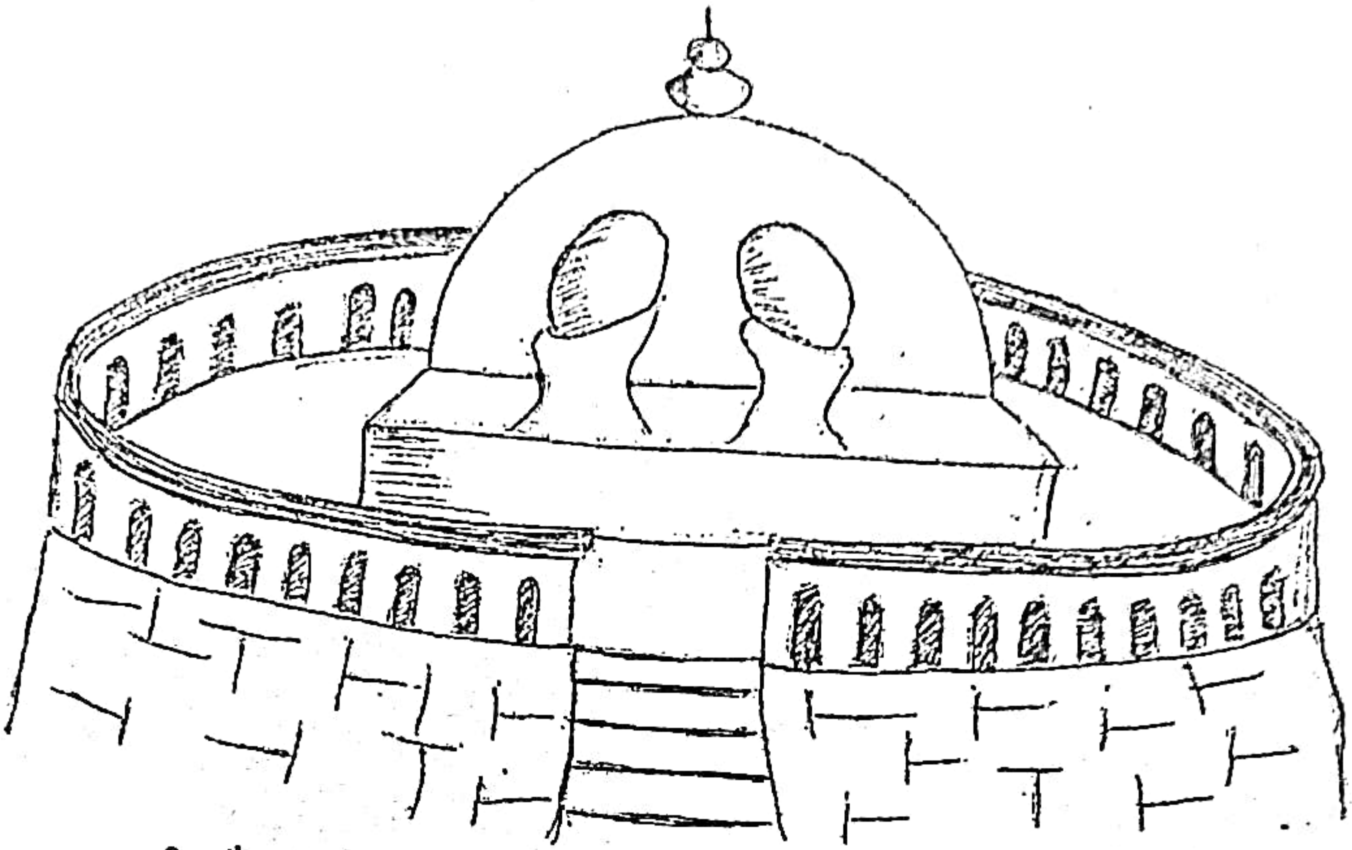

नगरी गाँव जिसे महाभारत एवं महाभाष्य में माध्यमिका कहा गया है, में ईसा पूर्व बने संकर्षण–वासुदेव के वाटिकानुमा मन्दिर का परिकल्पित चित्र। इसमें परकोटा (प्राकार) होता था।

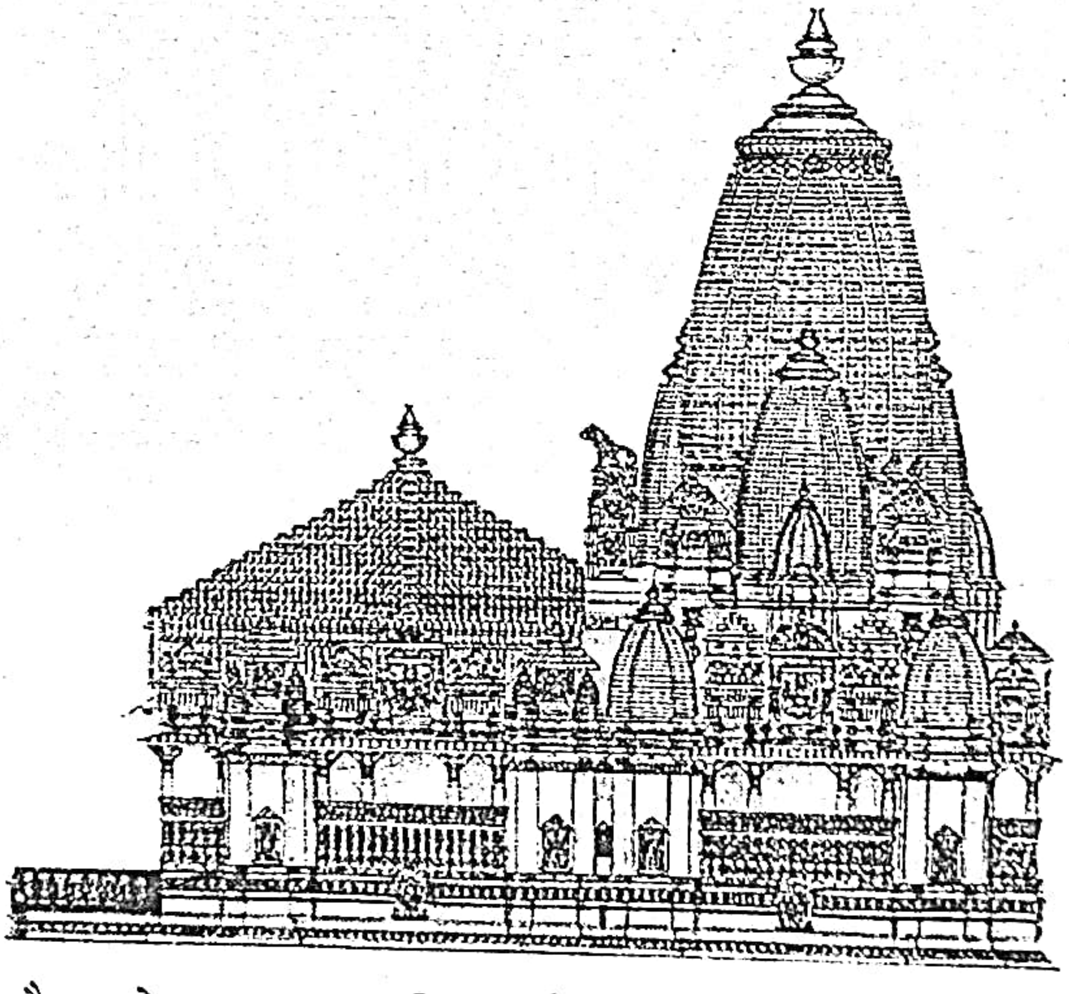

चित्तौड़गढ़के कुम्भश्याम मन्दिर का रेखांकन। सूत्रधार गोविन्द के बचपन में ही इसका जीर्णोद्धार हुआ। इसमें उन्नत नागर शैली के शिखर की संरचना है।

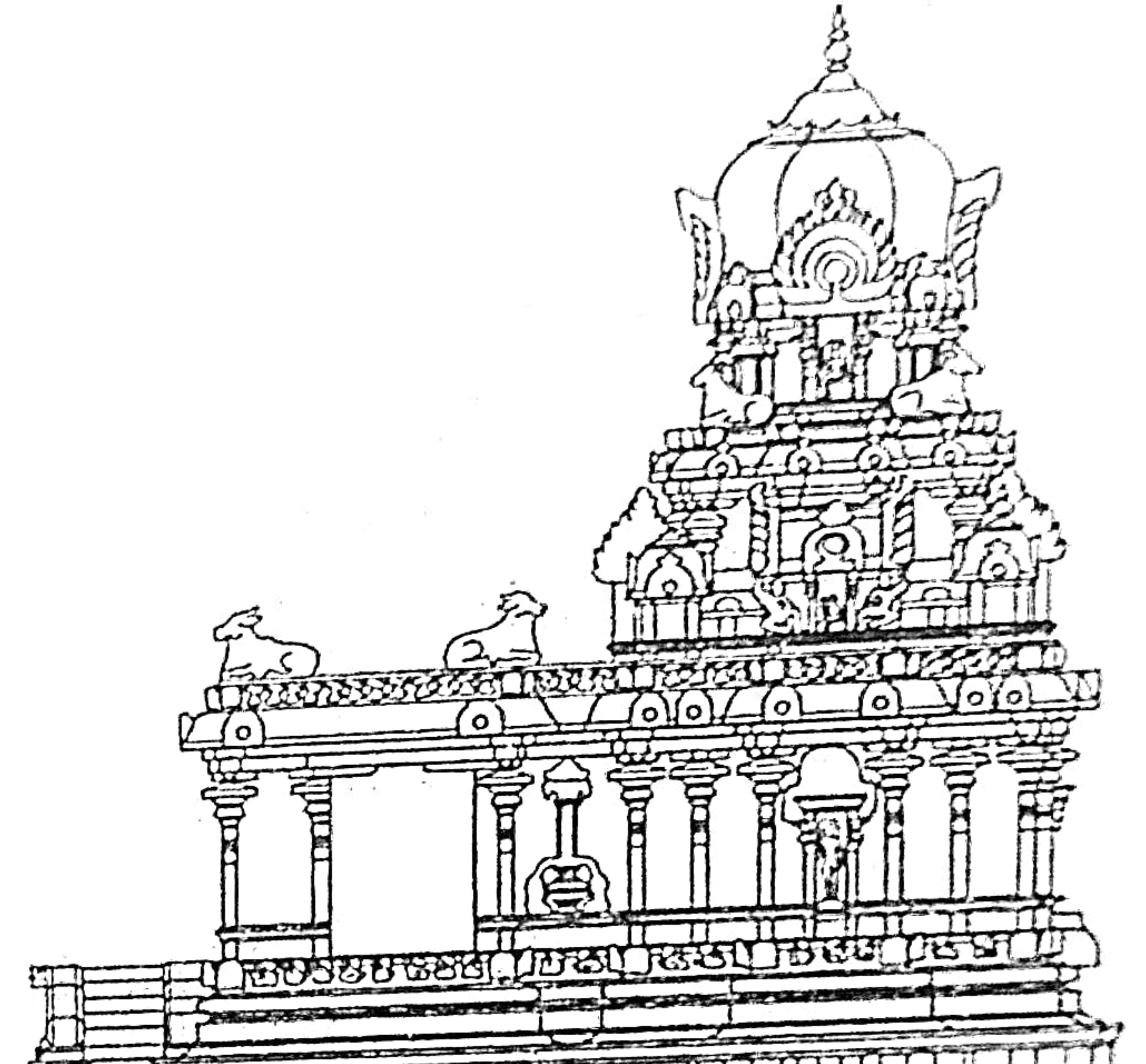

द्राविड़ शैली के एक प्रासाद की शिखर संरचना

शिखर पर रेखा-स्वरूप का दिग्दर्शन। शिखर पर रेखाओं कि लिए पाँच से २८ भाग तक एक-एक भाग बढ़ाए जाने पर रेखांकन के २५ भेद होंगे। इसी प्रकार ८ से ६८ भाग तक क्रमशः चार-चार भाग की वृद्धि करते जाने पर रेखांकन के १६ भेद बताए गए हैं।

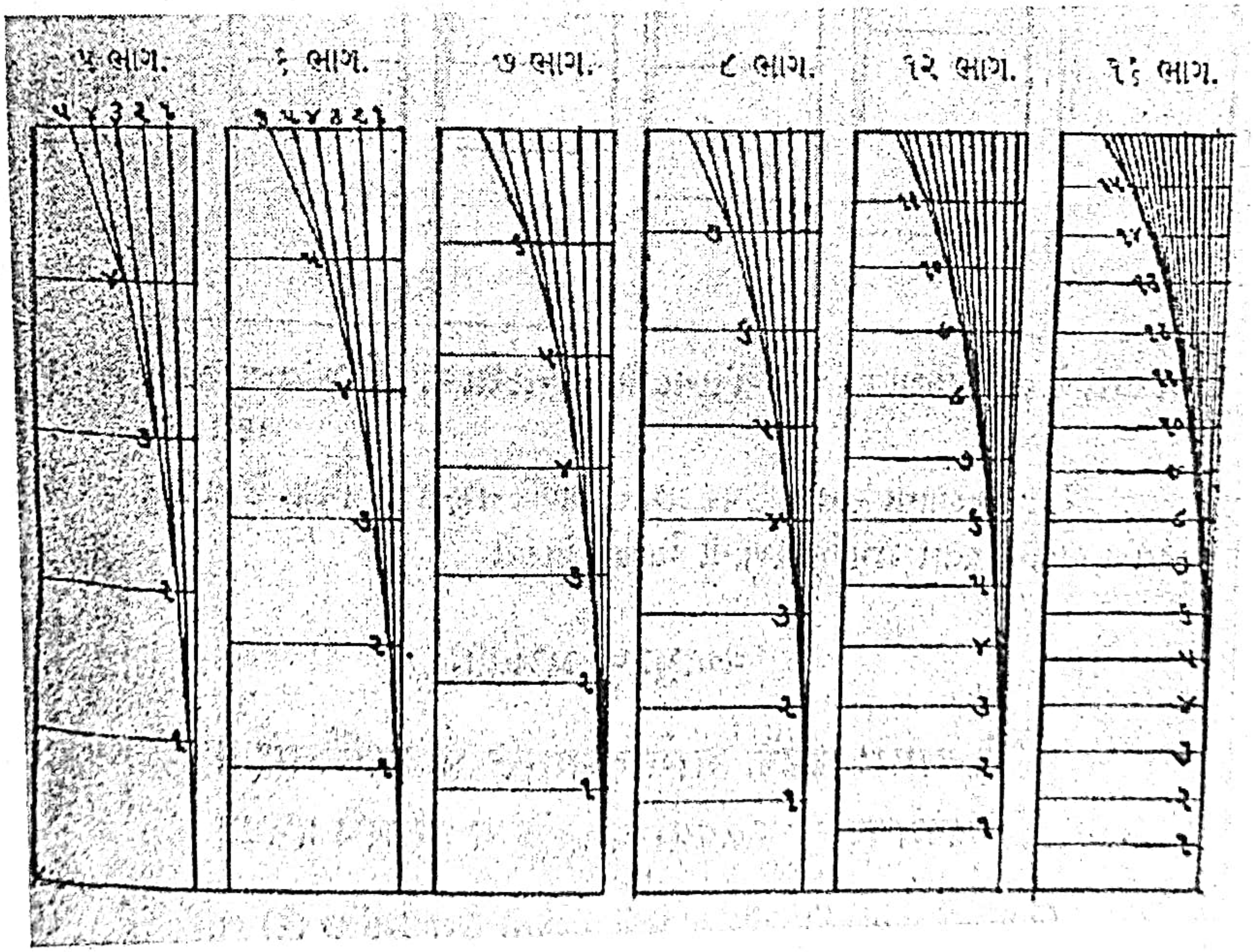

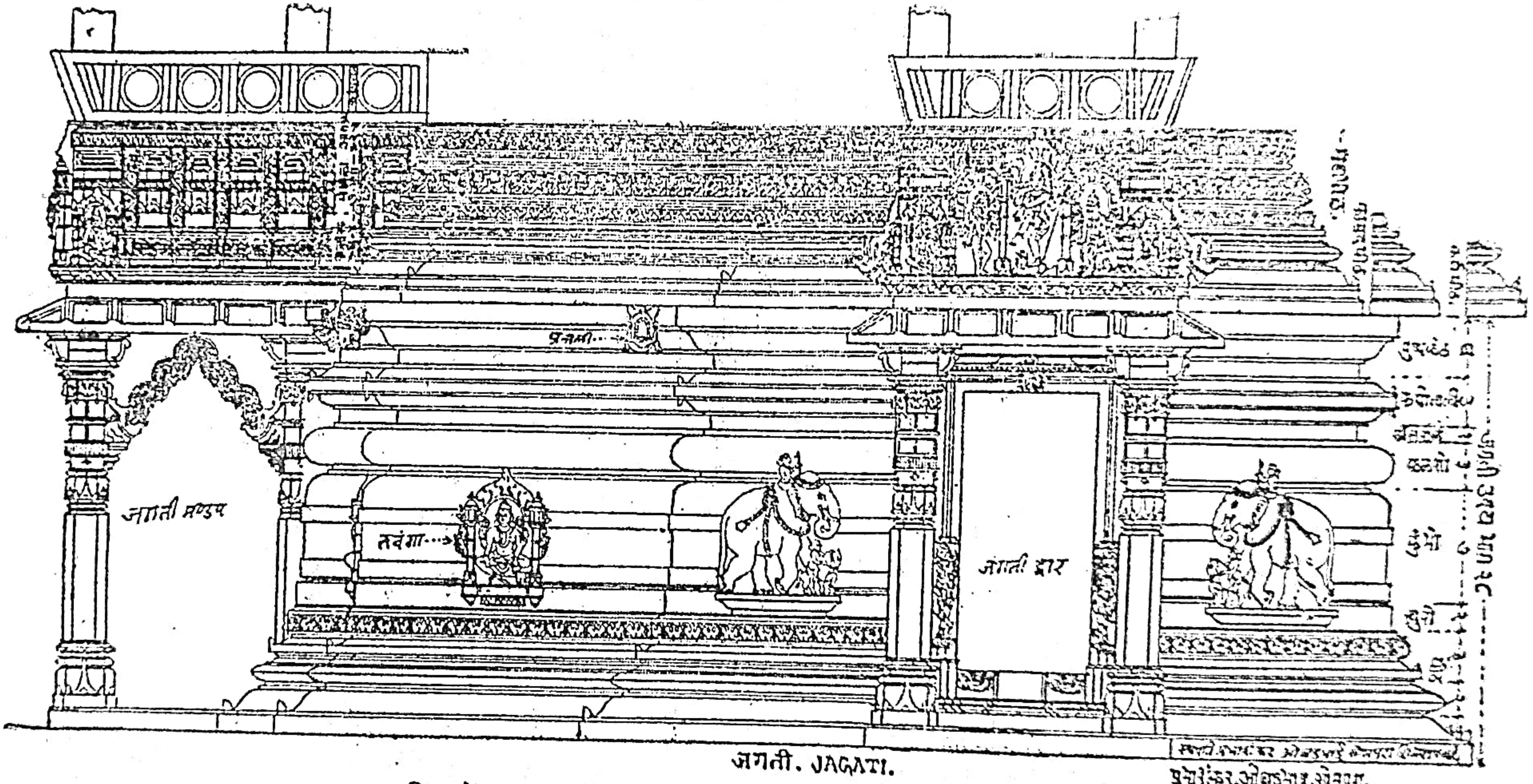


मन्दिर में जगती, प्रवेश चतुष्किका, महापीठ एवं कक्षासन की संरचना

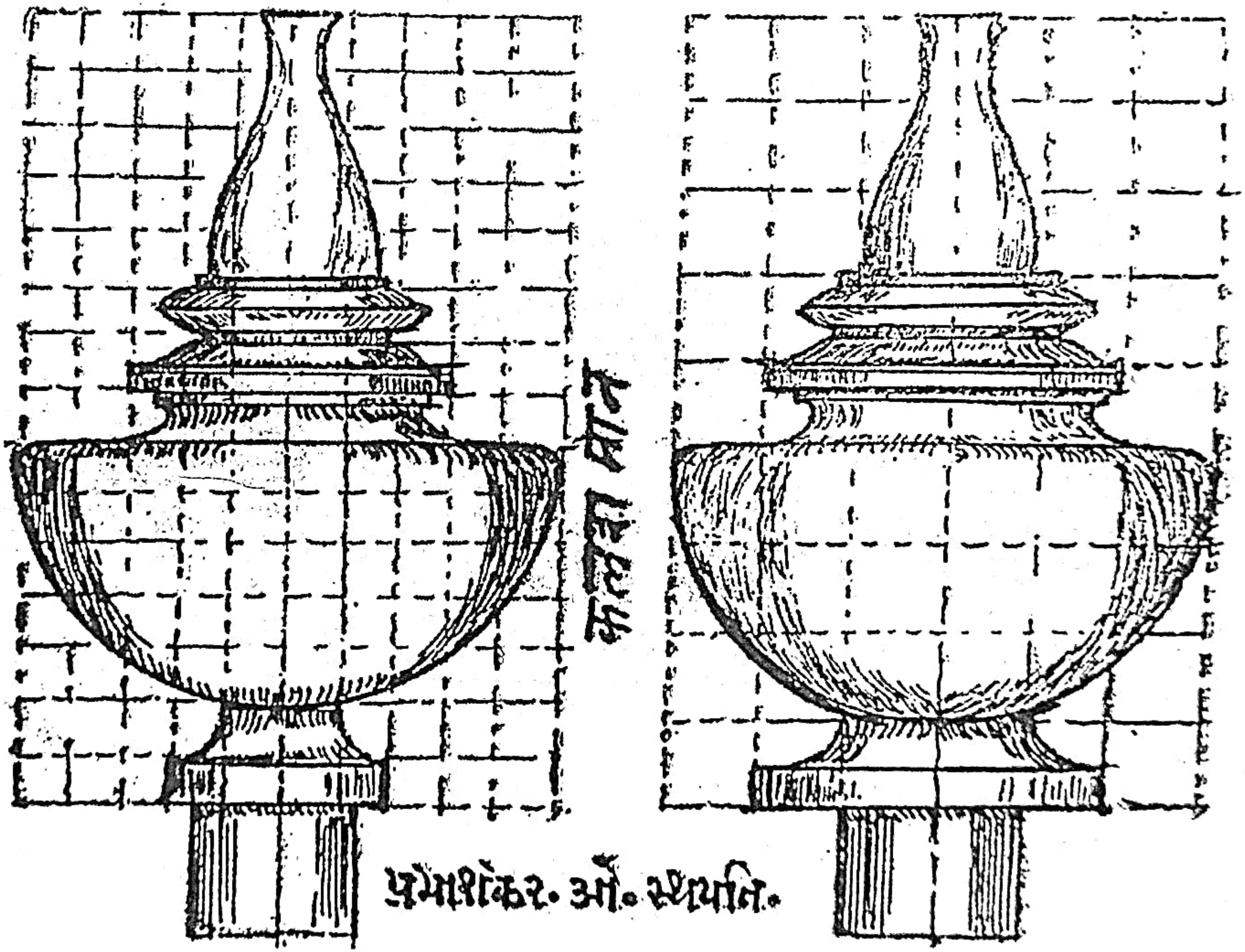


शिखर के लिए कलश का स्वरूप एवं मान।

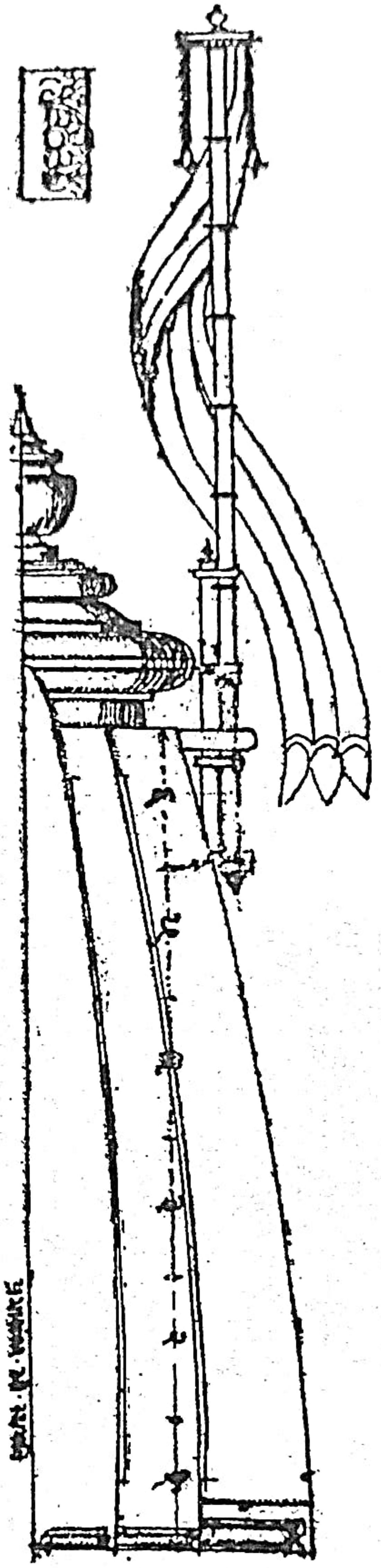

शिखरके ध्वजा दंड

शिखर पर ध्वजा, ध्वजाधार, ध्वजादण्ड एवं योग्य पाटली की संरचना

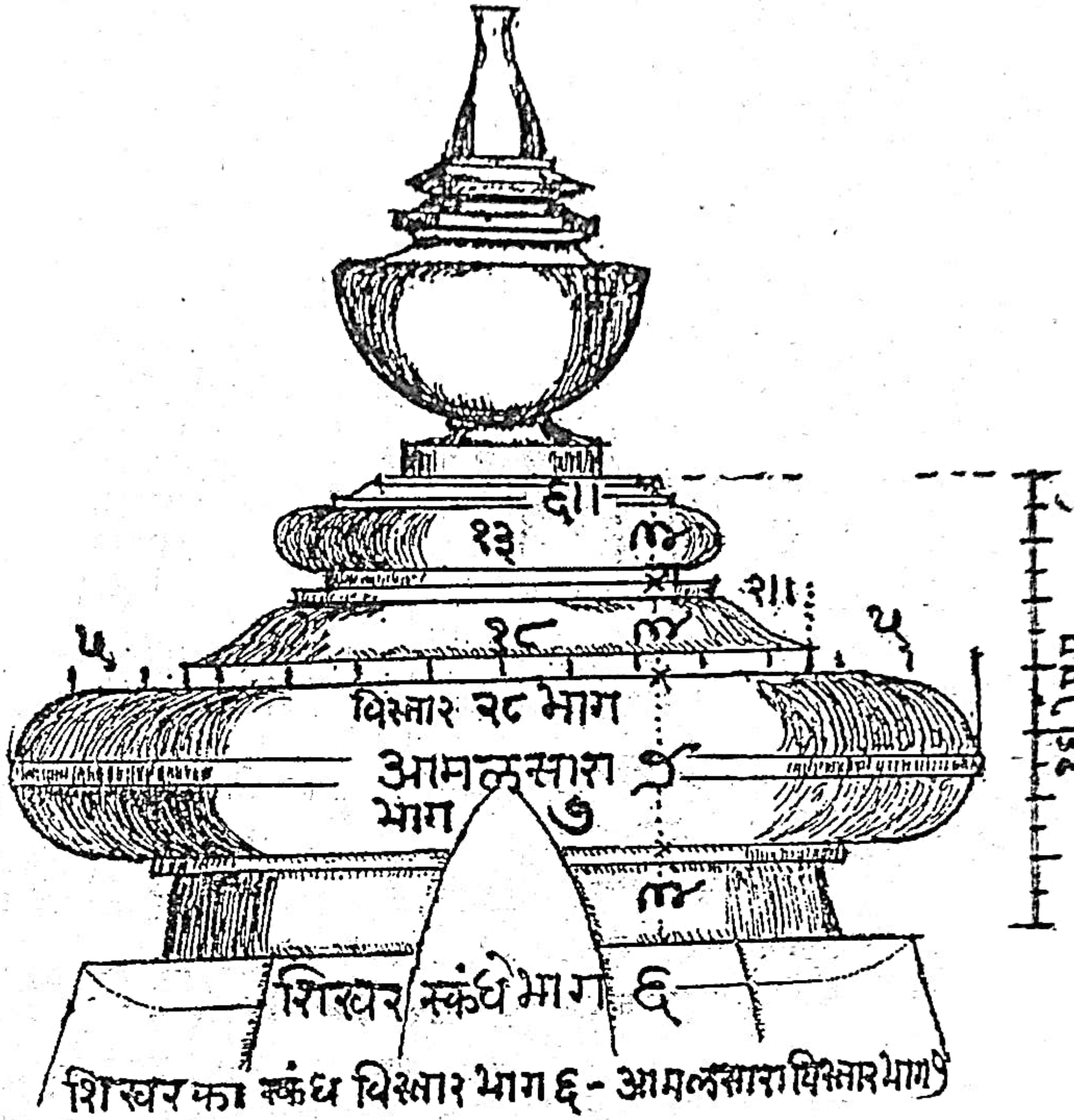


शिखर पर कलश के विभिन्न भाग और उनका आकारांश

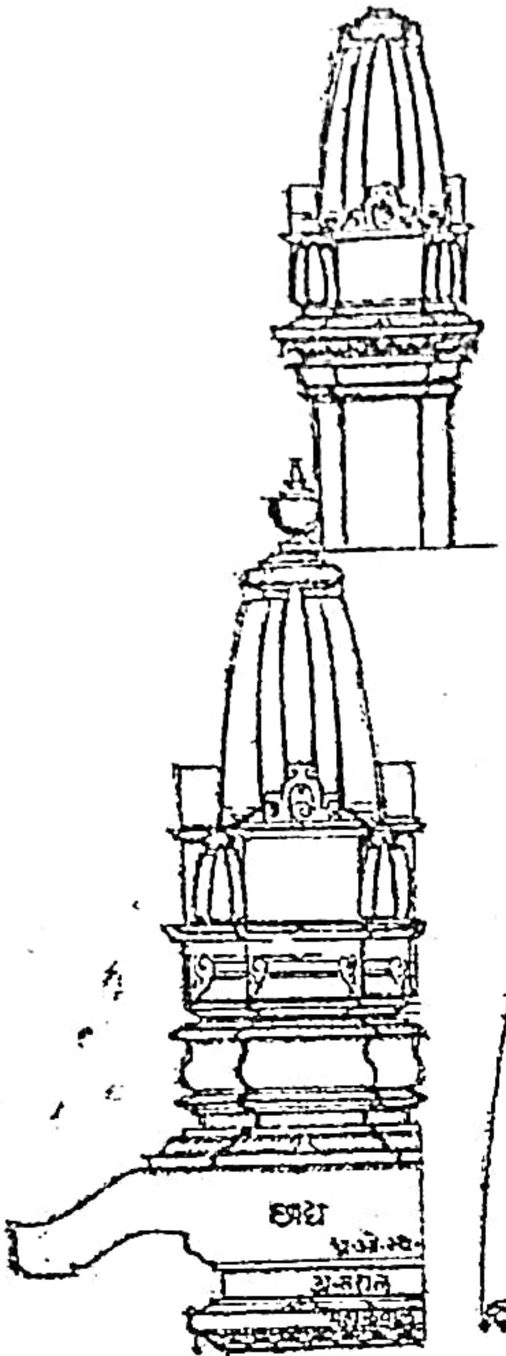


श्रृंग पर श्रृंग विधान

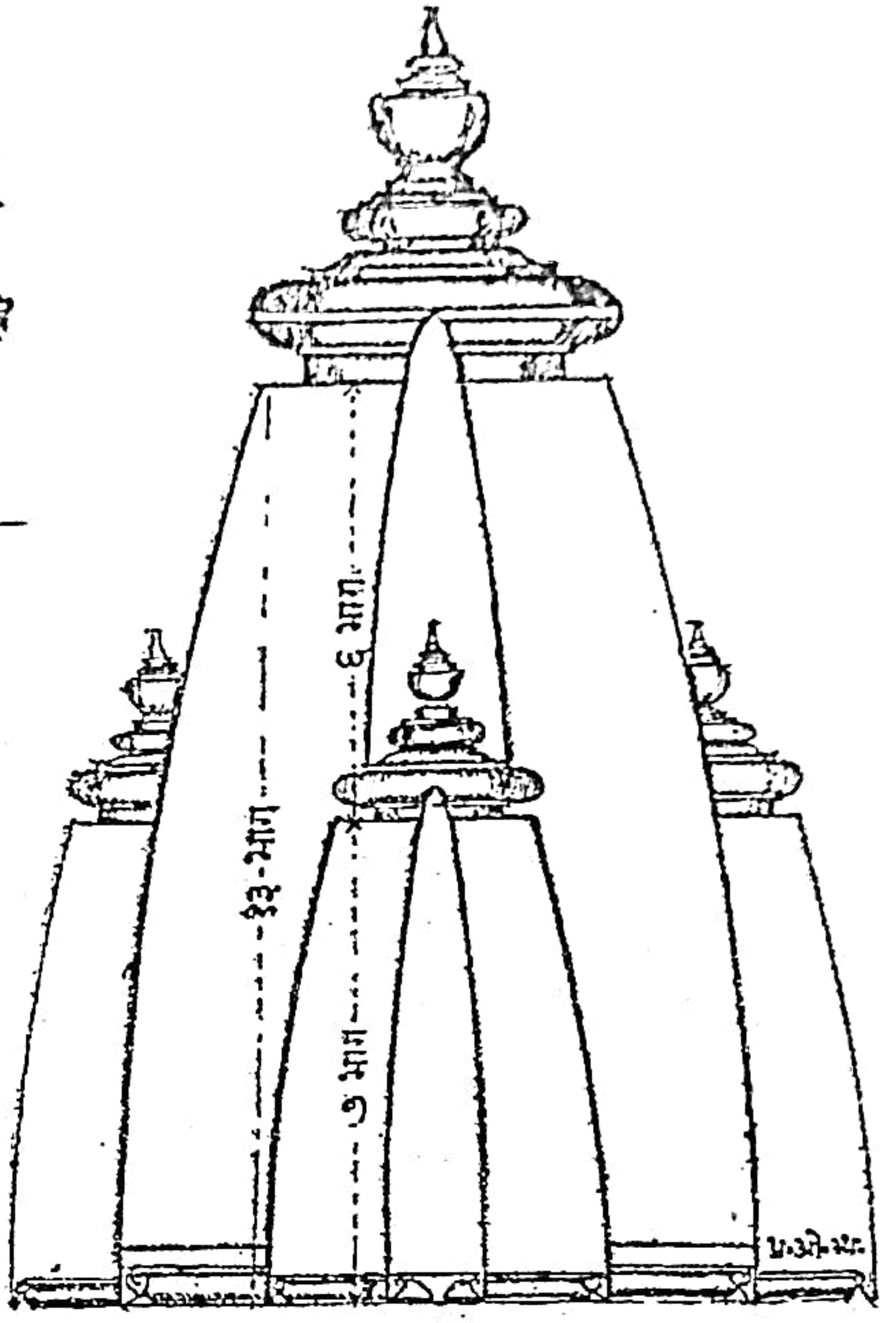


उरुश्रृंग विधान

मन्दिर के शिखर पर श्रृङ्ग, उरुश्रृङ्ग एवं छाद्य के साकार विधान

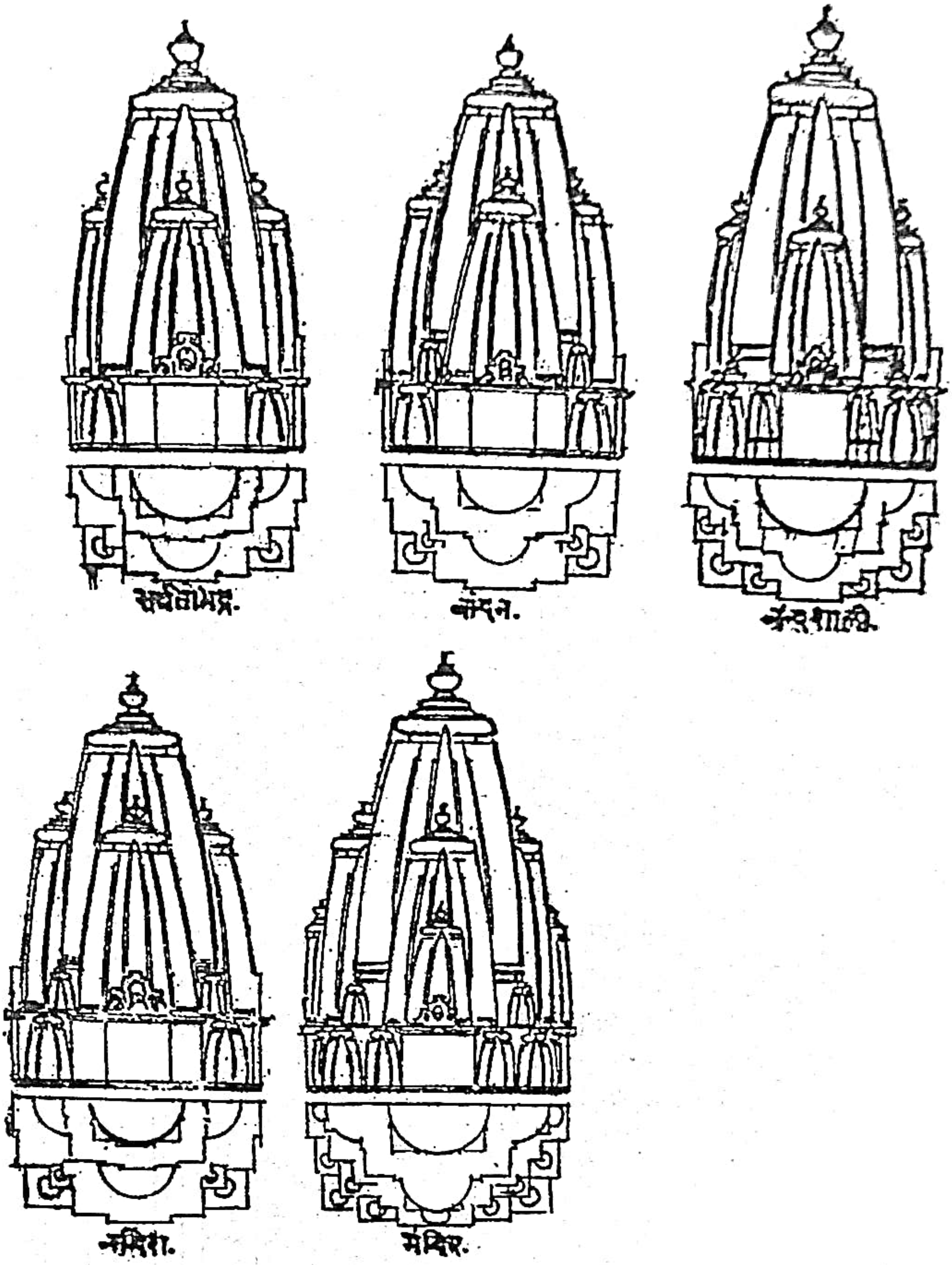


मन्दिरों में सर्वतोभद्र, नन्दन, नन्दीशाल, नन्दीश और मन्दिर शैली के शिखर का रचना विधान

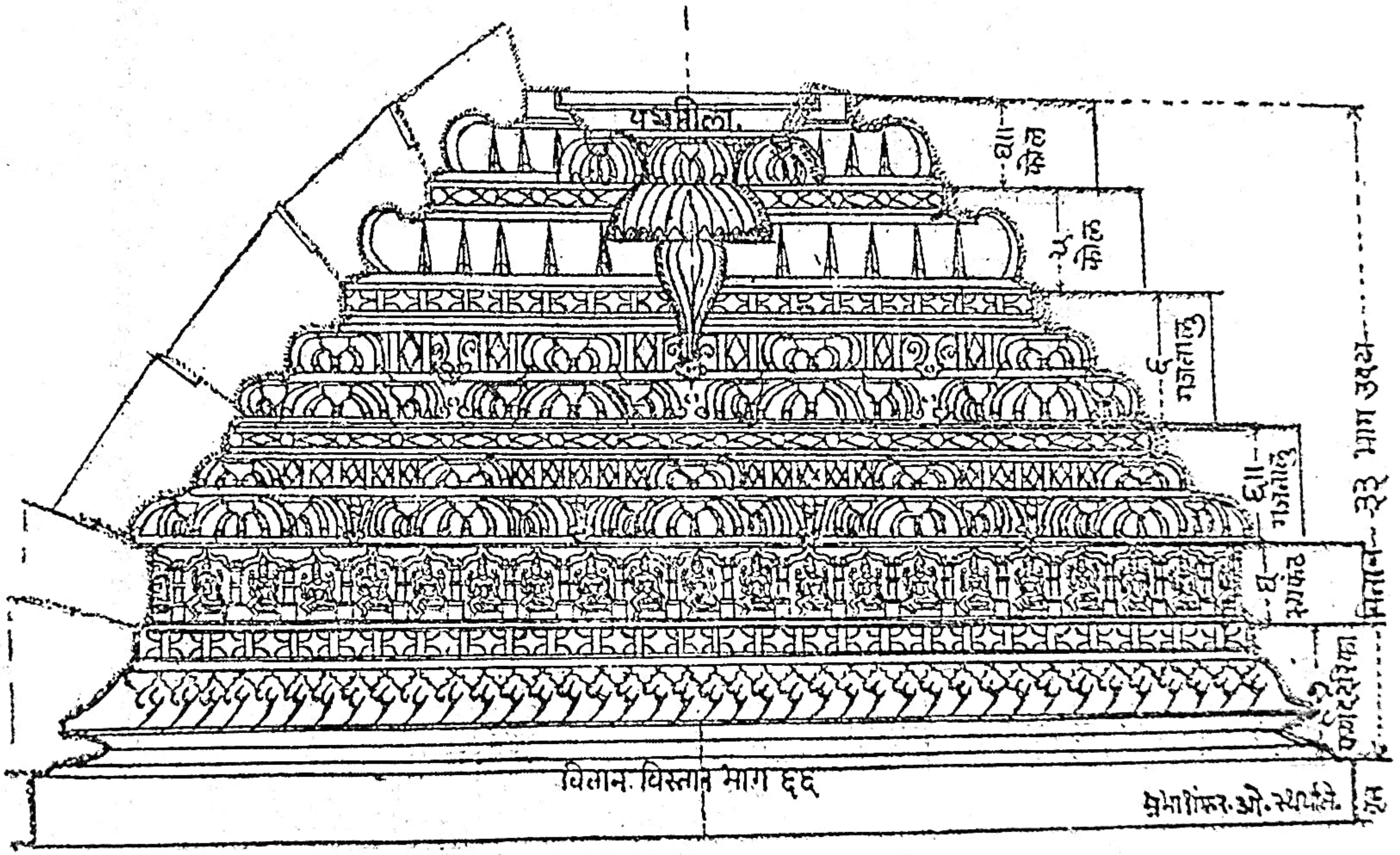

देवालय के शिखर के वितान में पद्मशिला, कोल, गजतालु, रूपकण्ठ, कर्ण दर्दरिका आदि का मान

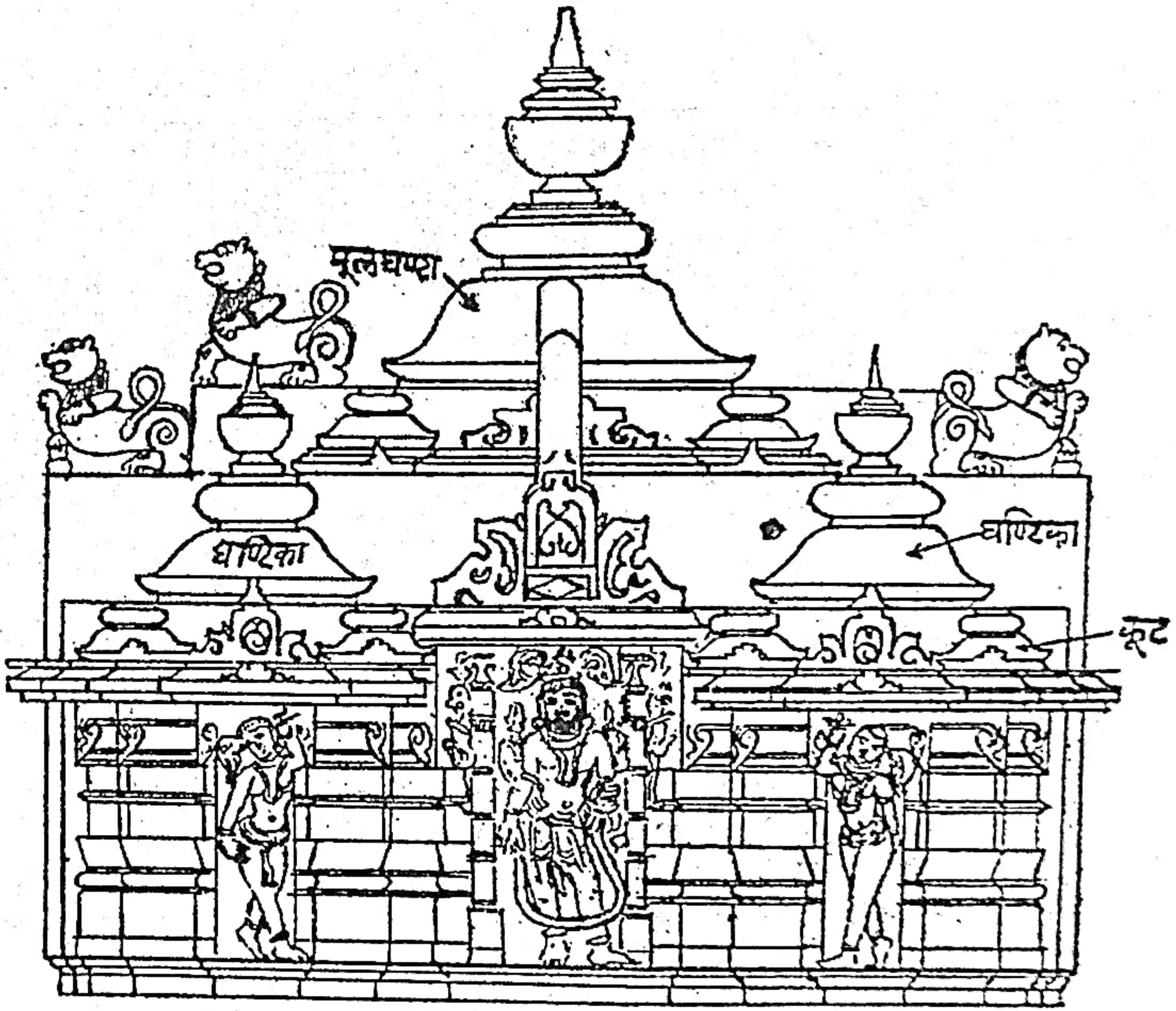


प्रासाद में ऊपर से क्रमशः मूलघण्टा, उभय घण्टिकाओं, कूटादि का विन्यास।
(यह पुष्पिका संज्ञक संवरणा के प्रसंग में विचारणीय है)।

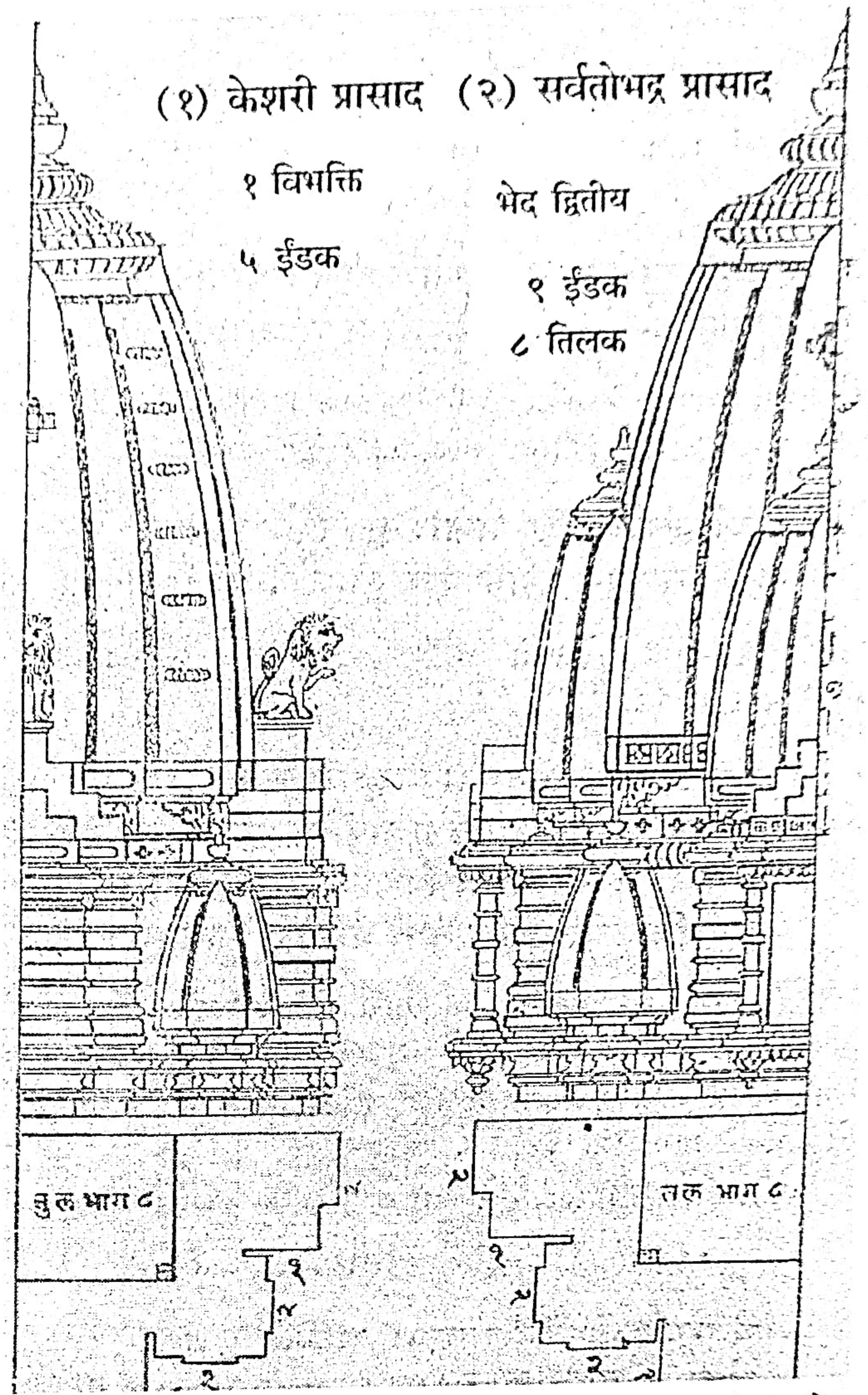


केसरी व सर्वतोभद्र प्रासाद में विभक्ति व अण्ड के क्रमशः १ व ५ तथा द्वितीय भेद में ९ अण्ड एवं ८ तिलक बताए गए हैं। इनके योग्य तल भाग को भी दर्शाया गया है।

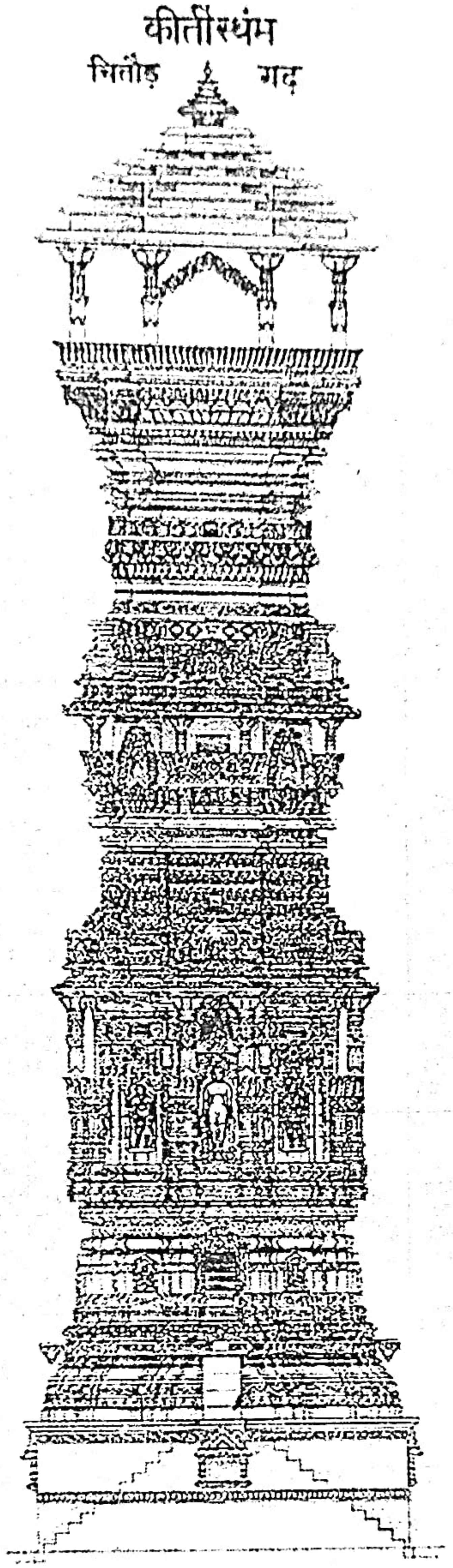


चित्तौड़गढ़का प्रसिद्ध जैन कीर्तिस्तम्भ जिसमें शिखर की रचना स्तूपियों के साथ हुई है।

पूर्व

# एकाशीतिपदवास्तुचक्रम्

ॐ ईशानाय नमः श्वेत ६१ सरवयै. नमः कृष्णा ४६

ॐ अग्नेय नमः रक्त ५५ ॐ विदार्यै नमः ४७ रक्त

ॐ ब्रह्मणे नमः रक्त ६२

ॐ इन्द्राय नमः रक्त ५४ ॐ स्कन्दाय नमः रक्त ५०

उत्तर — ॐ सोमाय नमः श्वेत ६० पिलिपिञ्छाय नमः पीत ५३

दक्षिण — ॐ यमाय नमः कृष्णा ५६ ॐ अर्यम्णे नमः कृष्णा ५१

<table>
<tr><td>ॐ<br>शिखिने<br>नमः<br>रक्त १</td><td>ॐ<br>पर्जनाय<br>नमः<br>पीत २</td><td rowspan="2">ॐ<br>जयन्ताय<br>नमः<br>पीत ३</td><td rowspan="2">ॐ<br>कुलिशा-<br>युधाय<br>नमः<br>पीत ४</td><td rowspan="2">ॐ<br>सूर्याय<br>नमः<br>रक्त ५</td><td rowspan="2">ॐ<br>सत्याय<br>नमः<br>श्वेत ६</td><td rowspan="2">ॐ<br>भृशाय<br>नमः<br>कृष्णा ७</td><td>ॐ<br>आकाशा<br>य नमः<br>कृष्णा ८</td><td>ॐ<br>वायवे<br>नमः<br>धूम्र ९</td></tr>
<tr><td>ॐ<br>दित्यै<br>नमः<br>पीत ३२</td><td>ॐ<br>अद्भ्यो<br>नमः<br>श्वेत ३३</td><td>ॐ<br>सवित्रे<br>नमः<br>श्वेत ३४</td><td>ॐ<br>पूष्णे<br>नमः<br>रक्त १०</td></tr>
<tr><td colspan="2">ॐ अदित्यै नमः<br>पीत ३१</td><td>ॐ<br>आपव<br>त्साय<br>नमः<br>श्वेत ४४</td><td colspan="3">ॐ अर्यम्णे नमः<br>कृष्णा ३७</td><td>ॐ<br>सवित्रे<br>नमः<br>रक्त ३८</td><td colspan="2">वितथाय नमः<br>श्वेत ११</td></tr>
<tr><td colspan="2">ॐ सर्पेभ्यो नमः<br>कृष्णा ३०</td><td rowspan="3">ॐ<br>पृथिवी-<br>धराय<br>नमः<br>रक्त ४३</td><td colspan="3" rowspan="3">ॐ ब्रह्मणे नमः ४५<br>नवपद श्वेत<br>पति वा</td><td rowspan="3">ॐ<br>विवस्वते<br>नमः<br>श्वेत ३९</td><td colspan="2">ॐ गृहक्षताय नमः<br>पीत १२</td></tr>
<tr><td colspan="2">ॐ सोमाय नमः<br>श्वेत २९</td><td colspan="2">ॐ यमाय नमः<br>कृष्णा १३</td></tr>
<tr><td colspan="2">ॐ वल्लभाय नमः<br>कृष्णा २८</td><td colspan="2">ॐ गन्धर्वाय नमः<br>रक्त १२</td></tr>
<tr><td colspan="2">ॐ मुख्याय नमः<br>रक्त २७</td><td>ॐ<br>राजयक्ष्म<br>णेनमः<br>रक्त ४२</td><td colspan="3">ॐ मित्राय नमः<br>श्वेत ४१</td><td>ॐ<br>विबुधा<br>धिपाय<br>नमः<br>रक्त ४०</td><td colspan="2">ॐ भृङ्गराजाय नमः<br>कृष्णा १५</td></tr>
<tr><td>ॐ अहि-<br>र्बुध्न्याय<br>न०<br>रक्त २६</td><td>ॐ रुद्राय<br>नमः<br>रक्त ३६</td><td rowspan="2">ॐ<br>शेषाय<br>नमः<br>कृष्णा<br>२३</td><td rowspan="2">ॐ<br>असुराय<br>नमः<br>पीत २२</td><td rowspan="2">ॐ<br>वरुणाय<br>नमः<br>श्वेत २१</td><td rowspan="2">ॐ<br>पुष्पदन्ता<br>य नमः<br>रक्त २०</td><td rowspan="2">ॐ<br>सुग्रीवाय<br>नमः<br>रक्त १९</td><td>ॐ<br>जयाय<br>नमः<br>श्वेत ३५</td><td>ॐ<br>मृगाय<br>नमः<br>पीत १६</td></tr>
<tr><td>ॐ<br>रोगाय<br>नमः<br>रक्त २५</td><td>ॐ<br>पापय-<br>क्षाय नमः<br>पीत २४</td><td>ॐ<br>दौवारि<br>काय नमः<br>रक्त १८</td><td>ॐ<br>पितृभ्यो<br>नमः<br>रक्त १७</td></tr>
</table>

ॐ वायवे नमः धूम्र ५९ ॐ पापराक्षस्य नमः कृष्णा ४९

ॐ नैर्ऋतये नमः नील ५७ ॐ पूतनायै नमः पीत वा हरित ४८

ॐ जम्भकाय नमः रक्त ५२ ॐ अनन्ताय नमः कृष्णा ६३

ॐ वरुणाय नमः श्वेत ५८

पश्चिम

पूजन में इक्यासीपद वास्तु में देवताओं की स्थिति और बलि का विधान

## चतुःषष्टिपदवास्तुचक्रम्–

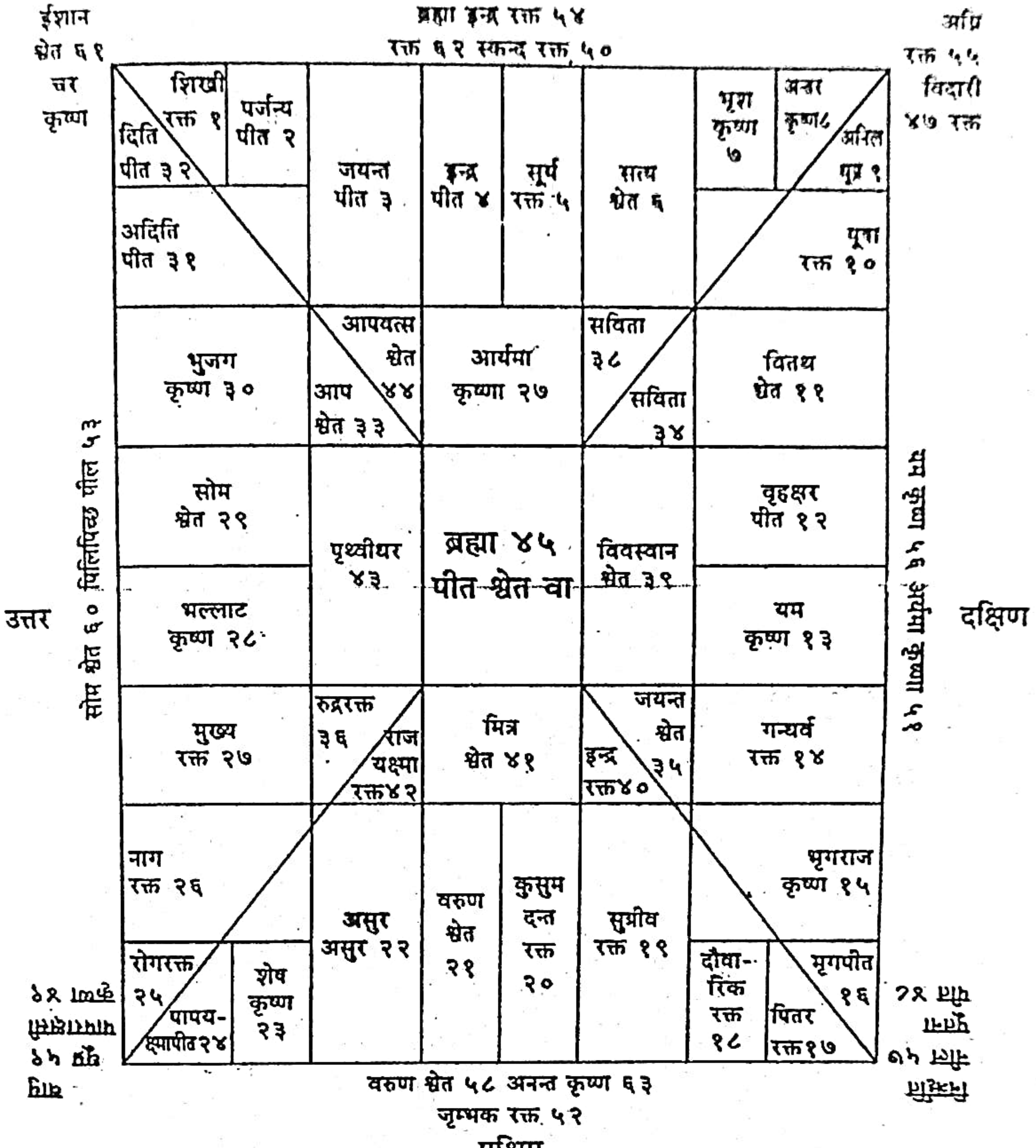


पूजानुष्ठान के लिए चौंसठपद वास्तु में देवताओं की पद स्थिति


श्री ला.ब.शा.रा.सं. विश्वविद्यालय
पुस्तकालय
पंजी. सं. V, 99360
दिनांक 16.3.22
हस्ताक्षर